

कलिहनुवाणी

शून्य

Published from India by Seer Books (P) Ltd.

First published in English in two parts as Immortal Talks Book-1, 2017 and Immortal Talks Book-2, 2019

First published in Hindi as KaliHanuVani, 2020

ISBN: 978-81-933052-4-9

कलिहनुवाणी

क्रम सूची

भाग 1

प्रस्तावना

घने जंगल की एक साधारण दोपहर में कुछ असाधारण था तो वे अधेड़ आयु के दो पुरुष जो एक पेड़ की आड़ में छिपकर घात लगाए बैठे थे। उनकी लंबी, जंगली दाढ़ी और बेतरतीब बालों से ऐसा लग रहा था जैसे वे आदिवासी हों। परंतु उनके नकली भेष से ऊपर डाल पर बैठे शांत पक्षी भी भ्रमित नहीं थे। जंगल की चींटी भी बता सकती थी कि वे दोनों बाहरी थे। कुछ अस्पष्ट था तो उन अतिक्रमणकारियों का उद्देश्य। पेड़ की आड़ लेकर वे क्या देख रहे थे?

संभवतः उनकी दृष्टि दूर काष्ठ ईंधन चुन रहे एक आदिवासियों के समूह पर थी। परंतु उस समूह में ऐसा क्या था कि बाहरी जन उनको देखने भयानक जंगल में इतनी दूर घुसे चले आए थे?

"एक और दिन व्यर्थ हो गया। हे हनुदास जी! अब तो हमें मान लेना चाहिए कि इन आदिवासियों में कोई विशेष बात नहीं है। कहाँ हम मान बैठे थे कि ये जन चिरंजीवी हनुमान जी को देख सकते हैं। खोदा पहाड़ निकली चुहिया!" एक बाहरी पुरुष गहरी श्वास छोड़ते हुए बोला। घात मुद्रा त्यागकर वह चैन से पेड़ के तने के सहारे पीठ लगाकर बैठ गया।

हनुदास जी ने भी परास्त स्वर में उत्तर दिया, "ठीक कहते हो आप, स्वामी जी।" और वे भी चैन से स्वामी जी की ओर मुख करके बैठ गए।

हनुदास जी के मन का एक कोना अभी भी आदिवासियों के प्रति उत्सुक था। अभी भी उनकी एक आँख दूर अपने कार्य में लीन उन जंगलवासियों पर थी। उनकी दूसरी आँख उन्हें स्वामी जी के चेहरे की झुर्रियों से होकर स्मृतियों के गलियारों में ले गई।

वे स्वामी जी तथा अपने एक अन्य साथी के साथ पिछले कई दिनों से इस आदिवासी समाज की गुप्तचरी कर रहे थे। उनका उद्देश्य न तो कोई वैज्ञानिक अनुसंधान था और न ही कोई मनोरंजक सामग्री तैयार करना। वे तो हनुमान जी के परम भक्त थे। वे हनुमान जी और इन आदिवासियों के मध्य स्थापित पवित्र गुरु-शिष्य संबंध पर शोध कर रहे थे। वे जानते थे कि हनुमान जी चिरंजीवी हैं और सहस्त्रों वर्ष से इस धरा पर विचरण करते हुए भक्तों की सहायता करते आ रहे हैं।

पाँच वर्ष पहले तक हनुदास जी के लिए 'हनुमान' शब्द भी अबोधगम्य था। उनका जन्म हिन्दू धर्म में नहीं हुआ था। उनके लिए अपने धर्म का अर्थ भी केवल दान-दक्षिणा और विशेष अवसरों पर प्रार्थना करना हुआ करता था। तब वे हनुमान जी के दास न होकर कनाडा देश के टोरंटो नगर में एक कुलीन जीवन शैली के दास हुआ करते थे। उनके जीवन में परिवर्तन तब आया जब उन्होंने पहले अपनी पत्नी को एक दुर्घटना में खो दिया और तत्पश्चात उनका पुत्र भी मादक पदार्थों और 'मनोविदलता' नामक मानसिक रुग्णता की भेंट चढ़ गया। विशेषकर उनके पुत्र की धीमी मृत्यु ने उन्हें झकझोर कर रख दिया। मनोविदलता ऐसी रुग्णता है जिससे ग्रस्त रोगी को ऐसी वस्तुएँ और जन दिखाई देते हैं जो वास्तविकता में नहीं होते। उन्होंने अपने पुत्र को मस्तिष्क के गहरे कूपों में तड़पकर मरते देखा था।

दुःखदायी परिस्थितियों ने जोंक की तरह चिपटकर उनके भीतर से जीवन के प्रवाह की हर बूंद को सोख लिया था। उनके लिए तब जीवन का अर्थ भी अत्यंत संकीर्ण हुआ करता था- धन का दिखावा करके मित्रों का अनुमोदन प्राप्त करना, छल-कपट से प्रतिद्वंद्वियों से आगे निकलने का हर क्षण प्रयास करना, हर नई प्रवृत्ति को अपनाना, हर वस्तु तथा मनुष्य को अच्छा-बुरा, राग-द्वेष आदि के मानसिक खानों में बिठाना, मन को सांसारिक गतिविधियों में व्यस्त करके अंतरात्मा से भागने की चेष्टा करना।

अपने पुत्र के अंतिम संस्कार के दिन उन्हें अपने भीतर एक विचित्र-सी शून्यता का आभास हो रहा था। तन-मन एक छल्ले की भांति हो गए थे, एक ऐसा छल्ला जिसके भीतर से सब कुछ आर-पार हो रहा था, सभी ध्वनियाँ, सभी दृश्य, सभी भावनाएँ, सभी आभास। यहाँ तक कि शून्यता का आभास भी मन पर बिना कोई छाप छोड़े आर-पार हो रहा था। कोई दुःख नहीं! कोई पीड़ा नहीं! कोई पछतावा नहीं! सब कुछ तो उनके पुत्र के साथ चला गया था, रह गई थी तो शून्यता और संभवतः शून्यता भी चली गई थी। परंतु शून्यता के जाने के पश्चात भी तो शून्यता ही रह जाती है!

अंतिम संस्कार के पश्चात उनके भाई और वे घर जा रहे थे। उनके भाई गाड़ी चला रहे थे और वे खिड़की से बाहर शून्य में झाँक रहे थे। सभी दृश्य उनके मन के पटल पर बिना कुछ अंकित किए फिसले जा रहे थे। तभी अचानक एक विचित्र दृश्य ने उनके मन को पुनः सक्रिय कर दिया।

"तिलस्मी वानर! अद्भुत वानर उड़ रहा है, देखो!" उनके मुख से अनायास ही निकल पड़ा था। उन्होंने साथ में चल रही एक गाड़ी के ऊपर एक विशाल घने बालों वाली आकृति को सहजता से मँडराते देखा था। अद्भुत वानर जैसी सजीव आकृति थी वह! गाड़ी

के साथ-साथ और गाड़ी की ही गति से उड़ रही उस आकृति का शब्दों में वर्णन करना असंभव है।

"ऐसा कुछ नहीं है भाई वहाँ, आपको विश्राम की आवश्यकता है।" उनके भाई ने संवेदनापूर्वक सिर हिलाते हुए उत्तर दिया था। उनके भाई ने संभवतः सोचा था कि पुत्र की मृत्यु के कारण उन्हें पागलपन का कोई दौरा पड़ गया था। भला किसी मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति को वानर उड़ते हुए क्यों दिखाई देंगे?

उन्होंने अपने भाई पर अविश्वास भरी कड़ी दृष्टि डालते हुए कहा था, "ऐसा कुछ नहीं है का क्या अर्थ है? ध्यान से देखो–" तत्पश्चात उनकी वाणी को अचानक विराम लग गया क्योंकि खिड़की के बाहर जब उन्होंने पुनः दृष्टि डाली तो वह तिलस्मी प्राणी वहाँ नहीं था। साथ में चल रही गाड़ी की छत पूर्णतः खाली थी, सिवाय एक छोटे से भगवा ध्वज के। जो दिव्य प्राणी कुछ पल पहले उड़ता दिखाई दिया था उसके जैसी एक छोटी-सी आकृति अब उस भगवा ध्वज पर अंकित दिखाई दे रही थी।

वह आकृति कोई और नहीं अपितु चिरंजीवी देव हनुमान थे। उस गाड़ी में एक दिव्य पुरुष विराजमान थे। उनके शांत चेहरे पर लंबी दाढ़ी सज्जित थी। आगे चलकर वे महापुरुष हनुदास जी के गुरु बने।

कुछ महीने पश्चात हनुदास जी अपने नगर टोरंटो में अपना सब कुछ छोड़कर और अपनी पुरानी पहचान त्यागकर भारत आ गए थे। गुरुदेव ने उनको नया नाम दिया था - हनुदास। इस नाम का अर्थ है ऐसा मनुष्य जिसने अपना जीवन हनुमान जी को समर्पित कर दिया हो।

गुरुदेव ने उड़ते वानर के दिव्य दृश्य को प्रतिपादित करते हुए कहा था, "हनुदास, वह आपका मतिभ्रम नहीं था। उस दिन आपने सचमुच में चिरंजीवी हनुमान जी के दर्शन किए थे। चूंकि मैं दुःख व अज्ञान से त्रस्त आत्माओं को सही रास्ता दिखाता हूँ, बहुत सारी बुरी शक्तियाँ मुझे शत्रु के रूप में देखती हैं। हनुमान जी उन्हीं बुरी शक्तियों से मेरी रक्षा करने के लिए मेरे साथ रहते हैं।"

मतिभ्रम? गुरुदेव को यह क्यों कहना पड़ा कि वह मतिभ्रम नहीं था? कदाचित उन्होंने गुरुदेव के सामने उस घटना का विवरण संदेह भरे शब्दों में कर दिया था। चूंकि वे पहली बार किसी को उस दृश्य के बारे में बता रहे थे, उन्हें डर था कि कहीं वे उपहास के पात्र न बन जाएँ अथवा पागल सिद्ध न हो जाएँ। अब वे लज्जित थे कि उन्होंने हनुमान जी की लीलाओं पर संदेह किया।

अपनी लज्जा को मिटाने हेतु वे शीघ्रता से बोले, "अवश्य गुरुदेव, वह कोई मतिभ्रम नहीं था। वह दृश्य मेरे मन की कल्पना नहीं अपितु वास्तविकता थी। मैंने तब 'हनुमान' शब्द भी नहीं सुना था। मुझे नहीं पता था कि वह दिव्य आकृति किसी धर्म के प्रसिद्ध देव की आकृति है। कल्पना का वृक्ष जानकारी के बीज के बिना नहीं पनपता। मुझे कोई जानकारी ही नहीं थी तो वह दृश्य मात्र कल्पना कैसे हो सकता था? नहीं, वह वास्तविक था। संभवतः मेरे जीवन का सबसे वास्तविक अनुभव था वह। उस एक पल में मानो मैंने पूरा जीवन जी लिया हो। मात्र एक पल का दृश्य था वह। उसके पश्चात हनुमान जी पुनः मेरी आँखों से ओझल हो गए। ऐसा लगा जैसे वे एक छोटी-सी आकृति बनकर उस ध्वज में अंकित हो गए हों जो आपकी गाड़ी की छत पर फहरा रहा था। मुझे लगता है हनुमान जी कहीं नहीं गए थे। वे तब भी आपकी गाड़ी की छत के ऊपर अपने चिर-परिचित रूप में उड़ान भर रहे थे। किंतु मेरी आँखें उस दिव्य शक्ति, उस पवित्रता, को खो चुकीं थी जो उनके साक्षात दर्शन करने के लिए आवश्यक होती है। अब मेरी आँखें ध्वज पर हनुमान जी की केवल एक छोटी-सी छाप देख सकती थी।"

व्यापक मुस्कान के साथ गुरुदेव बोले, "ध्वज पर मात्र एक छाप! साधारण दृष्टि को बस यही तो दिखाई देता है। हे हनुदास, क्या आपको पता है, महाभारत के युद्ध के दौरान हनुमान जी अर्जुन के रथ के ऊपर विराजमान थे। उन्हें अर्जुन के रथ की रक्षा का कार्य सौंपा गया था। केवल पांडव और भगवान श्री कृष्ण उनको वहाँ देख सकते थे। शत्रुओं की आँखें कुछ देख सकतीं थी तो केवल वह ध्वज जो रथ के ऊपर फहरा रहा था और हनुमान जी की आकृति जो उस ध्वज पर अंकित थी।"

गुरुदेव ने कक्ष में स्थापित हनुमान जी की मूर्ति की ओर एक सूक्ष्म व रहस्यमय दृष्टि डाली। एक क्षण के लिए ऐसा लगा मानो मूर्ति ने अपनी पलकें झपकाकर गुरुदेव का अभिवादन स्वीकार किया हो।

गुरुदेव ने आगे बताया, "केवल पवित्र आत्माएँ हनुमान जी को देख सकती हैं। जब आप अपने पुत्र का अंतिम संस्कार करके लौट रहे थे तब आपका मन पूर्णतः रिक्त था। बाहरी संसार के लाग-लपेटों से पृथक। जिस क्षण आपने हनुमान जी को मेरी गाड़ी के ऊपर उड़ते हुए देखा, उसी क्षण आपका मन पुनः सक्रिय हो गया। आपका मन उन्हीं चीजों में उलझ गया जिन चीजों में मानव मन प्रायः उलझा रहता है। उस दिव्य अनुभव को मुक्त भाव से पारित करने की बजाय आपका मन एक ऐसी बनी बनाई श्रेणी, एक ऐसा मानसिक खाना ढूँढने में व्यस्त हो गया जिसमें वह अनुभव समा सके। आपका मन उत्तेजनापूर्वक उन मानसिक डिब्बों की उथल-पुथल करने लगा जिनमें अतीत के अनुभवों से प्राप्त स्मृतियाँ जमा होती हैं। और संभवतः वहाँ से कुछ गढ़े गढ़ाए शब्द निकालकर

लाया जैसे 'मायावी' , 'असंभव' , 'भ्रम' , 'कल्पना'। आपके मन के इन संकीर्ण प्रयासों ने आपकी आत्मा को पुनः मैला कर दिया और हनुमान जी आपको दिखाई देना बंद हो गए। जब आपकी आत्मा पुनः उतनी ही पवित्र हो जाएगी जितनी उस दिव्य क्षण में थी, वे आपको पुनः दिखाई देने लगेंगे।"

"गुरुदेव, मुझे अपनी आत्मा को पुनः पवित्र करने के लिए क्या करना चाहिए? मैं अपने परिवार को पहले ही खो चुका हूँ। यदि आत्म-शुद्धि के लिए त्याग आवश्यक है, मेरे पास तो अब त्यागने के लिए भी कुछ नहीं है।" उनके मुख से यह प्रश्न निकला जबकि उनके मन में सहानुभूति प्राप्त करने की लालसा हिलोरें मार रही थी।

"एक जागृत आत्मा ही पवित्र आत्मा है।" गुरुदेव ने अपने एक पालतू पक्षी, जो उनकी बांह पर बैठा था, के पंख सहलाते हुए यह ज्ञानोक्ति कही। तत्पश्चात थोड़ा आगे झुककर हनुदास जी की आँखों में झाँकते हुए गुरुदेव बोले थे, "एक पवित्र आत्मा वह है जो जानती है कि वह कौन है और किस प्रयोजन से इस संसार से जुड़ी है। हे हनुदास की आत्मा, क्या आप जानती हो कि आप कौन हो और किस उद्देश्य से इस संसार में लीन हो?"

उन्होंने तुरंत उत्तर दिया, "हाँ गुरुदेव। मेरा उद्देश्य अब मात्र आपकी सेवा में शेष जीवन बिताना है। अब तक का सारा जीवन मैंने भौतिकता के संकीर्ण सरोवर में गोते मारते हुए बिता दिया। अब मैं शेष जीवन परम सत्य की खोज में बिताना चाहता हूँ।"

गुरुदेव ने अपना वह हाथ आगे बढ़ाया जिस पर उनका पालतू पक्षी बैठा था। पक्षी ने इसको मिलाप का समय समाप्त होने का संकेत मानकर उड़ान भरी। गुरुदेव शांत स्वर में बोले, "हनुदास, मैंने प्रश्न आपकी आत्मा से पूछा था और उत्तर दिया आपके मन ने।"

हनुदास को अब कोई उत्तर नहीं सूझा।

गुरुदेव के मुख पर हल्की-सी मुस्कान छा गई। उनके होठों से ज्ञानशब्द निकले, "आपकी आत्मा इस युग की अधिकांश आत्माओं की तरह सुप्त है। थोड़ी बहुत जागृति उस दिन आई थी जिस दिन आपने अपने हाथों से अपने पुत्र का अंतिम संस्कार किया था। उस संक्षिप्त जागृति के पश्चात आपकी आत्मा पुनः निद्रा को प्राप्त हो गई। पहले आपका मन भौतिक सुखों के पीछे भाग रहा था और अब आध्यात्मिकता के नाम पर विश्राम के पीछे भाग रहा है।"

यह सुनकर वे गुरुदेव के चरणों में साष्टांग अवस्था में गिरकर अनियंत्रित रूप से रोने लगे थे। गुरुदेव अविचल व उदासीन बने रहे। अपने शिष्य को किसी भी तरह की सांत्वना

देने की बजाय वे मंद स्वर में भजन गुनगुनाने लगे। गुरुदेव तब तक कुछ नहीं बोले जब तक कि हनुदास जी स्वयं को साधकर और रोना बंद करके चुपचाप सीधे नहीं बैठ गए।

"यह दुर्बलता और रुदन आपकी आत्मा का नहीं अपितु आपके मन का है। आप एक शक्तिशाली आत्मा हो जो चिरंजीवी हनुमान के साथ दिव्य बंधन में बंधी हुई है। किंतु आपका मन इस बाहरी संसार अर्थात माया का एक दुर्बल दास है। माया के पास आपके मन को नियंत्रित करने के असंख्य ढंग हैं। उनमें से एक ढंग है आपके तन-मन पर पराई आत्माओं की घुसपैठ कराना।

"तन-मन एक यंत्र मात्र हैं जिसकी सहायता से आपकी आत्मा संसार के विभिन्न अनुभवों को जीती है। यंत्रों की कमी नहीं है। आपकी आत्मा पर हनुमान जी की दृष्टि है और आपकी आत्मा की दृष्टि आपके तन-मन पर होनी चाहिए। एक अच्छा तन-मन धारण करने के लिए आत्मा का जागृत होना पर्याप्त है। आपकी आत्मा को एक अच्छे तन-मन के माध्यम से माया के विभिन्न अनुभवों के रस का पान करना चाहिए। परंतु आपके और आपकी तरह लाखों अज्ञानी आत्माओं के साथ यह क्रम उलटा हो रहा है। आपका तन-मन माया से निर्देश ले रहा है और आपकी आत्मा अज्ञान की निद्रा सो रही है। ज्यों ही आपकी आत्मा पुनः जागृत होती है ..."

उनके मन ने गुरुदेव के शब्दों पर चिंतन बंद कर दिया था। वे रिक्त मन से गुरुदेव की ओर टकटकी लगाकर देख रहे थे। दिव्य प्रकाश की एक किरण ने उनका आगे का मार्ग प्रशस्त कर दिया था।

अगली प्रातः वे गुरुदेव के आश्रम से निकल पड़े थे। उन्हें अपने गंतव्य का ज्ञान नहीं था। वे निकल पड़े थे अज्ञात राहों पर, साथ में था तो केवल आवश्यक दैनिक सामग्री से भरा थैला और गुरुदेव का आशीर्वाद। अगले कई महीने वे भटके थे, जगमगाते नगरों से लेकर अंधकार में डूबे दूरवर्ती ग्रामों तक, प्रबल पर्वतों से लेकर अंतहीन मैदानों तक, निर्जन गुफाओं से लेकर धार्मिक जनसभाओं तक। वे क्या ढूँढ रहे थे? कदाचित कुछ भी नहीं!

उन्होंने हर जीवनक्षेत्र के मनुष्यों से भेंट की। चाहे वे योगी हों जो एकांत गुफाओं में रहते हैं अथवा वे महापुरुष जो अपने लाखों अनुयायियों का मार्गदर्शन करते हैं। हनुदास जी ने सभी के दर्शन किए। प्रयोजन कोई नहीं था। वे बस चलते गए और दिव्य जनों से मिलते गए।

उस गंतव्यहीन यात्रा में उन्हें भांति-भांति के अनुभव हुए। उन्होंने सभी अनुभवों को अपने मन के कपाटों के मध्य से ऐसे पार होने दिया जैसे नदी के तटों के मध्य से जल प्रवाहित होता है। उनकी आत्मा जागृत हुई या नहीं यह तो पता नहीं, उनका मन अवश्य

शांत होकर ऐसी गहरी निद्रा में लीन हो गया था कि अब किसी भी प्रकार का अनुभव छाप नहीं छोड़ता था। सुखप्रद अनुभव हो अथवा दु:खप्रद, रूचिकर अनुभव हो अथवा अरुचिकर, अब माया द्वारा फेंका गया किसी भी आकार तथा प्रकार का अंकुड़ा उनके मन को नहीं फँसा सकता था।

यह तो तय था कि माया का उनके तन-मन से नियंत्रण समाप्त हो चुका था। यह तय नहीं था कि उनकी आत्मा जागृति को प्राप्त हुई थी या नहीं।

उनके सुषुप्त मन में तब तनिक झुरझुरी पैदा हुई जब भाग्य ने उनको उन आदिवासियों का पता दे दिया जो कदाचित हनुमान जी के शिष्य थे। यह प्रबल सोच उनके मन में खूँटे की तरह गड़ गई थी कि वे आदिवासी कुछ तो ऐसा देख सकते थे जो शेष मानव नहीं देख सकते थे। कदाचित वह अदृश्य शक्ति चिरंजीवी हनुमान ही थे। इस सोच का कोई आधार नहीं था। उन आदिवासियों के बारे में कुछ भी तो विशेष नहीं था। वहीं पत्तों से बने वस्त्र, वहीं लंबे जंगली बाल, वहीं धूप और मिट्टी से काले पड़े तन।

वे आदिवासी, जो स्वयं को मातंग कहते थे, कहीं से दिव्य अथवा पवित्र नहीं लग रहे थे। उनका हनुमान जी के साथ संपर्क में होना एक आशा मात्र थी किंतु ऐसी आशा जो तथ्य से भी ठोस थी। यह विचार, यह आशा कहाँ से पनप रही थी? इसका मूल कहाँ था? बाहरी संसार के गौण मानदंड तो इस विचार को कदापि प्रेरित नहीं कर रहे थे। कुछ आंतरिक था जो इस विचार को शक्ति दे रहा था, कदाचित मन की गहराइयों में अथवा मन के उस पार आत्मा में।

उन्होंने यह मान लिया था कि उनका गंतव्यहीन भ्रमण अंततः किसी गंतव्य तक पहुँच गया था। संभवतः उनकी आत्मा में ज्ञान की तरंगें उत्पन्न हो गई थीं। कदाचित वे वहाँ पहुँच गए थे जहाँ गुरुदेव और हनुमान जी उन्हें पहुँचाना चाहते थे। किंतु दो अन्य संत, जो मातंगों के व्यवहार को समझने में उनकी सहायता कर रहे थे, उनसे सहमत नहीं थे। उनका मानना था कि उन आदिवासियों का अध्ययन करना समय को व्यर्थ करना था।

कई महीने मातंगों की गुप्तचरी करने के पश्चात उन्हें केवल सात चिन्ह हाथ लगे थे जो टूटे हुए मिट्टी के बर्तनों, वृक्षों, चट्टानों आदि पर अंकित थे। परंतु उन चिन्हों में कुछ विशेष नहीं था और वे यह बात अपने साथी संतों के सामने मान भी चुके थे। उन्होंने वैसे चिन्ह पहले भी कई बार सुदूर गाँवों में आदिवासियों की झोंपड़ियों पर चित्रित देखे थे। अपने गंतव्यहीन भ्रमण के दौरान वे ऐसे सैकड़ों अनुष्ठानों के साक्षी बने थे जिनमें उस प्रकार के रहस्यमय चिन्ह विभिन्न वस्तुओं पर चित्रित किए जाते थे। एक तर्कशील मन भले ही उन अनुष्ठानों को अंधविश्वास सिद्ध कर दे, अथवा उन चिन्हों को बिना सोचे समझे

खींची गई लीकें बता दे, उनका अपना मन वाद-विवाद, तर्क-कुतर्क से ऊपर उठ चुका था। उन्होंने कभी उन चिन्हों का अर्थ खोजने का प्रयास नहीं किया। कदाचित उन चिन्हों को अंकित करने वाले जन भी उनका मूल अर्थ भूल चुके थे।

अपने भ्रमण के दौरान उन्होंने यह सीखा था कि अनुष्ठान का अनुभव उसके अर्थ से कहीं बड़ा होता है। और वैसे भी, वे अपने मन को जीतकर उसे सुषुप्त करने के लिए भटक रहे थे, न कि हर छोटी-बड़ी चीज के अर्थ का आहार खिलाकर उसे और भी सक्रिय करने के लिए।

किंतु मातंगों द्वारा अंकित उन सात चिन्हों का अर्थ निकालने की एक आंतरिक इच्छा उनमें जाग उठी थी। वह कोई साधारण इच्छा नहीं अपितु एक अंतरात्मा का आह्वान था। वहीं आह्वान जो उन्हें इतने दिनों से मातंगों की गुप्तचरी करने के लिए प्रेरित कर रहा था।

उनके दो साथी, स्वामी जी एवं ब्रह्मचारी जी, जो उनकी इस खोजबीन में सहायता कर रहे थे, अपनी रुचि खोते जा रहे थे। खोएँ भी क्यों न, इतने दिन बीत गए थे और कुछ विशेष हाथ नहीं लगा था।

कुछ समय पहले ही उन्होंने अपने दोनों साथियों के साथ मातंगों के मुखिया ‘बाबा’ से मिलने का प्रयास किया था। बाबा ने उनको इतने चिड़चिड़े भाव से ताड़ा था कि ब्रह्मचारी जी वहाँ से अपने रास्ते हो लिए थे।

परंतु उन्होंने स्वामी जी के साथ अपनी खोज जारी रखी थी। वे यहाँ आ गए थे जहाँ कुछ मातंग महिलाएँ काष्ठ ईंधन इकट्ठा कर रही थीं। वृक्ष के पीछे छुपकर वे किसी ऐसी गतिविधि की प्रतीक्षा करने लगे थे जिससे यह प्रमाणित हो सके कि वे मातंग महिलाएँ चिरंजीवी हनुमान जी को देख सकती थीं।

हनुदास जी स्मृतियों के गलियारों से बाहर आ गए; उनके कानों में मातंगों के समूह में हो रही विशेष हलचल की ध्वनियाँ पहुँची थीं। उनकी आँखों में आशा का जुगनू टिमटिमाया। समूह में से एक दुबली-पतली युवती चिल्ला-चिल्लाकर हवा के साथ मुष्टियुद्ध कर रही प्रतीत हो रही थी। उसकी देह मानो किसी भूत पिशाच के वश में थी। उसके हाथ-पैर कटी पतंग की तरह फड़फड़ा रहे थे। समूह की शेष महिलाएँ आतंकित अवस्था में खड़ी थीं।

"कुछ नया नहीं है। उसे मिर्गी का दौरा पड़ा लगता है।" हनुदास जी बुदबुदाये। उन्होंने ऐसे दृश्य विभिन्न रूपों में पहले भी देखे थे। ऐसी विषमताओं को हर समाज अलग

प्रकार से देखता है। कोई इसे काला जादू कहता है तो कोई इसे भूत-पिशाचों का आक्रमण कहता है। कोई इसमें दुष्ट शक्तियों का हाथ देखता है तो कोई दैवीय शक्तियों का आशीर्वाद। हनुदास जी इस विषय के हर पहलू को अपनी आँखों से अनुभव कर चुके थे। इसलिए उन्हें इसमें कुछ विशेष नहीं लगा। वे बोले, "आज के लिए इतना कार्य पर्याप्त है, हमें अब लौट चलना चाहिए।"

"इन मातंगों के यहाँ से जाने की प्रतीक्षा करते हैं।" स्वामी जी ने सुझाव दिया; वे वृक्ष के तने के सहारे पीठ टिकाकर चैन से बैठे थे और एक लाल चींटी की गतिविधियों का रुचि से अध्ययन कर रहे थे।

दौरे क्षीण होने के पश्चात वह मातंग युवती एक वृक्ष के नीचे लेट गई। समूह की अन्य महिलाएँ पहले की तरह इधर-उधर लकड़ी चुनने के कार्य में लीन हो गईं। एक क्षण के लिए हनुदास जी को शून्यता का वह आभास हुआ जो उन्हें अपने पुत्र के अंतिम संस्कार के दिन हुआ था। उस क्षण में उन्हें सुप्त अवस्था में जान पड़ रही उस युवती के समीप तीन प्रकाशमय आकृतियाँ दिखाई दीं। वे आकृतियाँ ठोस नहीं थीं अपितु अपने स्थान पर स्पंदन कर रही दिखाई दे रही थीं। यह दृश्य देखकर उन्हें आश्चर्य का एक झटका-सा लगा और वे तीन आकृतियाँ दिखाई देना बंद हो गईं। उनके मन ने तर्क दिया कि वे आकृतियाँ प्रकाश द्वारा कृत एक भ्रम मात्र थीं।

कुछ क्षण पश्चात वह युवती उठकर बैठ गई और तत्पश्चात सीधे सामने की ओर लुढ़क गई। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह किसी अदृश्य शक्ति के सामने साष्टांग प्रणाम कर रही थी।

हनुदास जी की आँखें उस अदृश्य शक्ति को देख तो नहीं सकती थीं किंतु उन्हें एक तर्करहित आभास हो रहा था कि उस युवती का सिर हनुमान जी के चरण कमलों में स्थापित था। उन्होंने स्वामी जी, जो लाल चींटी को साधन बनाकर ध्यान अवस्था में चले गए थे, को हिलाकर उठाया और उनका ध्यान इस नए घटनाक्रम की ओर खींचा।

कुछ क्षण के पश्चात वह युवती खड़ी हो गई। उसके हाथ प्रणाम की अवस्था में जुड़े हुए थे। वह उस अवस्था में बहुत देर तक रही। उस दौरान उसके होंठ ऐसे हिल रहे थे जैसे वह किसी से बतिया रही हो। आश्चर्य की बात यह थी कि उसके होठों में गति व उसके मुख पर हाव-भाव केवल हनुदास जी को दिखाई दे रहे थी। स्वामी जी को तो लग रहा था कि वह युवती शांत एवं ओष्ठबद्ध अवस्था में ऐसे खड़ी थी जैसे प्रार्थना कर रही हो।

लगभग आधे घंटे के पश्चात जब वे दोनों संत उस स्थान को त्यागकर अपने ठिकाने की ओर बढ़ रहे थे, स्वामी जी ने शास्त्रार्थ शुरू करने के उद्देश्य से टिप्पणी की, "मुझे तो

उस युवती के व्यवहार में कोई विशेष शोध करने योग्य बात नहीं दिखी। भयानक एवं हिंसक दौरा पड़ने के पश्चात जैसा व्यवहार अपेक्षित है, वैसा ही व्यवहार वह कर रही थी।"

किंतु हनुदास जी को शास्त्रार्थ में अब कोई रुचि नहीं थी। वे मानसिक सीमाओं के पार शून्यता में लीन थे। स्वामी जी सोच रहे थे कि एक और दिन व्यर्थ हो गया था। परंतु हनुदास जी जानते थे कि उनका उस शक्ति से मिलना केवल एक डग दूर था जिस शक्ति से मिलने के लिए उनकी आत्मा तरस रही थी।

कुछ दिन पश्चात ही उन्होंने मातंगों द्वारा गूढ़लिपि में अंकित उन सात चिन्हों का गुप्त अर्थ जान लिया। वह एक पहेली थी जिसका अर्थ था, 'चिरंजीवी हनुमान 41 वर्ष में एक बार अपने शिष्यों अर्थात मातंगों को ब्रह्मज्ञान देने आते हैं।'

अगले कुछ महीनों के दौरान उन्होंने मातंगों से ऐसे सहस्त्रों गूढ़ चिन्ह प्राप्त किए और उनमें छिपी पहेलियों के अर्थ निकाले। उन चिन्हों में हनुमान जी द्वारा उनके शिष्यों को प्रदत्त पूर्ण ब्रह्मज्ञान समाहित था। वह ब्रह्मज्ञान आगे चलकर मुख्यधारा के समाज में रहने वाले भक्तों को 'कलिहनुवाणी' नामक पुस्तक के रूप में प्राप्त होना था।

अध्याय 1

दो माताओं से जना

द्वंद्व एवं भ्रम का वातावरण था। जिस स्थान पर हनुमान जी के मातंग शिष्य बसे हों वहाँ पर ऐसा होना आश्चर्य की बात थी। सुचेता एवं विचेता नामक दो महिलाएँ चित्ता नामक एक बालक की वास्तविक माता होने का दावा कर रही थीं। यह कैसे संभव था? एक बालक दो कोखों से कैसे जन्म ले सकता था? मातंगों के मुखिया श्री बाबा मातंग ने अपने समाज के विद्वानों तथा विदुषियों की एक सभा बुलाई ताकि सुचेता और विचेता के बीच हो रहे इस द्वंद्व को समाप्त किया जा सके।

बाबा मातंग एक पतली देह और छोटे कद के वृद्ध थे। उनका छोटा-सा चेहरा उनकी छितरी हुई श्वेत दाढ़ी और लंबे अव्यवस्थित बालों के पीछे ढका हुआ था। सभा को संबोधित करते हुए वे बोले, "हे पुण्य आत्माओं, हम यहाँ ऐसी परिस्थिति पर विचार करने के लिए एकत्र हुए हैं जो हमारे समाज के ऊपर अज्ञान और भ्रम के काले बादल बनकर गरज रही है। हम सभी जानते हैं कि लगभग एक वर्ष पहले सुचेता ने चित्ता को जन्म दिया था। किंतु दो रात्रि पहले जब अमावस्या की रात थी तब से विचेता के मन में न केवल चित्ता के प्रति वात्सल्य उमड़ पड़ा है अपितु ऐसी स्मृतियाँ भी पनप गई हैं जिनके अनुसार उसने चित्ता को जन्म दिया था। और चित्ता के मन से अपनी वास्तविक माता सुचेता के प्रति लगाव पूर्णतः सूख चुका है। अब वह विचेता को अपनी माता मानने लगा है। सुचेता को संदेह है कि विचेता ने वशीकरण तंत्र-मंत्र के द्वारा उसके पुत्र चित्ता को वश में कर लिया है। सुचेता का तर्क है कि विचेता का निःसंतान होना इस अपराध की अभिप्रेरणा बना है।"

बाबा मातंग का वक्तव्य और विशेषतः अंतिम दो वाक्य सुनकर सभा में सबसे आगे व्याकुल अवस्था में बैठी विचेता फूट-फूटकर रोने लगी। बड़े-बड़े आँसू उसकी लाल आँखों से निकलकर चित्ता नामक बालक पर वृष्टि करने लगे; चित्ता को वह अपनी छाती से कसकर चिपकाए बैठी थी।

बाबा मातंग एक अनुभवी वृद्ध थे। सभी प्रकार की प्रकट-अप्रकट भावनाएँ उन्होंने अपने जीवन में देखी थीं। उनका अनुभव यह स्पष्ट बता रहा था कि विचेता के आँसू सच्चे थे। उनका हृदय कह रहा था कि विचेता ने कोई अपराध जान-बूझकर तो कदापि नहीं किया था। परंतु जिस उच्च आसन पर वे विद्यमान थे वह उन्हें हृदय के आधार पर निष्कर्ष निकालने की अनुमति नहीं देता था।

न्याय और निष्पक्षता में एक विशेष कठोरता होती है। उसी कठोरता को अपनी वाणी में लाने का प्रयास बाबा मातंग ने किया। किंतु उनकी वाणी से कठोरता नहीं, निर्दयता प्रवाहित होने लगी। वे बोले, "हे विचेता, आपके अश्रु आपके निरपराध होने का प्रमाण नहीं हो सकते। साक्षी हैं सभी मातंग जो परम सत्य के मार्ग पर चलते हैं, साक्षी हैं इस वन के सभी पशु-पक्षी जो मातंगों के सहचर हैं, साक्षी हैं सभी दिशाएँ जो भौतिक जीवन में हमारी सभी गतिविधियों का लेखा-जोखा रखती हैं, साक्षी है वायु जो हमारे भीतर और बाहर विद्यमान है, साक्षी हैं प्रकाश की किरणें जो इस संसार को प्रकाशमान करती हैं, साक्षी है सारा नश्वर संसार इस बात का कि सुचेता ने चित्ता को अपने गर्भ से जन्म दिया था। हम सभी ने सुचेता को चित्ता का पालन-पोषण करते देखा है। दो दिवस पहले तक वह चित्ता को स्तनपान करा रही थी।

"हे विचेता, आपने ऐसा क्या तंत्र-मंत्र किया है कि चित्ता अब आपकी गोदी से नीचे नहीं उतर रहा? आप किसी के बच्चे को ऐसे कैसे चोरी कर सकती हो? स्मरण रहे, हनुमान जी सब देख रहे हैं। वे यहाँ नहीं हैं परंतु उनकी दिव्य दृष्टि आपके कृत्य देख रही है। ऐसा पाप न करो, विचेता! इससे पहले कि प्रकृति के कठोर नियम अपना न्याय करें और आपको कठोर दंड दें, इससे पहले कि कर्म के विधान आपको प्रताड़ित करना आरंभ करें, अपने तंत्र-मंत्र को वापिस ले लो और चित्ता को उसकी वास्तविक माता सुचेता के पास जाने दो।"

तत्वतः बाबा मातंग ने कुछ अनुचित नहीं कहा था। सभी उनके संदेश से सहमत थे। किंतु उनकी वाणी विचेता की लगातार बढ़ती जा रही रुदन-ध्वनि की पृष्ठभूमि में अत्यंत निष्ठुर जान पड़ी। उनकी पत्नी श्रीमती माता मातंग, जो उनके पार्श्व में स्थित उच्च आसन पर विराजमान थीं, उनकी ओर एक निन्दात्मक दृष्टि डालते हुए नीचे उतरीं और विचेता के पार्श्व में आकर बैठ गईं। उसे सांत्वना देते हुए उन्होंने पहले उसकी पीठ सहलाई और तत्पश्चात उसके कंधों पर अपना स्नेही हाथ रखा।

माता मातंग का सहारा पाकर विचेता के हृदय को शीतलता मिली और उसका रुदन स्वर क्षीण पड़ गया। वह बोली, "मैं सत्य कह रही हूँ। मैंने ही चित्ता को जन्म दिया था। मैं ही पहले दिन से उसे स्तनपान करा रही हूँ। मैंने ही उसे इस भयानक वन के सभी संकटों से बचाकर रखा है ... आप सब मेरा परिवार हैं। आप जन मेरे विरुद्ध क्यों हो गए हैं? ... माता मातंग, आप बोलती क्यों नहीं? क्या आप चित्ता के जन्म के समय उपस्थित नहीं थीं? कुछ मास पहले की ही तो बात है। आप कैसे बिसार सकती हैं वह दिन? ... और बाबा मातंग, चित्ता के जन्म के सातवें दिन आपने ही तो सभी अनुष्ठान किए थे। यह बात आपकी स्मृति से कैसे लुप्त हो सकती है? चित्ता के प्रथम स्नान के समय भी आप उपस्थित थे। कम से

कम वह तो आपको स्मरण होगा? ... मैंने चित्ता को कभी सुचेता की गोदी में नहीं देखा है। तो आप क्यों कह रहे हैं कि कुछ दिन पहले तक सुचेता चित्ता का पालन पोषण कर रही थी?"

सुचेता कर्कश स्वर में बोली, "हाँ विचेता, आपके अतिरिक्त सभी मातंगों को मतिभ्रम हो गया है। हे मूर्ख, अब भी समय है। चेत में आ जा और मुझे अपना पुत्र वापिस कर दे।"

इससे पहले कि सुचेता और विचेता की जिह्वाएँ खड़ग बनकर पुनः आपस में उलझतीं, बाबा बोले, "मतिभ्रम! अब जबकि इस संभावना पर मेरा ध्यान आकर्षित हुआ है, मुझे लगता है हम सब एक भ्रमजाल में फँस गए हैं। यह संभव है कि विचेता को छोड़कर अन्य सभी मातंगों की स्मृतियों में कुछ इस तरह हेर-फेर हो गई है कि हम सब सुचेता को वास्तविक माता समझ बैठे हैं। जबकि विचेता–"

"किंतु कैसे?" माता मातंग ने बाबा के वक्तव्य को बीच में ही काट दिया। वे बोलीं, "ब्रह्मांड में ऐसी कौन सी दुष्ट शक्ति है जिसने स्वयं हनुमान जी द्वारा संरक्षित उनके शिष्यों के साथ ऐसा करने का दुस्साहस किया है?"

"यदि हम यह मानें कि हम सब किसी दुष्ट शक्ति द्वारा रचित एक भ्रमजाल में फँसे हुए हैं तो इस विषय पर चर्चा करना भी बेकार है। क्योंकि ऐसा करने का अर्थ होगा भ्रमजाल के मूल नियमों की पराधीनता स्वीकार करना। हमें किसी ऐसे तृतीय पक्ष की शरण में जाना चाहिए जो इस भ्रमजाल के बाहर निष्पक्ष एवं स्वाधीन हो।" बाबा मातंग पश्चिमी पहाड़ियों के पीछे क्षितिज में अस्त हो रहे सूर्य की ओर देखते हुए बोले। बाबा के इस तर्क को सुनकर विचेता की रुदन सिसकियाँ क्षीण होते-होते मात्र हिचकियाँ रह गईं।

सुचेता पर उनके तर्क का विपरीत प्रभाव पड़ा। वह झल्लाते हुए बोली, "नहीं, मैं किसी भ्रम से ग्रस्त नहीं हूँ। मैं ही चित्ता की वास्तविक माता हूँ।"

"मतिभ्रम से ग्रस्त व्यक्ति भी ऐसा ही बोलेगा कि वह किसी भ्रम में नहीं है।" बाबा विनम्रता से बोले, "अंधकार की पहचान करने के लिए पहले प्रकाश से परिचय होना आवश्यक है। अन्यथा हम अंधकार को ही प्रकाश मान बैठते हैं। जैसा कि मैंने कहा, चर्चा का कोई औचित्य नहीं हैं। मैं अपने पूर्वजों से विचार-विमर्श करने जा रहा हूँ जो अतीत में निवास करते हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे इस विषय पर निष्पक्षता से विचार कर सकते हैं और हमें बता सकते हैं कि इस द्वंद्व और भ्रम का मूल क्या है। सूर्य अस्त हो रहा है। दिन पूर्ण होने को है। रात्रि, जो पूर्वजों से संपर्क साधने का सबसे उचित समय है, शीघ्र ही इस

धरा का आलिंगन करने वाली है। मुझे बिना समय नष्ट किए पहाड़ी के शिखर पर पहुँचना चाहिए।"

बाबा के तर्क ने सुचेता को भ्रम में फँसे होने की संभावना को स्वीकार करने को बाध्य कर दिया। हिचकिचाते हुए उसने निवेदन किया, "बाबा, क्या मैं भी आपके साथ आ सकती हूँ? भ्रमजाल में फँसे होने की संभावना का विचार मेरे मन को आतंकित कर रहा है।"

"ठीक है।" बाबा बोले, "किंतु यदि आप आ रही हो तो विचेता को भी आना चाहिए। मेरे लिए आप दोनों एक समान हो।"

विचेता ने दृष्टि मात्र से एक प्रश्न पूछा जिसके उत्तर में बाबा बोले, "हाँ, आप चित्ता को भी साथ ला सकती हो।"

लगभग दो घंटे की थका देने वाली किंतु आशापूर्ण चढ़ाई के पश्चात वे पहाड़ी के शिखर पर स्थित उस चट्टान की तलहटी में पहुँच गए जिसे मातंग 'पूर्वजों की चट्टान' के नाम से पुकारते थे। चूंकि मातंग इस चट्टान पर प्रायः रात्रि के समय आते थे, उन्होंने उसके ऊपरी छोर में एक कुंडली तराश रखी थी जिसमें रस्सी अटकाकर सहजता से चढ़ाई की जा सकती थी। किंतु उस शाम जब बाबा ने रस्सी का एक सिरा ऊपर की ओर फेंका, दूसरा सिरा जो उनके हाथ में रहना चाहिए था, फिसल गया। घने अंधकार में उन्हें अपने हाथ भी दिखाई नहीं दे रहे थे। ये मानकर कि रस्सी का एक सिरा ऊपर चट्टान की कुंडली में अटक गया होगा और रस्सी लटक गई होगी, उन्होंने कदाचित लटकती हुई रस्सी को ढूँढने के लिए इधर-उधर हवा में हाथ मारे।

पूर्वजों से संपर्क साधने हेतु आए मातंग शीघ्र ही चट्टान की तलहटी पर हताश होकर बैठ गए। बाबा वापिस अपने डेरे में जाने का मन बना ही रहे थे कि उन्हें अपनी आँखों के सामने रस्सी झूलती हुई दिखाई दी। उन्होंने उसे तुरंत पकड़कर एक झटका दिया। जब वे आश्वस्त हो गए कि रस्सी चढ़ाई के लिए उपयुक्त थी, वे चढ़ाई करने लगे। उनका ध्यान रस्सी की असाधारण कोमलता पर गया। किंतु उनके हाथ फिसल नहीं रहे थे। जिस तीव्रता से एक गिलहरी वृक्ष पर चढ़ती है, उसी तीव्रता से वे चट्टान पर चढ़ गए।

ऊपर चढ़ने के पश्चात जब उन्होंने संतोषपूर्वक नूतन हवा में श्वास ले ली तब उनका ध्यान इस बात पर गया कि जिस रस्सी से वे चढ़कर ऊपर आए थे वह कुंडली में नहीं अटकी हुई थी। आश्चर्यजनक रूप से रस्सी चट्टान पर ऐसे ही पड़ी हुई थी। रस्सी का छोर देखने की जिज्ञासा में उन्होंने सामने अंधकार में दृष्टि डाली और उन्हें दिखाई दिया ब्रह्मांड

का छोर! एक प्रकाशमय आकृति जुगनू की भांति दैदीप्यमान थी। उन्होंने उस आकृति को पहचानने में तनिक भी देर नहीं की। वे कोई और नहीं अपितु चिरंजीवी हनुमान जी थे।

जिस वस्तु के सहारे बाबा मातंग चट्टान पर चढ़े थे वह कोई रस्सी नहीं थी, वह तो हनुमान जी की पूंछ थी। वे चट्टान के ऊपर ध्यान मुद्रा में विराजमान थे। एक श्वेत तेजोमंडल उनके दिव्य मुख को शोभित कर रहा था। उनकी मुस्कान से एक विचित्र आभा स्फुरित होकर अंधकार में घुल-सी रही थी।

बाबा मातंग को जैसे सोने की खान मिल गई थी। वे अपने पूर्वजों से मिलने आए थे और उन्हें मिल गए थे उनके सभी पूर्वजों के चिरंजीवी गुरु।

अपने चिरंजीवी गुरु के अकस्मात दर्शन पाकर बाबा मातंग का मुंह खुला का खुला रह गया और आँखों की पुतलियाँ चौड़ी हो गईं। कुछ क्षण पश्चात उनका अपनी स्वयं की देह से संपर्क टूट चुका था। उन्हें लग रहा था जैसे वे मात्र एक प्रकाश बिंदु हैं।

किंतु उनकी देह कहीं लुप्त नहीं हुई थी। यदि कोई सामान्य व्यक्ति वहाँ होता तो उसे हनुमान जी नहीं दिखाई देते। उसे केवल बाबा मातंग चट्टान के मध्य मतिमंद अवस्था में गिरते, उठते और लुढ़कते दिखाई देते। मुख्यधारा के किसी तर्कशील व्यक्ति को बाबा मानसिक रोगी जान पड़ते और किसी भक्त को संभवतः ऐसा प्रतीत होता जैसे उनमें हनुमान जी की दिव्य शक्ति प्रवेश कर गई थी।

हनुमान जी को बाबा देह रूप में दिखाई दे रहे थे। उन्होंने देखा कि बाबा की देह पहले कुछ समय तक ऐसे कांपी जैसे वह भयंकर ज्वर से पीड़ित हो, तत्पश्चात चट्टान पर ऐसे पसरी जैसे कोई वस्त्र गिरा हो, तत्पश्चात हनुमान जी के चारों ओर ऐसे लुढ़कने लगी जैसे घूमता हुआ लट्टू। नश्वर देह किसी अनश्वर शक्ति के समीप कैसे व्यवहार करेगी, कोई नहीं बतला सकता।

कुछ क्षण की इस भ्रांतचित गतिविधि के पश्चात बाबा मातंग हनुमान जी के चरणों में साष्टांग नमस्कार की अवस्था में स्थापित हो गए। रात्रि के सन्नाटे में चट्टान पर गिर रही उनकी आंसुओं की बूंदों की ध्वनि स्पष्ट सुनाई दे रही थी।

"उठो बाबा!" हनुमान जी का स्नेहिल आदेश हुआ। स्नेह जताते हुए हनुमान जी स्वयं नीचे झुके और बाबा के कंधों को स्पर्श करके उन्हें उठाया।

बाबा न केवल शारीरिक रूप से खड़े हुए अपितु मानसिक रूप से भी वे अपनी देह में लौट आए। देखा कि सुचेता, विचेता और चित्ता भी उनके पार्श्व में खड़े हैं तो उन्हें चट्टान पर आने का उद्देश्य स्मरण हो आया। कोई शब्द उन्हें नहीं सूझा तो वे आदरपूर्वक सिर

झुकाकर खड़े रहे। वे प्रतीक्षा करने लगे कि हनुमान जी उनके मन के विचारों को पढ़कर स्वयं ही वार्ता प्रारम्भ करें।

अपने विचारों को मस्तिष्क पटल पर लाने के लिए वे सोचने लगे कि कैसे सुचेता और विचेता के बीच के द्वंद्व के चलते वे यह तक भूल चुके थे कि उनके इष्टदेव एवं गुरु हनुमान जी का आगमन पिछले कई माह से अपेक्षित था। हनुमान जी को उन्होंने पिछली बार चार दशक पहले देखा था जब वे 41 वर्ष पश्चात पुनः आने के वचन के साथ विदा हुए थे। वह कोई सामान्य वचन नहीं था। वह चिरंजीवी हनुमान का चिरकालिक वचन था जिसे वे सदियों से पूरा करते आ रहे थे। मातंग समाज जंगल में अपना स्थान बदलता रहता है परंतु वे कहीं भी हों, हनुमान जी हर 41 वर्ष पश्चात उनसे मिलने आते हैं।

बाबा मातंग ऐसे लघुकाय अनुभव कर रहे थे जैसे उनकी काया से सहस्त्रों अशुद्धियाँ निकल गई हों। जब हनुमान जी की चुप्पी उन्हें भारी लगने लगी तो वे यजमान की भूमिका धारण करते हुए बोले, "हे देव, हम नश्वर मनुष्यों के डेरे में आपका स्वागत है। मैं मातंग समाज की ओर से आपका आभार प्रकट करता हूँ। मैं जितना धन्यवाद करूँ उतना कम है। हम धन्य हैं कि आप पधारे हैं।"

हनुमान जी के शांत मुख पर एक व्यापक मुस्कान उभर आई। अपनी रहस्यमय वाणी में वे आनंदपूर्वक बोले, "मुझे लगा कि आप जन मेरे पास आए हो, न कि मैं आपके पास।"

बाबा मातंग को भान हुआ कि हनुमान जी ने हनुवाणी आरंभ कर दी थी। ज्ञान की गंगा बहनी शुरू हो गई थी। सच ही तो था, 41 वर्ष की साधना करते हुए मातंगों ने स्वयं को इस योग्य बनाया था कि वे हनुमान जी से मिल सकें। अतः वे साधना पथ से होते हुए हनुमान जी के पास पहुँचे थे। न उस पर्वत में कुछ विशेष था और न ही उस स्थान में। उस स्थान पर मातंगों के सिवाय यदि कोई पहुँच भी जाता तो उसे हनुमान जी दिखाई नहीं देते। उनके दर्शन के लिए साधना का पथ पार करना आवश्यक था न कि कोई पर्वत पथ।

"सत्य है देव, आध्यात्मिक दृष्टिकोण से हम आपके पास आए हैं। और आज भौतिक रूप से भी हम ही इस पहाड़ी को चढ़कर आपके पास आए हैं, चित्ता की समस्या का उपाय ढूँढने।"

"चित्ता तो आनंद में है, उसे क्या समस्या हो सकती है?" हनुमान जी चित्ता की ओर देखते हुए बोले, "चित्ता अपनी माता विचेता के आँचल में आनंद में है।"

"देव, सुचेता उसकी वास्तविक माता है, विचेता नहीं।" बाबा बोले। किसी और का तो पता नहीं, बाबा अवश्य आनंद में थे। दशकों पश्चात यह पहली बार था कि वे किसी संकट को सुलझाने के भार से मुक्त थे। स्वयं संकटमोचन जो वहाँ उपस्थित थे!

हनुमान जी बोले, "बाबा, हम इस बात का निर्णय कैसे कर सकते हैं कि चित्ता की माता कौन है? जिससे चित्ता को आसक्ति है, वहीं उसकी माता है।"

इतनी बड़ी समस्या का इतना साधारण उपाय कैसे हो सकता है? बाबा के मन में एक विचित्र खीज उमड़ पड़ी। उसको छुपाते हुए वे बोले, "देव, चित्ता तो एक छोटा बच्चा है। हम उस पर यह निर्णय कैसे छोड़ सकते हैं कि उसकी माता कौन है? उसे वशीकरण के माध्यम से भ्रमित भी तो किया जा सकता है।"

"छोटा बच्चा? मेरी पूंछ की ओर देखो, बाबा। क्या यह अब छोटी प्रतीत नहीं हो रही है? किंतु यह छोटी-सी पूंछ कुछ क्षण पहले लम्बी थी। इसी पूंछ की सहायता से आप इस ऊंची चट्टान पर चढ़े हो।" हनुमान जी अपनी पूंछ को हवा में उछालते हुए बोले।

बाबा को अपनी त्रुटि की पहचान हुई तो बुदबुदाए, "क्षमा करें, देव। चित्ता छोटा बच्चा नहीं है। वह एक आत्मा है जो पहले कई जन्म जी चुका है। इसलिए वह उतना ही बड़ा है जितना मैं अथवा अन्य कोई मातंग जन। परंतु मेरे कहने का अर्थ था कि ..."

बाबा का ध्यान भटक गया क्योंकि बालक चित्ता उच्च स्वर में हंसने लगना था। कारण था हनुमान जी की पूंछ जो हास्यजनक रूप से सिकुड़ एवं बढ़ रही थी। हनुमान जी भी मंद-मंद मुस्कुरा रहे थे।

बालक चित्ता के ठट्ठों के स्वर शीघ्र ही एक विशेष भाषा के शब्दों में परिवर्तित हो गए। बाबा को लगा कि उन्होंने एक नवीन भाषा सीख ली थी - बाल ठट्ठों की भाषा।

चित्ता अपने बाल ठट्ठों के माध्यम से अपने पूर्व जन्म की कथा कह रहा था, "मैं एक साधु था... परमात्मा की खोज में भटक रहा था... हिंदूओं के देश भारतवर्ष में।

"काल और स्थान का बोध मैं कब का खो चुका था। परम सत्य को पाने की इच्छा मेरे भीतर भभक रही थी। एक बार की बात है, तीव्र पिपासा ने मुझे इंद्रियबोध करने पर बाध्य कर दिया। मुझे बोध हुआ कि मैं सुदूर किसी गाँव की ओर जाने वाली डगर पर नंगे पाँव चले जा रहा था। डगर के दोनों ओर फसलों से लहलहाते खेत थे। प्रचंड गर्मी की दुपहरी थी। जिस धरती पर मैं चल रहा था वह इतनी उष्ण थी कि उस पर भोजन पकाया जा सकता था।

"मेरी कठोर तपस्या से मेरी देह प्यास झेलने में अभ्यस्त थी। सामान्य प्यास का तो मुझे पता भी नहीं चलता था। मेरे मस्तिष्क द्वारा पानी पीने की चेतावनी देना इस बात का संकेत था कि मेरे देह-तंत्र में पानी की एक बूंद भी शेष नहीं बची थी।

"मेरे मन में स्वाभाविक विचार यही आया कि मुझे अपनी तीव्र पिपासा को माया की एक नई चुनौती मानकर हराना चाहिए। मुझे यह अपनी आध्यात्मिक शक्ति बढ़ाने का अवसर जान पड़ा था। किंतु किसी कारण से मैंने इस विचार को किनारे कर दिया और जल की खोज करने लगा। कदाचित देह की आवश्यकता मन की दृढ़ता पर भारी पड़ गई थी।

"मैंने आस-पास दृष्टि घुमाई तो किसी अन्य मानव के दूर-दूर तक होने का कोई चिन्ह तक दिखाई नहीं दिया। आशा की पहुँच दृष्टि से भी अधिक होती है। किंतु आशा को भी जल के होने का कोई चिन्ह नहीं मिला। मेरे पास एक विकल्प यह था कि मैं खेतों में घुसता और किसानों द्वारा किसी वृक्ष के नीचे रखे गए घड़े की खोज करता। दूसरा विकल्प यह था कि मैं जिस रास्ते पर चल रहा था उसी रास्ते चलता जाता और पास के गाँव में पहुँचकर किसी से पानी मांगता। मुझे दूसरा विकल्प सही लगा। खेतों में लहलहा रही फसलों के बीच कहीं अचेत होकर गिर जाता तो मुझे कोई देखने संभालने वाला नहीं होता। यदि गाँव के रास्ते पर चलते हुए अचेत हुआ तो कोई पथिक मेरी सुध ले लेगा, ऐसा सोचकर मैं आगे बढ़ता चला गया।

"कृपा हो प्रभु की, गाँव में घुसने से पहले ही फिरनी पर मुझे एक घर दिखाई दिया। घर क्या था, एक गोबर से पुती हुई और घास-फुस की छत से ढ़की झोपड़ी थी। उस झोपड़ी के सामने एक आँगन था। केवल एक वृक्ष उस पूरे आँगन को छाया दे रहा था।

"वृक्ष के नीचे चारपाई पर एक बालक लेटा था। उसकी आँखें खुली थीं, मानो वह पेड़ की पत्तियाँ गिन रहा हो।

"उस बालक की कल्पना के संसार में अतिक्रमण करने की मेरी कोई मंशा नहीं थी। खेदपूर्ण स्वर में मैंने निवेदन किया, 'हे बालक, क्या पीने के लिए पानी मिल सकता है?'

"बालक तुरंत उठ खड़ा हुआ और झोपड़ी के भीतर चला गया। पानी मिलने की आशा ने मेरे धैर्य का बाँध तोड़ दिया था। मेरे मन में एक ही विचार था कि कब मुझे पानी से भरा बर्तन मिले और कब मैं उसे अपने सूखे होठों से लगाऊँ। इसी विचार में अधीर होकर मैं बालक के पीछे-पीछे ही झोपड़ी में घुस गया। वहाँ मैंने कुछ ऐसा देखा कि मेरी प्यास तुरंत मर गई। झोपड़ी के भीतर का अंधेरा अमावस्या के अंधेरे से भी घना था। मृत्यु घात लगाए बैठी थी। कोई मृत्युशय्या पर पड़े हुए कराह रहा था।

“जैसे ही मेरी आंखों ने उस अंधेरे से मित्रता की, एक दुबली-सी महिला का अधमरा तन कोने में पड़ी चारपाई पर बिछा दिखाई दिया। ऐसा तन जो दीमक खाई हुई लकड़ी की तरह अंतिम अग्नि में स्वाहा होने के लिए तरस रहा था। उस मानव तन से अधिक जीवन उसके नीचे बिछी चारपाई में था। किसी अनजान के मृत तन को देखने पर हृदय से प्रार्थना निकलती है किंतु उस अधमरे तन को देखकर मेरा मन सुन्न हो गया था। सहानुभूति के ज्वार ने मेरे गले को रुँध दिया था। जब मुझे ध्यान आया कि उस महिला का बच्चा मेरे पास पानी का बर्तन थामे खड़ा था, बड़ी कठिनाई से मैंने दो शब्द निकाले। मैंने पूछा, ‘क्या ... क्या हुआ?’

“बच्चे ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने अपनी दृष्टि नीचे कर ली और अपने हाथ में पकड़े हुए पानी के बर्तन को एकटक देखने लगा। परंतु मेरी प्यास तो कब की मर चुकी थी। विचित्र बात थी कि मुझे वह पानी से भरा बर्तन आँख में पड़े कंकड़ जैसा लग रहा था। कहाँ कुछ पल पहले ही मैं प्यास से मरा जा रहा था और अब जब पानी सामने था, प्यास से भी अधिक पीड़ाजनक अनुभव ने मेरे मन को जकड़ लिया था। मैं एक साधु था। जब चिकित्सक हाथ खड़े कर देते हैं तब भक्तजन साधुओं से आस लगाते हैं। मुझे अपने दायित्व का भान हुआ। घुटने के बल बैठकर बालक की आंखों में आंखें डालकर मैंने पूछा, ‘कदाचित मैं आपकी माँ को स्वस्थ कर सकता हूँ। बताओ उन्हें क्या हुआ है?’

“उसके चेहरे पर ऐसे भाव थे जैसे उसे मेरा प्रश्न समझ नहीं आया या उसे समझने में कोई रुचि नहीं थी। मैंने सरल प्रश्न पूछा, 'बालक, आपके पिता कहाँ हैं?'

बालक ने कोई उत्तर नहीं दिया तो मैंने झोपड़ी के चारों और दृष्टि घुमाई कि कदाचित कोई संकेत मिल जाए। उस महिला की चारपाई के ठीक ऊपर दीवार पर हनुमान जी का एक बड़ा चित्र लटका दिखाई दिया। दीपक के धुएँ से चित्र काला हो चुका था। कदाचित महीनों हो गए थे चित्र पर कपड़ा भी नहीं मारा गया था। इसका अर्थ था कि रुग्णता लंबे समय से उस घर में कुंडली मारे हुए बैठी थी। चारपाई के पास पड़ी एक छोटी-सी मेज पर रखे दीपक के पास कुछ दवाइयों के पत्ते पड़े थे।

“उस घास-फूस की छत के नीचे पड़ी हर चीज अभिशप्त लग रही थी। नरक का एक छोटा-सा नमूना लग रही थी वह झोपड़ी। कुछ दिव्य था तो हनुमान जी का वह मैला चित्र जिसके ऊपर मेरी दृष्टि अटक जाना चाहती थी। वह चित्र नहीं चमत्कार की आशा थी। कदाचित उस परिवार ने तो आशा छोड़ दी थी परंतु मुझे उस चित्र को देखकर बहुत शांति मिल रही थी। चारों ओर हो रहे पीड़ा के भयानक नाच से दूर भागकर मेरे मन ने उस चित्र में शरण ले ली थी। कुछ क्षण पश्चात मैं पुनः उस पीड़ा की वास्तविकता में धड़ाम से गिर गया। दो जनों ने झोपड़ी में प्रवेश किया था। एक उस महिला का पति और दूसरा गाँव का कोई

कामचलाऊ चिकित्सक लग रहा था। जब रुग्णता ने हर पल को पहाड़ बना दिया हो तो पीड़ानाशक औषधि देने वाला भी भगवान का रूप लगता है। वह भगवान का रूप औषधि की सुई लगाकर उस महिला की पीड़ा का पहाड़ पिघलाने लगा। मैंने महिला के पति को सहानुभूतिपूर्ण किंतु प्रश्नात्मक दृष्टि से देखा।

“वह कुछ पल मेरे खुरदुरे चेहरे में झाँकता रहा, संभवतः यह आँकने के लिए कि मैं विश्वास का पात्र था या नहीं। तत्पश्चात उसने आसपास देखा कि उसका बालक तो नहीं सुन रहा था। पूर्णतः आश्वस्त होने के पश्चात वह धीरे से बोला, ‘मेरी घरवाली है… मृत्युशय्या पर पड़ी है… लंबी असाध्य रुग्णता से ग्रस्त है।’

“‘असाध्य? आपको किसने कहा? इस कामचलाऊ चिकित्सक ने? अरे मूर्ख, अपनी पत्नी को चिकित्सालय में लेकर जाओ।’ न जाने क्यों मैं अचानक क्रोध से लाल हो गया था। कहीं न कहीं मैं उस दुःखदायी स्थिति का दोष भगवान से हटाकर व्यक्ति की मूर्खता पर चिपकाना चाहता था।

“कामचलाऊ वैद्य ने धैर्यपूर्वक पीछे मुड़कर कहा, ‘इसे कर्करोग है संत जी, अंतिम चरण का कर्क रोग… जिन राजकीय चिकित्सालयों का व्यय यह भला व्यक्ति उठा सकता था उन सबके चिकित्सकों ने हाथ ऊपर खड़े कर लिए हैं। इसका उपचार नहीं हो सकता। मैं तो औषधि देकर केवल पीड़ा कम कर रहा हूँ।’

“मुझे कोई प्रत्युत्तर नहीं सूझा तो मैंने हनुमान जी के चित्र की ओर दृष्टि डालकर उन्हें मौन उलाहना दिया और लाचार होकर झोपड़ी से बाहर आ गया।

“बहुत मन किया कि मैं अपनी लाचारी अपने पैरों पर निकालूं और घंटो तक चलता रहूँ। पहले भी जब मैंने संसार के दुःख देखे थे तो घंटों बिना गंतव्य चलकर अपने मन को हल्का किया था। किंतु झोपड़ी के बाहर पेड़ के नीचे चारपाई पर लेटे उस बालक के पास आकर मेरे पाँव थम गए।

“वह बालक अपने विचारों में खोया हुआ था। मेरी लाचारी लुप्त हो गई और अंतर्मन से करुणा उमड़ पड़ी। मैं चारपाई पर बालक के पास बैठकर उसके बालों में हाथ फेरने लगा।

“जिस मानसिक उथल-पुथल में वह बालक था उसे मैं समझ सकता था। उस बच्चे की चुप्पी देवताओं के क्रोध से भी भयानक थी। मुझे अपनी आत्मा पर एक ऐसा भार अनुभव हुआ जिसका निराकरण कोई यज्ञ भी नहीं कर सकता था। उसके मुख से कुछ बुलवाने के लिए मैं बोला, ‘आज विद्यालय नहीं गए, पुत्र?’

“उत्तर देना तो दूर की बात है, उसने अपनी आँख की बौंह तक नहीं हिलाई। भावनाओं के ज्वार को रोकने के लिए मैंने अपने जाड़ भींचे। बालक के बाल सहलाते हुए मेरी दृष्टि उसके हाथ पर पड़ी। उसकी दाईं कलाई पर अग्नि ने चिन्ह छोड़ रखा था। मैंने बातचीत प्रारम्भ करने की पुनः चेष्टा की, 'यह क्या हुआ? पटाखों से खेल रहे थे क्या?'

“उसने हाथ ऊपर उठाकर उस चिन्ह को देखा। अंततः उसके मुख से शब्द निकले, ‘यह... यह तो भोजन पकाते हुए जल गया था।’

“मेरी भावनाओं का बाँध टूट गया। जिस आयु में बच्चा अपनी माता के हाथों से भोजन करता है उस आयु में इस बच्चे को अपने परिवार के लिए भोजन बनाना पड़ रहा था। परिस्थितियों की ऐसी भी क्या क्रूरता? मैं उठ खड़ा हुआ और उसी मार्ग की ओर बढ़ चला जिस पर होते हुए मैं पानी की खोज में गाँव की ओर बढ़ रहा था। मैंने अपने क्रोध को दिशा दी तो लक्ष्य बने हनुमान जी। वे अपने भक्तों को इस तरह तड़पता कैसे देख रहे थे? वे कुछ कर क्यों नहीं रहे थे?

“मैं मार्ग पर पहुँचा ही था कि मेरी जलरहित देह ने उत्तर दे दिया। मैं अचेत होकर गिर पड़ा।

“जब चेत आया तो मैं एक चारपाई पर लेटा हुआ था। यह वही चारपाई थी जिस पर कुछ देर पहले बच्चा लेटा हुआ था। पास में भूमि पर बैठी थी वह महिला जो कुछ देर पहले मृत्युशय्या पर लेटी हुई थी। आश्चर्य यह था कि वह पूर्णतः स्वस्थ थी। मैंने खड़ा होने की चेष्टा की तो महिला के पति ने मेरी गर्दन को सहारा दिया। क्या मैं सपने में था? मैं अपनी शंका को स्वयं तक सीमित नहीं रख सका। धीरे से अपनी गर्दन उस व्यक्ति की ओर घुमाकर मैंने कहा, ‘कुछ समय पहले आपकी पत्नी मृत्यु शय्या पर थी। आप कह रहे थे कि वह ऐसी रुग्णता से ग्रस्त है जिसका उपचार संभव नहीं।’

“उसके चेहरे पर अचानक भय और अविश्वास के भाव आ गए। उसने अपनी पत्नी के चेहरे पर भी भय का भाव आते देखा। अर्थात उसने जो सुना था वही उसकी पत्नी ने भी सुना था। सुनने में कोई त्रुटि नहीं हुई थी। एक संत, अर्थात मैं, उसके घर में मृत्यु के पैर पड़ने की बात कर रहा था।

“मुझे भी कुछ समझ नहीं आ रहा था। मैंने आगे कहा, ‘हाँ भाई, मैं कुछ देर पहले पानी की खोज में आपके घर आया था। आपके बालक से मैंने पानी मांगा था। मैं उसके पीछे-पीछे झोपड़ी में गया था जहाँ यह महिला मृत्युशय्या पर थी ... बहुत कष्ट में थी यह स्त्री।’

“यदि मेरे तन पर भगवे वस्त्र तथा मेरे चेहरे पर दिव्यता का तेज न होता तो उन्हें मैं पागल जान पड़ता। जो शब्द किसी पर भी पागलपन का ठप्पा लगवा सकते थे वहीं शब्द मेरे मुख से एक रहस्यमय व्याख्यान जान पड़ते थे।

“उस पुरुष ने आदरपूर्वक हाथ जोड़कर कहा, ‘हे संत जी, मैं और मेरी पत्नी दरिद्र श्रमिक हैं। हम पास के खेतों में काम करते हैं और दोपहर के भोजन के लिए घर पर आते हैं। आज जब हम भोजन करने आ रहे थे तो आप हमें मार्ग पर अचेत अवस्था में मिले। हमने तो आपको पहले कभी देखा तक नहीं है। आप कैसे जानते हैं कि हमारा एक बच्चा है?’

“उस माँ को लगा कि उसका बच्चा संकट में था। उसने तुरंत अपने बच्चे का नाम पुकारा। बच्चा दौड़ते हुए बाहर आया। उसके हाथ में एक रोटी का टुकड़ा था जिसको वह गुड़ के साथ खा रहा था। मुंह के भीतर के निवाले को शीघ्रता से चबाकर वह अपने माँ के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए तैयार हो गया।

“आश्चर्य यह था कि उसने भी मुझे पहचानने से मना कर दिया।

“कुछ तो गड़बड़ थी। अब उस माँ से अधिक आशंकाएँ मेरे मन में उमड़ रही थीं। मैं तुरंत अपने पैरों पर खड़ा हुआ। उस सरल परिवार को शंका की पैनी दृष्टि से देखते हुए मैं बोला, ‘मैं सिद्ध कर सकता हूँ कि कुछ देर पहले मैं इस घर में आया था। हाँ, मैं सिद्ध कर सकता हूँ... आपके बच्चे के दाएँ हाथ पर जलने का चिन्ह है। उसने मुझे बताया था कि भोजन पकाते हुए उसका हाथ जला था।’

“यह सुनकर उस माँ के जैसे प्राण कंठ में आ गए। वह जिस तरह भूमि पर बैठी थी वैसे ही बैठी रही और अपने बच्चे को कसकर पकड़ लिया। वह आतंकित स्वर में बोली, ‘कृपा करके हमारे साथ ऐसा मत कीजिए। हम दरिद्र जन हैं। उपकार कीजिए, संत जी। हमारा एक ही पुत्र है। हाँ, उसके हाथ पर जले का चिन्ह है किंतु वह भोजन पकाने के कारण नहीं है। मेरे होते हुए भला वह भोजन क्यों पकाएगा? उसका हाथ गर्म बर्तन से तब छू गया था जब वह गेंद से खेल रहा था। उपकार कीजिए, हमारे बच्चे को हमसे अलग मत कीजिए।’

“उसने कदाचित सोचा था कि मैं उसके बच्चे को साधु बनाकर अपने साथ ले जाने वाला था। मैं उसके मिथ्याबोध को मिटाते हुए तुरंत बोला, ‘नहीं, नहीं... मैं उसे साधु नहीं बनाने वाला हूँ। मैं तो केवल यह सिद्ध करने की चेष्टा कर रहा हूँ कि मैं कुछ देर पहले आपके घर आया था। आपकी झोपड़ी में क्या-क्या है वह भी मैं गिना सकता हूँ। एक हनुमान जी का चित्र है। नीचे एक मेज है जिस पर दीपक रखा है…'

“यह सुनकर वह माँ मेरे चरणों में गिर पड़ी और साथ में अपने बच्चे को भी गिरा लिया। जब उसे भान हुआ कि मेरे चरणों में उसके परिवार का एक व्यक्ति कम था, उसने अपने पति को भी संकेत करके बुला लिया। वह निर्मल परिवार मेरे चरणों में गिरकर दया की भीख मांगने लगा।

“मेरे भगवे कपड़े और चेहरे के तेज को देखकर व्यक्ति प्रायः मेरे पैर पड़ते थे, इसमें कुछ नया नहीं था। परंतु यह परिवार तो इस तरह मुझसे भीख मांग रहा था जैसे मैं कोई कट्टरपंथी था। आदर से अधिक भय था उनके इस साष्टांग प्रणाम में! मुझे स्वयं पर घिन्न आ रही थी कि मैंने एक सरल परिवार को, अनजाने में ही सही, अपने चरणों में झुका दिया था।

“मैं तुरंत मुड़ा और उस परिवार को भूमि पर गिरा छोड़कर गाँव के मुख्य मार्ग की ओर चल पड़ा। पीछे से उस माँ का निवेदन स्वर आ रहा था, ‘हे संत जी, आप अतीत, वर्तमान और भविष्य सब देख सकते हैं। हम पर क्रोधित होकर मत जाइए। हमें क्षमा कर दीजिए।’

“स्वयं को दोष देते हुए और मन में सहस्त्रों प्रश्नों का बवंडर लिए मैं मुख्य मार्ग पर पहुँचा और गाँव की ओर बढ़ चला।

“गाँव शुरू होते ही दाएँ हाथ की ओर कुछ पक्के मकान दिखाई दिए और बाएँ हाथ की ओर एक सरोवर। कुछ देर पहले भयंकर प्यास के कारण अचेत हुए मनुष्य के लिए सरोवर के दर्शन स्वाभाविक रूप से सुखदायक थे। पानी गहरा नहीं था। गायें चैन से सरोवर के बीच में खड़े होकर जुगाली कर रही थीं और उनके गवैये भी, जो अधिकतर किशोर लड़के थे, पानी में मस्ती कर रहे थे। मैंने किनारे पर स्थित एक पीपल के पेड़ के नीचे विश्राम करने का निर्णय लिया जहाँ से सरोवर के बहुत अच्छे दर्शन हो रहे थे।

“सरोवर की सतह को छूकर आ रही ठंडी-ठंडी हवा ने जैसे ही मेरे बालों को सहलाया, मुझे नींद आ गई और मैं स्वप्नलोक में चला गया जहाँ का दृश्य अलौकिक था। वह तो लोक ही अलग है, दृश्य तो अलौकिक होंगे ही! किंतु वह दृश्य मैं अब तक नहीं भूला हूँ। स्वप्नलोक के दृश्य एक दिन से अधिक समय तक स्मरण नहीं रहते। क्या वह दृश्य स्वप्नलोक का था या किसी अन्य लोक का?

“मेरे सामने स्वर्ग की तरह पवित्र श्वेत कोहरे से ढकी एक जगह थी। मुझे नहीं पता वह जंगल था या नगर। कुछ दिखाई नहीं दे रहा था सिवाय दो सुरंगों के। एक सुरंग लाल रंग से प्रकाशित थी और दूसरी हरे रंग से। और मैं कौन था?

“मैं देह रहित था। देह थी तो बिल्कुल ही भारहीन थी। वह देह थी या धुआँ या मात्र दिव्य प्रकाश की आकृति? जो भी थी मुझे लग रहा था कि वह मेरी देह थी, कि वह मैं था।

“मेरा वहाँ होने का क्या उद्देश्य था? मुझे कहाँ जाना था?

“हमें किस ओर जाना है और क्या करना है यह तो हमारे मन में आए हुए विचार तय करते हैं। विचार न जाने कहाँ से आते हैं। क्या वे सच में हमारे विचार होते हैं अथवा किसी बाहरी शक्ति द्वारा हमारे मन में रोपित किए जाते हैं?

“उस क्षण में मेरे मन में विचार था कि मुझे उन दो सुरंगों में से एक को चुनना था। मैं जिस भी लोक में था, उससे निकलकर मानवलोक में आने का रास्ता केवल वे दो सुरंगे थी। मुझे उनमें से एक को चुनना था।

“जैसे ही मैं सुरंग के द्वार की ओर बढ़ा, मेरे पीछे से एक दिव्य वाणी गूँजी, ‘हे आत्मा! वर्षों की तपस्या के पश्चात आपने यह सिद्धि प्राप्त की है कि आप जैसा जीवन चाहो वैसा जीवन चुन सकते हो। जिस सुरंग को चुनोगे उसके अनुसार आपका उस पार का जीवन होगा।’

“मैंने उस वाणी को ध्यानपूर्वक सुना। किंतु न जाने क्यों मुझे मुड़कर यह देखने का विचार नहीं आया कि वह किसकी वाणी थी। मैं लाल सुरंग की ओर आगे बढ़ गया।

“सुरंग भीतर से एक श्वेत पटल की तरह थी जिस पर त्रिआयामी दृश्य प्रदर्शित हो रहे थे। वे दृश्य इतने वास्तविक लग रहे थे जैसे वे दृश्य नहीं अपितु वास्तविक जीवन था। उन दृश्यों में एक साधु एक गाँव के मार्ग पर चल रहा था। मुझे लग रहा था कि वह साधु मैं ही था। और मैं उन दृश्यों का एक भाग होते हुए भी उनसे दूर था। वास्तविक जीवन में हम अतीत और भविष्य काल में जब चाहे नहीं जा सकते। उस सुरंग में मैं पीछे की ओर भी चल सकता था और आगे भी। अर्थात मैं उस साधु के जीवन के भविष्य और अतीत में स्वतंत्रता से भ्रमण कर सकता था।

“मैंने देखा कि वह साधु, अर्थात मैं, पानी की खोज में गाँव की ओर बढ़ रहा था। गाँव आने से पहले ही उसे एक झोपड़ी वाला घर दिखा। वहाँ उसने बच्चे से पानी मांगा और उसके पीछे-पीछे झोपड़ी में घुसा जहाँ एक महिला मृत्युशय्या पर अंतिम श्वास ले रही थी। उसने महिला के पति और एक कामचलाऊ चिकित्सक के साथ वार्तालाप किया। तत्पश्चात बाहर आकर बच्चे के सिर को सहलाया। परिवार के कष्ट को देखकर वह इतना दुःखी हुआ कि बिना जल ग्रहण किए वापिस मार्ग की ओर बढ़ा। मार्ग पर पहुँचने से पहले ही वह अचेत होकर गिर पड़ा। एक पथिक ने उसको देखा और उसे पानी पिलाया। उस पथिक का

मृत्युशय्या पर पड़ी महिला के परिवार से कोई संबंध नहीं था। चेत आने के पश्चात साधु आगे गाँव की ओर बढ़ गया। सरोवर के किनारे पीपल के पेड़ के नीचे जब वह विश्राम करने बैठा, कष्ट भोग रहे उस परिवार की सहायता न कर पाने की अपनी अवस्था का विचार करते-करते उसे नींद आ गई।

"साधु के जीवन के इन दृश्यों को समझने की चेष्टा मैं कर ही रहा था कि पीछे से दिव्य वाणी सुनाई दी, 'हे आत्मा! आपने अभी जो जीवन इन दृश्यों में देखा, वह जीवन आपको चाहिए तो इस सुरंग से निकल जाओ। जैसे ही आप निकलोगे, आप स्वयं को पीपल के पेड़ के नीचे पाओगे। हाँ, इस जीवन में वह पीड़ित महिला ठीक नहीं हुई है और न ही होगी। आप उसके घर से दूर सरोवर के पास आ गए हो और विश्राम करके आगे बढ़ जाओगे।'

"मैं ऐसे जीवन को कैसे स्वीकार कर सकता था जिसमें वह महिला एक छोटे से बच्चे को अपने पीछे छोड़कर परलोक सिधारने वाली थी? मैं उस परिवार की सहायता नहीं कर पाने के दोष को लेकर कैसे जी सकता था? मैं पीछे मुड़ा। पीछे जाते समय मुझे वहीं दृश्य उल्टे क्रम में दिखाई दिए।

"उस लाल सुरंग के आधे रास्ते में मैं रुक गया क्योंकि मुझे वहाँ से हरी सुरंग में जाने का छोटा द्वार दिखाई पड़ा। वह एक छुपा हुआ द्वार था जो लाल सुरंग को हरी सुरंग से जोड़ता था।

"पीछे से दिव्य वाणी आई, 'हे आत्मा! यदि आप चाहो तो यह रास्ता भी चुन सकते हो। आधी लाल सुरंग और आधी हरी सुरंग से बना यह रास्ता आपको एक अलग जीवन में ले जाएगा। उस जीवन में आपको एक बहुत बड़ी पहेली के साथ जीना पड़ेगा। लाल सुरंग वाले जीवन में महिला मृत्युशय्या पर है और तत्पश्चात मर जाती है। वहीं हरे रंग वाली सुरंग में महिला कभी मृत्युशय्या पर नहीं थी। वह स्वस्थ है और लम्बे समय तक जीवित रहेगी। लाल सुरंग के बीच से होकर यदि हरी सुरंग में जाओगे तो आपको इस पहेली का सामना करना पड़ेगा कि यह चमत्कार कैसे हो गया। मृत्युशय्या पर पड़ी महिला अचानक न केवल स्वस्थ हुई मिलेगी अपितु उसको स्मरण भी नहीं होगा कि वह कभी अस्वस्थ थी। उसके परिवार वालों या उसके किसी भी जानने वालों से पूछोगे तो वे यही कहेंगे कि वह कभी अस्वस्थ थी ही नहीं।'

"मैंने उस जीवन को नहीं चुना। मैं किसी बेहतर विकल्प की खोज में पीछे मुड़ गया। दिव्य वाणी ने मंत्रणा दी, 'लाल सुरंग के बीच से हरे रंग की सुरंग में घुसने की बजाय शुरू से ही हरे रंग की सुरंग में घुसकर हरे रंग की सुरंग से ही बाहर निकलोगे तो लाल रंग

की सुरंग का प्रभाव नहीं आएगा। इस तरह आप जिस जीवन में प्रवेश करोगे वह जीवन इस चमत्कारिक पहेली से मुक्त होगा।'

"मैंने वैसा ही किया। पहले मैं बाहर आया जहाँ दोनों सुरंगों के मुख्य द्वार मेरे सामने थे और तत्पश्चात मैं हरे रंग की सुरंग में घुसा। वह सुरंग पूरी तरह हरे रंग के प्रकाश से भरी थी। लाल रंग की एक किरण भी नहीं थी। सुरंग से दिखाई दे रहे दृश्य भी अलग थे - साधु अर्थात मैं पानी की खोज में गाँव की ओर बढ़ रहा था। गाँव शुरू होने से पहले ही झोपड़ी वाला घर दिखाई दिया। मुख्य मार्ग से उस घर की ओर जाने वाली गली में वह मुड़ने ही वाला था कि अचेत होकर गिर पड़ा। काम से दोपहर का भोजन करने के लिए लौट रहे उस दंपति ने उसको देखा और उसकी देखभाल की। जब उठा तो उसने स्वयं को उस दंपति के आंगन में लगे पेड़ के नीचे चारपाई पर सोए हुए पाया। उसने दंपति को आशीर्वाद दिया और पानी पीकर गाँव की ओर बढ़ गया। वहाँ सरोवर के किनारे पीपल के पेड़ के नीचे विश्राम करने बैठा तो उसे नींद आ गई।

"मैं हरी सुरंग से बाहर निकलने ही वाला था कि पीछे से दिव्य वाणी गूँजी, 'यदि आपको यह जीवन रुचिकर है तो इस सुरंग से होकर बाहर निकलो। निकलते ही आप स्वयं को पीपल के पेड़ के नीचे जगा हुआ पाओगे। इस जीवन में न तो कोई महिला मृत्युशय्या पर है और न ही इसमें कोई चमत्कार से संबंधित पहेली है।'

"यह विकल्प सबसे श्रेष्ठ लग रहा था किंतु मैंने इसे भी नहीं चुना। मैं पीछे मुड़ा और सुरंग को पार करके उसके मुख्य द्वार से बाहर निकल गया।

"अब मैं पुनः उस स्वप्न जैसे दृश्य में खड़ा था। मेरी देह प्रकाश की बनी हुई थी। सामने था स्वर्ग जैसा श्वेत कोहरा और उसको पाटती दो सुरंगे - एक लाल और एक हरी।

"दिव्य वाणी पीछे से गूँजी, 'हे आत्मा! आपको जीवन में प्रवेश करने के लिए कोई एक सुरंग तो चुननी पड़ेगी। बताओ कौन सी चुनते हो - हरी अथवा लाल?'

"मैंने उत्तर दिया, 'कोई भी नहीं। सभी जीवन भ्रम मात्र हैं। वे सब सृष्टि के मंच पर चल रहे नाटक मात्र हैं। मुझे किसी नाटक का भाग नहीं बनना है।'

"दिव्य वाणी ने दृढ़तापूर्वक कहा, 'यह आपको भ्रम जान पड़ते हैं क्योंकि अभी आप उनमें से किसी को भी चुन सकते हो। जैसे ही आप किसी एक को चुन लोगे और उसे जीने लगोगे, वह जीवन आपको कठोर सत्य लगेगा। ऐसा सत्य जिसको जीते हुए वास्तविक सुख व दुःख अनुभव होता है।'

“मैंने भी दृढ़ता से कहा, ‘मैं सुख व दुःख दोनों से मुक्ति चाहता हूँ। मैं जीवन तथा मरण दोनों से मुक्ति चाहता हूँ। मैं मोक्ष चाहता हूँ।’

“दिव्य वाणी ने मुझे पीछे मुड़ने को कहा। मैंने वैसा ही किया। सामने हनुमान जी खड़े थे। हाँ, वह हनुमान जी की वाणी थी! एक पिता की भांति उन्होंने अपना एक हाथ आगे कर रखा था जो मैंने तुरंत थाम लिया और उसके पश्चात मैंने मातंग समाज में चित्ता के रूप में जीवन प्राप्त किया।”

चित्ता के ठहाके थम गए। एक क्षण का मौन छाया रहा जिसमें बाबा, सुचेता और विचेता ने चित्ता द्वारा बताई गई उसके पिछले जन्म की कहानी को आत्मसात किया।

कहानी अधूरी थी जिसे हनुमान जी ने पूरा किया, "उस दोपहर उस गाँव में सरोवर के किनारे पीपल के पेड़ के नीचे उस साधु ने देह त्याग कर दिया और चित्ता के पिछले जन्म की जीवन कहानी का वही अंत हो गया।”

बाबा ने गहरी श्वास छोड़ते हुए कहा, "अपने पिछले जन्म के अंतिम दृश्य में चित्ता ने उस सुरंग वाली पहेली का सामना किया। और इस जीवन में भी उसका वैसी ही एक पहेली से सामना हो रहा है। उसे नहीं पता कि उसे किस माता ने जन्म दिया। सुरंग वाली पहेली को तो उसने सुलझा लिया था। या केवल मौखिक रूप से सुलझाया था? उसे यदि वास्तविक बोध हो गया होता तो उसे नया जन्म लेना ही न पड़ता।”

हनुमान जी मुस्कुराए। उनकी उस मुस्कुराहट में सहस्त्रों ग्रंथों का सार छिपा था। वे बोले, "इस जीवन में उसे बोध हो जाएगा। यह दो माताओं की पहेली उसके लिए सहायक बनेगी। उसकी आत्मा जागृत हो जाएगी। उसे बोध होने लगेगा कि तेरा-मेरा आदि सब भ्रम की रस्सियाँ हैं जो हमें इस नश्वर संसार से जकड़ कर रखती हैं। ‘मेरी मां’, ‘मेरे पिता’, ‘मेरे मित्र’ आदि सब संबोधन इस नश्वर संसार के नाटक के संवाद का भाग मात्र हैं।”

हनुमान जी ने पुनः मुस्कुराकर बाबा की समझ को सराहा। सुचेता को लगा कि हनुमान जी ने उसे पूरे जीवन मातृत्व की उस दुःखद पहेली को झेलने का दंड सुना दिया था। इसके बदले उसे मृत्युदंड स्वीकार होता। उसके मन का भय आँसुओं के रूप में प्रदर्शित हुआ।

हनुमान जी शांत स्वर में बोले, "जैसा कि मैंने शुरू में कहा, चित्ता के लिए निर्णय लेने का अधिकार किसी को नहीं है। चित्ता किसको अपनी माँ चुनता है वह उस पर छोड़ देना चाहिए। दो दिन पहले पूर्णिमा की रात को उसकी आत्मा मुझसे मिली थी। मैंने उसे

सात सुरंगे दिखाई थीं जो सात अलग-अलग जीवनों का प्रतीक थीं। उनमें से एक का चुनाव करने का विकल्प मैंने उसे दिया था।

"पहले जीवन में सुचेता उसकी माता है और विचेता के मन में उसके प्रति कोई ममता नहीं है।

"दूसरे जीवन में भी सुचेता उसकी माता है परंतु विचेता के मन में उसके प्रति एकपक्षीय पीड़ाजनक ममता है।

"तीसरे जीवन में विचेता उसकी माँ है और सुचेता के मन में उसके प्रति कोई ममता नहीं है।

"चौथे जीवन में विचेता उसकी माता है परंतु सुचेता के मन में उसके प्रति पीड़ाजनक एकपक्षीय ममता है।

"पांचवा जीवन पहले और तीसरे का मिश्रण है जिसमें सुचेता और विचेता एक-एक पखवाड़े के लिए उसकी माता बनती हैं। जब एक उसकी माँ होती है तो दूसरी के मन में उसके प्रति कोई ममता नहीं होती है। इसलिए कोई कलह नहीं है।

"छठा जीवन दूसरे और चौथे का मिश्रण है। सुचेता और विचेता बारी-बारी से एक-एक पखवाड़े के लिए उसकी माँ बनती हैं। इस जीवन में दोनों माताओं के बीच कलह है क्योंकि जब एक माँ होती है तो दूसरी के मन में भी एकपक्षीय ममता होती है।

"सातवें जीवन में वह अनाथ बालक है। न सुचेता और न ही विचेता के मन में उसके प्रति ममता है।

"उसकी आत्मा ने छठे जीवन को चुना क्योंकि इस जीवन में उसकी आत्मा संसार की मोह माया और बंधनों के प्रति जागृत रहेगी जिससे उसको मोक्ष प्राप्त करने में सहायता मिलेगी।"

सुचेता को यह जानकर चैन मिला कि उससे उसका बच्चा सदा के लिए नहीं छीना गया था। अगले पखवाड़े वह पुनः उसकी गोद में खेलेगा, इस आशा में सुचेता थोड़ी-सी प्रफुल्लित हुई। और प्रफुल्ल होने का यह भी तो कारण था कि हनुमान जी 41 वर्ष पश्चात मातंगों से मिलने आए थे।

हनुमान जी के समझाने के पश्चात सुचेता और विचेता ने एक दूसरे के प्रति घृणा की भावना त्याग दी। कलह तो था परंतु इस बात पर संतोष भी था कि वे दोनों एक-एक पखवाड़े बारी-बारी से चित्ता की माता का किरदार निभाने वाली थीं।

अध्याय 2

जलकन्या

JOIN @EBOOKSIND बाबा पूर्वजों की चट्टान की तलहटी पर बैठे थे। थोड़ी देर पहले चट्टान के ऊपर जो कुछ भी उन्होंने देखा और अनुभव किया था, वे उसको अपने स्थूल मन से पचाने की चेष्टा कर रहे थे। वे तो वहाँ अपने पूर्वजों से बात करने गए थे परंतु उन्हें वहाँ मिल गए थे उनके व उनके पूर्वजों के गुरु हनुमान जी। हनुमान जी से यूं अचानक मिलना और बातें करना उनकी आत्मा के लिए दिव्य अनुभव था किंतु उनके स्थूल मन के लिए यह पचाना कठिन था।

यह विचार कि हनुमान जी अभी भी उस चट्टान पर थे, उनके तन-मन में परमसुख की बिजलियाँ दौड़ा रहा था। एक मन से तो वे चाहते थे कि वे वहीं बैठे रहें, हनुमान जी के जितना पास हो सके उतने पास। दूसरे मन से वे अपने डेरे पर शीघ्र से शीघ्र पहुँचकर अपने समाज के साथ उत्सव मनाना चाहते थे। उन्होंने हनुमान जी के आने का परम सुखद समाचार सुचेता और विचेता के हाथों पहले ही डेरे में भेज दिया था।

सभी मातंगों की दृष्टि में बाबा मातंग का पद देवों के ठीक पश्चात का था। उनकी छवि एक ऐसे बूढ़े बुद्धिमान की थी जिनका चेहरा सदैव भावरहित रहता था। परंतु आज उनके मन में इतनी प्रसन्नता थी कि वे स्वयं को नाचने से नहीं रोक पा रहे थे। परमसुख में बावले की तरह नाचते हुए वे कैसे लगेंगे? मातंग क्या सोचेंगे? नहीं, उन्हें अपने भीतर उमड़ रहे परमसुख के ज्वार को शांत करना होगा! उन्हें अपने डेरे में पहुँचकर यह दर्शाना होगा कि हनुमान जी का आगमन कोई विशेष बात नहीं थी! वैसे भी, मातंगजन हनुमान जी के परम शिष्य हैं जिनसे मिलने हनुमान जी हर 41 वर्ष पश्चात आते रहते हैं।

मन में उमड़ रहा परमसुख का ज्वार इतनी शीघ्र शांत नहीं होने वाला था। वे पूरी रात वही चट्टान की तलहटी पर बिताने की सोच ही रहे थे कि उनके मन में एक तर्कयुक्त विचार प्रकट हुआ। क्या पता हनुमान जी डेरे में पहुँच गए हो? वे चिरंजीवी हैं। उन्हे वहाँ पैरों से चलकर थोड़े ही जाना है? वे एक जगह से अंतर्ध्यान होकर दूसरी जगह प्रकट हो सकते हैं। उन्होने यह तो नहीं कहा था कि वे सुबह होने पर ही शेष मातंगों को दर्शन देंगे। क्या पता वे नीचे पहुँच चुके हों?

बाबा तुरंत खड़े हो गए और तेजी से लुढ़कते हुए पत्थर की तरह पहाड़ी से उतरने लगे। उनके मन में विचार आ रहे थे कि अगले कुछ दिन कैसे उनके डेरे में उत्सव का वातावरण होगा, कैसे चरणपूजा होगी और कैसे हनुवाणी गूंजेगी।

बाबा सामान्यतः वर्तमान काल में जीवन जीते थे। वे न भविष्य का सोचते थे और न ही अतीत का। किंतु आज वे वर्तमान में नहीं रुक पा रहे थे।

वे कल्पना कर रहे थे कि कैसे मातंग समाज के जन हनुमान जी के आगमन का समाचार पाकर उत्सव मना रहे होंगे। कैसे वे नाच गा रहे होंगे और कैसे वे बावलों की तरह उछल-कूद कर रहे होंगे। यदि हनुमान जी वहाँ पहुँच गए होंगे तो सब जन उनके चारों और शांति से बैठे होंगे और उनसे पिछले 41 वर्ष की उनकी लीलाएँ सुन रहे होंगे।

‘किंतु मैं बाबा मातंग हूँ, मैं उत्सव में समय नष्ट नहीं कर सकता। मुझे तुरंत उस महाचरणपूजा की तैयारियों में लगना होगा जो अगले कुछ दिनों तक लगातार की जाएगी। क्या चरणपूजा के किसी एक सत्र में मेरी आत्मा मुक्त होकर परमधाम को प्रस्थान करेगी? या मुझे कुछ और समय इस मानव देह में बिताना होगा?’

पूरे रास्ते बाबा का मन कल्पना के झाड़ों में भटकता रहा और अंततः वे एक मानसिक खड्डे में कुछ इस तरह गिर पड़े कि उनके तन को भी झटका अनुभव हुआ।

उन्होंने जो भी कल्पना की थी वैसा कुछ भी नहीं हो रहा था। उनके डेरे पर सब सोए हुए थे। केवल एक बूढ़ी, पतली-सी महिला जाग रही थी जो उनकी झोपड़ी के बाहर आग जलाकर बैठी थी। वे बाबा की पत्नी माता थीं जो संभवतः अपने पति के पुनः लौटने की प्रतीक्षा कर रही थीं। आग लगभग बुझ चुकी थी और उनकी दार्शनिक आँखें बुझते हुए अंगारों में जीवन की सच्चाई देख रही थी।

"क्या सुचेता-विचेता यहाँ नहीं पहुँचे हैं?" बाबा ने चिंतित स्वर में इधर-उधर देखते हुए पूछा। चित्ता की दोनों माताएँ जिनके हाथों उन्होंने हनुमान जी के आगमन का समाचार पहुँचाया था, कहीं दूर-दूर भी दिखाई नहीं दे रही थीं।

"वे पहुँच चुकी हैं।" माता ने बुझती आग में टहनियाँ और सूखे पत्ते झोंकते हुए कहा।

जब आग पुनः जल उठी, अपनी छोटी-छोटी आँखें मसलते हुए माता बोलीं, "वे दोनों आते ही फूट-फूट कर रोने लगीं और बिना कुछ बोले भीतर चली गईं। तो हमारे पूर्वज भी उनके झगड़े को नहीं सुलझा पाए?"

बाबा लगभग चिल्लाते हुए बोले, "तो क्या उन्होंने हनुमान जी के आगमन का समाचार नहीं दिया?"

बाबा बलपूर्वक बोले थे परंतु ऐसा लगा जैसे माता ने कुछ भी नहीं सुना। माता ने आग पर पानी से भरा एक बर्तन रख दिया।

बाबा के हर शब्द को मातंगों द्वारा सिर आंखों पर रखा जाता था। जब उनके यह शब्द अनसुने हुए तो उन्हें विचित्र लगा। वे उच्च स्वर में बोले, "माता मातंग, क्या आपने सुना नहीं मैंने क्या कहा? हनुमान जी आ गए हैं!"

"क्या नहीं सुना, बाबा?" माता बोलीं, "आप इतने तनाव में क्यों हैं? झगड़ा नहीं सुलझा तो कोई और रास्ता निकल जाएगा, आप तनाव मत लीजिए।"

बाबा माता के सामने उकड़ू बैठे, अपनी आंखों को चौड़ा किया, माथे पर सिलवटें लाते हुए और एक-एक शब्द पर शक्ति लगाते हुए वे बोले, "हनुमान... जी... आ... गए... हैं..."

बाबा के होठों को पढ़कर कोई बहरा भी समझ सकता था कि उन्होंने क्या कहा परंतु किसी कारण से माता को कुछ सुनाई नहीं दिया। और तो और, उन्हें बाबा के होठों में गति भी दिखाई नहीं दी। उन्हें केवल यह दिखाई दिया कि बाबा का चेहरा तनाव से लाल हुआ। कुछ तो गड़बड़ थी - सुनने और बोलने वाले के बीच, प्रस्तुतकर्ता और दर्शक के बीच, संदेश भेजने और प्राप्त करने वाले के बीच।

अलग-अलग वाक्य और ऊंची-नीची ध्वनि के साथ प्रयोग करने के पश्चात बाबा को भान हुआ कि वे शेष सभी बातें माता तक पहुँचा पा रहे थे सिवाय हनुमान जी के आगमन की बात के। मातंगों के मुखिया के रूप में अपने जीवन के सबसे शुभ समाचार को बांट न पाने की पीड़ा से उनका हृदय भर आया और वे रो पड़े।

माता ने कुछ देर पहले सुचेता और विचेता को भी ऐसे ही रोते हुए देखा था। वे बाबा के समीप आईं और उनके कंधे पर हाथ रखकर उन्हें धीरज बँधाने लगीं। मातंगों में कलह होना दुर्लभ था और उससे भी दुर्लभ था बाबा की आँख में आँसू आना। माता ने सोचा कि बाबा सुचेता और विचेता के बीच के झगड़े को समाप्त न कर पाने के दुःख में रो रहे थे। वे बोलीं, "बाबा, आप दुःखी न हों। आज नहीं तो कल, झगड़ा सुलझ जाएगा।"

बाबा ने अपने हाथ से अपने आँसू पोंछे और गहरी श्वास लेते हुए भूमि पर टिककर बैठ गए। जब माता ने देखा कि बाबा को एकांत की आवश्यकता है, उन्होंने अपना हाथ बाबा के कंधे से हटा लिया और आग में जल रही टहनियों को इधर-उधर करने लगीं।

जैसे-जैसे आग ने पानी को गर्म किया, उनका मन शीतल होता गया। भावनाओं का ज्वार शांत हो गया। अब वे पुनः स्पष्टता से सोच सकते थे।

उन्होंने यूं ही कहा, "हे माता मातंग! कल्पना करो कि मैं आपको कुछ कहना चाहूँ और आप वह बात ना सुनने पाओ।"

माता ने उबासी ली। इस समय दर्शनशास्त्र के किसी विषय पर चर्चा करने का उनका कोई मन नहीं था।

बूढ़े बाबा ने प्यार से अपनी पत्नी को देखा। उन्हें माता मातंग की यह बात बहुत रुचिकर थी। वे बेबाकी से अपने भीतर की भावनाओं को व्यक्त करती थीं। कोई बनावटीपन नहीं। जो भीतर, वही बाहर। बड़े उत्तरदायित्व उठाने वाले जनों को प्रायः अपनी भीतर की भावनाओं को कुचलकर कार्य करने होते हैं। माता के साथ वैसा नहीं था। यदि उन्हें नींद आ रही है तो वे दर्शनशास्त्र में रूचि का ढोंग नहीं कर सकती थीं। वहीं बाबा की छवि ऐसी बन गई थी कि उन्हें आधी रात में जगाकर भी उनसे ज्ञान की बातें की जा सकती थीं।

"हाँ, बहुत देर हो गई है, हमें सोना चाहिए।" बाबा बोले।

"हाँ, हमें सोना चाहिए।" माता मातंग आँख मसलते हुए बोलीं। वे खड़ी हुईं, दो डग घर की ओर चलीं और तत्पश्चात पीछे मुड़कर मुस्कुराते हुए बोलीं, "अच्छा तो आपका संकेत नींद की ओर था जब आपने कहा '*मैं आपको कुछ कहना चाहूँ और आप वह बात ना सुनने पाओ*'। आपकी सोने की इच्छा मुझ तक पहुँच गई है बाबा। सो जाइए। स्वप्नलोक की आपकी यात्रा सुखद हो।"

"आपको नहीं पता कि मैं क्या बोलने वाला था।" बाबा बुदबुदाये किंतु माता वहाँ से जा चुकी थीं। बाबा अपने विचार में इतने मग्न थे कि उन्हें माता का अंतिम वाक्य '*आपकी स्वप्नलोक की यात्रा सुखद हो*' सुनाई नहीं दिया था। यह वाक्य मातंगों का 'शुभरात्रि' कहने का ढंग होता है। अर्थात बाबा माता को अपनी बात न पहुँचा पाने के विचार में इतना खो गए थे कि उन तक माता द्वारा कहा गया वाक्य नहीं पहुँच पाया था।

बाबा के कान खुले थे, बस मन कहीं और था। इसलिए उन्हें माता का शुभरात्रि संदेश सुनाई नहीं दिया था।

हमें क्या सुनाई देता है और क्या समझ आता है, यह मन पर निर्भर करता है। अधिकतर जनों का मन माया के वश में होता है। इसलिए वे वहीं सुनते और समझते हैं जो माया सुनाना-समझाना चाहती है, वह नहीं जो वास्तव में बोला गया है।

माया के पास मन को वश में करने के लिए अनगिनत हथियार हैं। एक किशोरी को यदि आप कोई नए प्रकार का वस्त्र देंगे तो वह कदाचित उसे रुचिकर नहीं होगा। किंतु यदि

उसने वही वस्त्र किसी राजकुमारी या अभिनेत्री को पहने देखा होगा तो वह उसे रुचिकर होगा। रुचि-अरुचि, अच्छा-बुरा, शुद्ध-अशुद्ध, प्रेम-घृणा, उचित-अनुचित, पवित्र-अपवित्र, धार्मिक-अधार्मिक, तार्किक-अतार्किक, आस्था-अनास्था आदि के ठप्पे हमारे मन पर कौन लगाता है?

जो आसपास हो रहा है वह सब माया है। माया आपको बताती है कि आप कौन हो। माया आपको बताती है कि आपको क्या करना है, क्या सुनना है, किससे प्रेम करना है और किससे घृणा करनी है। अंततः आप माया के बंदी बन जाते हैं। आप भूल जाते हैं कि आप एक आत्मा हैं। माया द्वारा दी गई पहचान को आप अपनी पहचान मान बैठते हैं।

परंतु मातंगों को माया कैसे नियंत्रित कर सकती थी? वे तो हनुमान जी के शिष्य हैं। उन्हें क्या सुनाई देगा और क्या समझ में आएगा यह तो हनुमान जी तय करते हैं क्योंकि वे हनुमान जी को पूर्णतया समर्पित हैं। इसलिए हनुमान जी के आगमन की बात न बता पाने के पीछे हनुमान जी की ही कोई लीला रही होगी।

किंतु बाबा ऐसे नहीं सोच रहे थे। वे दर्शनशास्त्र की गहराइयों में चले गए थे जहाँ तथ्य से अधिक संदेह को महत्त्व दिया जाता है। वे इस बात पर भी संदेह करने लगे कि कुछ देर पहले उन्होंने पहाड़ी पर हनुमान जी के दर्शन किए थे। हो सकता है कि वह उनका वहम हो! हो सकता है कि सुचेता-विचेता के बीच चल रहे झगड़े के तनाव के चलते उनके मस्तिष्क के तार हिल गए हों और उन्हें वहम होने लगे हो! किंतु दर्शन के समय सुचेता और विचेता भी उनके साथ थीं। उन्होंने भी हनुमान जी से बातें की थी। क्या उनको भी वहम था? क्यों नहीं? हो सकता है वे सब एक सामूहिक वहम से ग्रस्त हो गए हों।

यदि वे हनुमान जी के आने की बात माता को बता पाते तो कदाचित उन्हें इस बात में कुछ सच्चाई लगती। या वह भी वहम ही लगता? वहम पूरे मातंग समाज को भी तो हो सकता है। परंतु ऐसा वहम जो सभी को हो गया हो उसे तो वास्तविकता ही माना जाएगा ना। वास्तविकता और वहम में क्या कोई अंतर है? यदि पूरी मानवता को कोई वहम हो तो क्या सब उसे परमसत्य की संज्ञा नहीं देंगे? ऐसा सोचते-सोचते बाबा मातंग का हनुमान जी के आगमन से उत्पन्न हुआ जोश ठंडा पड़ गया। अब उन्होंने उसे एक साधारण रात्रि मान लिया था। अब उन्हे नींद भी आने लगी थी।

उन्होंने नींद के वाहन की सवारी करने का मन बनाया और स्वप्नलोक की ओर रवाना हो गए।

यद्यपि उनके सपनों में कुछ ऐसा विशेष नहीं था जिसकी छाप उनके चेतन मन पर छूटती। वे एक बूढ़े व्यक्ति थे। उनकी कोई इच्छा नहीं थी सिवाय इसके कि वे मातंग

समाज के मुखिया का दायित्व किसी और को सौंपकर देह त्याग करें।

मातंगों ने अपना मुखिया चुन लिया था। जीवन के दो दशक पार कर चुके एक नौजवान को यह दायित्व सौंपा जाना था। इसमें आश्चर्य की बात नहीं होनी चाहिए क्योंकि मातंग देह की आयु नहीं, आत्मा के अनुभवों को महत्ता देते हैं। उर्वा की आयु छोटी होते हुए भी उसकी आत्मा के पिछले जन्मों के अनुभव उसे शेष सभी मातंगों से उच्च बनाते थे। सभी देवी-देवताओं ने मातंगों को दिव्य संकेत देकर यह बताया था कि उर्वा ही उनके अगले मुखिया बनने के योग्य थे। उन संकेतों में से एक था उर्वा को आने वाले बुरे सपने जो बचपन से उसे कष्ट देते आ रहे थे।

अब भी जब बाबा चैन की नींद सो रहे थे, उर्वा अपने बुरे सपने में फँसता जा रहा था। यह बुरा सपना, जो उसे बार-बार आता था, एक जलपरी का था। विशाल समुद्र के बीचो-बीच एक ऊंची चट्टान थी। चारों ओर पानी ही पानी। पता नहीं वह चट्टान पर कैसे पहुँच गया था। समुद्र पार करके घर पहुँचने की आशा कब की दम तोड़ चुकी थी। पता नहीं देह कैसे जीवित थी। मस्तिष्क सुन्न था और हृदय केवल नाम के लिए धड़क रहा था। उसे ढूँढने कोई नहीं आने वाला था। क्षितिज से डूबता लाल सूरज मृत्यु के देवता का झंडा प्रतीत हो रहा था।

"यदि आप मेरी सहायता करो तो मैं आपकी सहायता कर सकती हूँ।" एक मधुर ध्वनि मौत के साए को चीरती हुई उसके कानों तक पहुँची। उसने चट्टान के किनारे से नीचे झांककर देखा। पानी में इतनी सुंदर कन्या खड़ी थी कि वर्णन कठिन था। उसके गोल, मुलायम चेहरे की कांति किसी जीवनदायक मायावी औषधि का काम कर रही थी। उसकी चमकती हुई हरी आंखों में हिरण जैसी मासूमियत थी किंतु उर्वा के मन में मृत्यु और संकट के विचार भरे हुए थे। उसने ऐसे प्रतिक्रिया दी जैसे उसने कन्या नहीं, झाड़ियों के पीछे दुबका कोई शेर देख लिया हो।

वह तीव्रता से सरककर चट्टान के किनारे से ऐसे पीछे हटा जैसे संकट को भांपकर कोई जानवर बिल में घुसता है।

किसी ने झपट्टा नहीं मारा। कोई नहीं गुर्राया। जब अगले कुछ क्षण संपूर्ण मौन में बीते तो उसे अपनी त्रुटि का भान हुआ। कहीं ऐसा तो नहीं था कि उसने सहायता के लिए बढ़े हाथ को साँप समझ लिया था।

"कौन... कौन हो आप और क्या चाहती हो?" उसने उत्तर की अपेक्षा से नहीं, यह जानने के लिए प्रश्न पूछा कि वह अलौकिक कन्या वहीं पर थी या चली गई थी।

"मैं आपको वहाँ पहुँचा सकती हूँ जहाँ पर आते-जाते जलयात्री कदाचित आपको देख लें और आपकी सहायता कर दें।" उत्तर मिला।

उर्वा मौन रहा। उसके सुन्न मस्तिष्क ने तर्क दिया, 'यदि यह कन्या कोई मायावी राक्षस है तो भी चट्टान पर पड़े-पड़े दम तोड़ने से अच्छा है तीव्र मौत मरा जाए।'

वह चट्टान के किनारे पर पुनः आ गया। नीचे झांककर कन्या को देखने का उसे साहस नहीं हुआ परंतु वह दो शब्द मुख से निकालने में सफल रहा, "कौन हो आप?"

"यूं समझ लो कि मैं आपकी तरह एक अभागी आत्मा हूँ। समुद्र की गहराइयों में फँसी प्रतीक्षा कर रही हूँ कि कोई मुझे मुक्त करे।" कन्या ने इतने उदास स्वर में उत्तर दिया कि उर्वा के मस्तिष्क ने उन शब्दों को समझने की चेष्टा नहीं की। उत्तर के अंत में कन्या ने संभवतः गहरी श्वास छोड़ी तो उर्वा को लगा कि वह सुबक रही थी।

अब उर्वा से रहा नहीं गया। उसने दोनों हाथ चट्टान के किनारे पर टिकाकर अपना सिर बाहर निकाला और नीचे देखा। उसकी आँखें कन्या की निर्मल हरी आँखों से मिलीं तो उसके मन से भय और संकट के सभी विचार वाष्प की तरह उड़ गए।

चट्टान पर पेट के बल लेटकर उसने अपना हाथ कन्या की ओर बढ़ाया और बोला, "चलो, ऊपर आ जाओ।"

कन्या के कोमल हाथ उसके हाथ से मिले तो तुरंत कुंडली बन गई। यह समझ नहीं आ रहा था कि किसने किसका हाथ थाम रखा था।

उर्वा ने कन्या को ऊपर खींचने के लिए बल लगाया। कन्या पानी से तनिक भी ऊपर नहीं उठी। उल्टे वह नीचे धँसने लगी। ऐसा लगा जैसे कन्या को कोई मगरमच्छ पानी में नीचे खींच कर ले जा रहा था। उर्वा के मस्तिष्क में एक रंगीन चलचित्र बन गया जिसमें वह नायक था, कन्या नायिका और वह अपनी नायिका को भयानक जलराक्षसों से बचा रहा था। उसने पूरा बल लगा दिया। कन्या को बचाने के चक्कर में वह स्वयं चट्टान पर चमगादड़ की तरह उल्टा लटक गया। अब उसके लिए चट्टान पर वापिस सुरक्षित सिमटना कठिन था। गहरा समुद्र उसे निगलने के लिए तैयार था।

वह गिरा तो सीधे गहराइयों में चला गया। सतह पर पुनः आने का उसे अवसर ही नहीं मिला। जितने हाथ पैर मारता उतना ही गहराई में जाता। श्वास रोककर रखना भी असंभव हो गया। जब उसने श्वास भरी तो ऐसी भरी कि घड़े जितना पानी सीधे उसके तन के भीतर घुस गया। ऐसा लगा जैसे कोई मायावी राक्षस उसके नथूनों से होकर उसके पेट में

घुस गया हो। राक्षस भी ऐसा जो घुसने के पश्चात उसके तन को भीतर से चीरकर बाहर निकलने को आतुर था।

पता नहीं राक्षस निकल गया या भीतर ही मर गया, कुछ क्षण पश्चात सब कुछ अचानक सामान्य हो गया। वह अभी भी गहरे पानी में था परंतु पानी हवा जैसा लग रहा था। वह मछली की तरह पानी में सहज अनुभव कर रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे वह पानी में तैर नहीं रहा था अपितु हवा में उड़ रहा था।

वह अकेला नहीं उड़ रहा था। उसकी पीठ पर एक कोमल हाथ था जो उसकी उड़ान की दिशा तय कर रहा था। वह हरी आंखों वाली कन्या उसके पार्श्व में उड़ रही थी। वह उस कन्या का बंदी था।

उसने जलकन्या की ओर प्रश्नात्मक दृष्टि डाली तो कन्या ने उसे रिक्त दृष्टि से देखा। इससे पहले कि वह निर्मल चेहरा उसे पुनः अपने मायाजाल में उलझाता, उसने देखा कि वह कन्या साधारण कन्या नहीं थी। वह एक जलकन्या थी। उसकी आधी देह मनुष्य और आधी देह मछली की थी।

उर्वा को अब सब समझ में आ रहा था। उसने स्वयं की देह के निचले भाग को अनुभव किया तो पाया कि वह भी आधा मछली हो गया था। अब वह मानव नहीं, जलमानव था। उसके मस्तिष्क में पूरी पहेली का हल निकल गया था। जलकन्या ने उसे फँसाया था।

"नहीं।" उसके मुख से अनायास ही नाटकीय भाव से शब्द निकले, "आप मेरे साथ ऐसा नहीं कर सकतीं।"

जलकन्या के चेहरे पर कोई भाव नहीं आए। उस निर्मल चेहरे की एकाध मांसपेशी में केवल तब तनाव आया जब उसके बंदी ने स्वतंत्र होने की चेष्टा की और उसे अपना कोमल हाथ बलपूर्वक अपने बंदी की कमर पर रखना पड़ा।

अपने बंदी को पूर्णतः काबू में करने के पश्चात भी जलकन्या के चेहरे पर विजय अथवा प्रसन्नता के भाव नहीं थे। वह पूरे रास्ते में उदास व रिक्त-सी दिखाई दी। जब वह अपनी रानी के दरबार में पहुँची तब भी उसने उदास स्वर में ही बंदी को प्रस्तुत किया। वह बोली, "हे जलमानवों की महारानी, मेरी ये भेंट स्वीकार कीजिए। वह परंपरा जिसका मैं गर्व से एक भाग हूँ, सदा सम्पन्न रहे।"

जलकन्या ने महारानी को प्रणाम किया और तैरते हुए बाहर के द्वार की ओर बढ़ी। इस बीच जलमानव बन चुका उर्वा उसे घूर कर देख रहा था। जब जलकन्या द्वार से बाहर

निकलने ही वाली थी, उर्वा चिल्लाया, "आप झूठी, कपटी और मक्कार हो। आपने मुझसे छल किया है।"

कुछ ही घंटों में उर्वा ने अपनी नई पहचान और नए जीवन को स्वीकार कर लिया था। कम से कम वह जीवित तो था! विशाल समुद्र के बीचो-बीच मरने से तो अच्छा था उसका यह नया रूप और नया संसार। जलमानवों के राज्य में उसे एक महल आवंटित किया गया था जो हीरे मोतियों से जड़ा था। हीरे मोती भी वे जो केवल समुद्र की गहराइयों में मिलते हैं। रात में विश्राम करते हुए उसने अपनी झोपड़ी वाले घर के बारे में सोचा जो समुद्र के उस पार था। उसके घर जाने की इच्छा लगभग समाप्त हो गई थी।

उसकी अपने मानव परिवार की स्मृति भी अत्यंत धुंधली हो गई थी। अब उसके मन को मरमानवों के उस राज्य की सुख-सुविधाओं की आदत हो गई थी। और उसका तन तो पहले से ही नए जीवन के अनुरूप ढल गया था। समुद्र की गहराइयों में भी उसे पानी नहीं दिखाई दे रहा था क्योंकि उसके लिए पानी वैसा हो गया था जैसे मनुष्य के लिए हवा होती है। यदि उसका दार्शनिक मन सुख सुविधाओं में डूबकर कुंद नहीं हुआ होता तो वह अवश्य सोचता कि कैसे ठोस, द्रव और गैस के मायने तन बदलने के साथ बदल जाते हैं। जो जल मछली की देह के लिए वायु जैसा लगता है वह जल मानव देह के लिए द्रव जैसा लगता है।

हर प्रकार के सुख, सुंदरता व समृद्धि के होते हुए भी इस जगह में कुछ रिक्त व सूखा-सा था। कदाचित सुख की वस्तुएँ वहाँ उपस्थित थीं पर सुख अनुपस्थित था। कदाचित उसे सुख इसलिए अनुभव नहीं हो रहा था क्योंकि वह उसका अधिकारी नहीं था। वह सुख उसने अर्जित नहीं किया था अपितु उस पर थोंपा गया था। जल मानव के रूप में उसका नया जीवन एक षड्यंत्र का परिणाम था। सुंदर जलकन्या ने उसको फँसाया था। उस जलकन्या के बारे में विचार आते ही वह अपने दांत पीसने लगता था। वे निर्मल हरी आंखें वह कभी नहीं भूल सकता था। उनसे बदला लेने की शपथ वह दोहरा ही रहा था कि किसी ने बलपूर्वक उसके कमरे का द्वार पीटा।

"मैंने आप जैसा गिरा हुआ व्यक्ति नहीं देखा।" वह हरी आंखों वाली जलकन्या कमरे में प्रवेश करते हुए क्रोधित स्वर में बोली। उसका चेहरा क्रोध से रंगा हुआ था।

कक्ष में प्रवेश करने के पश्चात वह बोली, "आप मुझे पानी से निकालकर चट्टान पर लाने वाले थे। मुझे इस घुटन भरे जलचरी जीवन से मुक्त कराने वाले थे। मुझे बचाना तो दूर, आप तो स्वयं पानी में टपक पड़े। और ऊपर से आपका यह दुस्साहस कि मुझे झूठा और कपटी कहते हो! क्या झूठ बोला मैंने? मेरा हर शब्द सत्य था। हाँ, मैं एक अभागी आत्मा हूँ क्योंकि मैं यहाँ बंदी हूँ। हाँ, मैं जानती हूँ उस जगह को जहाँ से नौकाएँ आती-

जाती हैं। यदि आप मुझे पानी से उठाकर चट्टान पर ले आते तो मैं जलकन्या से पुनः मानव रूप में आ सकती थी। तत्पश्चात हम दोनों भाग सकते थे। अरे मूर्ख, अब तक तो हम घर पहुँच गए होते।"

"क्या? क्या कहा आपने? क्या पुनः मानव बनना संभव है?" वह अपना नवस्फूटित उत्साह छिपा नहीं पाया। वह बिस्तर से उठा और कक्ष के दूसरे कोने की ओर तैरा जहाँ पर वह जलकन्या क्रोध से लाल हुए खड़ी थी। क्रोधित अवस्था में भी उसका चेहरा निर्मल और निष्कपट लग रहा था।

जैसे ही उर्वा जलकन्या के समीप आया वह उससे ऐसे दूर हट गई जैसे उर्वा किसी संक्रामक रोग से ग्रस्त हो। कक्ष में रहकर उर्वा से जितनी दूर जा सकती थी, गई और दूर वाले कोने पर पहुँच गई। क्रोध में उसने हाथ में एक सजावटी गेंद उठा ली थी। गेंद को उसने ऐसे दबाया जैसे वह फेंकने के लिए अपनी पकड़ दृढ़ कर रही हो। गेंद तो उसने फेंककर नहीं मारी परंतु तेज शब्दों का आक्रमण जारी रखा। बोली, "आपने मुझे झूठा कहने का दुस्साहस कैसे किया?"

"अच्छा, मैं अपने शब्द वापिस लेता हूँ।" उर्वा के पास अहम की लड़ाई करने के लिए समय नहीं था। वह शीघ्र से शीघ्र जानना चाहता था कि वापिस मानव कैसे बना जा सकता है। उसने अपना प्रश्न दोहराया, "क्या पुनः मानव रूप में बदलना संभव है?"

"हाँ संभव है, मूर्ख।” जलकन्या के स्वर में क्रोध कम नहीं हुआ था। वह बोली, "यह रस्साकसी के खेल की तरह है। यदि किसी मानव ने जलमानव को ऊपर खींच लिया तो जलमानव की मुक्ति हो जाती है और वह पुनः मानव बन जाता है। जब कोई जलमानव किसी मानव को पानी में खींच लेता है तो वह मानव जलमानव बन जाता है। आप मुझे इस कष्ट से मुक्ति दे सकते थे किंतु आप तो स्वयं ही यहाँ आ फँसे।"

"क्या मैं अब समुद्र की सतह में जाकर अपना भाग्य परख सकता हूँ?" उर्वा ने आशापूर्वक पूछा। साथ में वह यह भी सोच रहा था कि वह इतनी पतली-सी कन्या को ऊपर क्यों नहीं उठा पाया था। क्या कन्या की सुंदरता ने उसके मन को विचलित कर दिया था? जो कन्या तब अलौकिक सुंदरता की देवी लग रही थी, अब साधारण कन्या ही लग रही थी।

"क्या आपको तनिक भी भान है कि आपके साथ क्या हुआ है?" जलकन्या ने घृणा की दृष्टि डालते हुए उर्वा से पूछा, "या यहाँ की चकाचौंध ने आपके मस्तिष्क को धो डाला है? हे मूर्ख प्राणी! आप अभी-अभी जल मानव बने हो। अर्थात आप इस जल संसार के शिशु हो। अभी-अभी पैदा हुए हो आप यहाँ! अभी आप समुद्र की सतह पर जाकर अपना

भाग्य नहीं परख सकते। जब आप यहाँ के वयस्क हो जाओगे तब आपको अवसर मिलेगा। उस अवसर का प्रयोग करके या तो आप स्वयं मानव बन सकते हो या किसी मानव को जलमानव बनाकर यहाँ ला सकते हो। एक अवसर, केवल एक।"

उसने सजावटी गेंद को बलपूर्वक नीचे दे मारा और दाँत पीसते हुए बोली, "मेरा अवसर आपने नष्ट करवा दिया।"

कहाँ कुछ देर पहले उर्वा उस जलकन्या से प्रतिशोध लेने की प्रतिज्ञा कर रहा था और कहाँ अब उसके मन से सहानुभूति उमड़ रही थी। उसने पूछा, "तो क्या यहाँ के सभी जलमानव पहले मानव थे?"

"और नहीं तो क्या?" जलकन्या बोली, "क्या आपको अभी तक यह ज्ञान नहीं हुआ है? हे मूर्ख प्राणी! यहाँ का हर नागरिक पहले मानव था। हम जनन नहीं करते, हम मानवों को जलमानवों में परिवर्तित करके अपना वंश बढ़ाते हैं। हर नागरिक को केवल एक वंशज बनाने का अधिकार है। मैंने आपको परिवर्तित किया है इसलिए आप मेरे वंशज हो। जब आप वयस्क हो जाओगे तब आपको भी एक अवसर मिलेगा। या तो उस अवसर का लाभ उठाकर आप स्वयं पुनः मानव बनकर स्वतंत्र हो सकते हो या किसी मानव को जलमानव में परिवर्तित करके यहाँ अपना वंश बढ़ा सकते हो।"

जब तक उर्वा वयस्क हुआ तब तक वह जलमानवों के संसार के साथ इतने शक्तिशाली संबंध स्थापित कर चुका था कि उसकी वहाँ से स्वतंत्र होने की इच्छा समाप्त हो गई थी। सब सुख तो थे उसके पास सिवाय संतान सुख के! और वह सुख भी अब उसे प्राप्त होने वाला था। वह उस दिन की अधीरता से प्रतीक्षा कर रहा था जब उसे किसी मानव को जलमानव बनाने का अवसर मिलने वाला था। वह अपने वंशज को नए संसार में ढालने के सुख की कल्पना वैसे ही किया करता था जैसे मानव अपनी संतान पालने के सपने देखते हैं। वंशज बनाने के पश्चात वह पूरा जीवन सुख समृद्धि में बिताने वाला था! उसके पश्चात उसे किसी चीज की कमी नहीं रहने वाली थी! उसके पश्चात उसका जीवन स्वर्ग जैसा होने वाला था! और मृत्यु? मृत्यु का विचार निस्संदेह भयावह था क्योंकि यहाँ की मृत्यु नरक से भी बदतर थी।

उसे पता था कि हर जलमानव की तरह उसे भी एक दिन जीवित ही भयावह राक्षसी मछली के मुख में प्रवेश करना था। जलमानवों के लोक में हर पखवाड़े एक मृत्यु का उत्सव बनाया जाता है। उस उत्सव में जलमानव अपने वृद्ध सदस्यों को राक्षसी मछलियों की भेंट चढ़ाते हैं। बदले में राक्षसी मछलियाँ उनके राज्य की गहरे समुद्र के संकटों से रक्षा करती हैं। सचमुच बहुत भयानक मृत्यु होती है जलमानवों के लोक में!

मानवलोक में कम से कम मृत्यु तो पीड़ारहित हो सकती है। केवल भयानक मृत्यु का विचार ही था जो उर्वा को जलमानवों के लोक को छोड़कर मानव संसार में लौटने के लिए प्रोत्साहित करता था।

अंततः आखेट का दिन आ पहुँचा। जलमानवों की सेवा करने वाली सूक्ष्म मछलियों ने लक्ष्य के बारे में समाचार दिया। उर्वा का लक्ष्य थी एक नाव में यात्रा कर रही कन्या जो अकेली और उदास लग रही थी।

जलमानव उर्वा समुद्र की सतह पर आ गया और उस नाव के पास पहुँचा। नाव की स्तंभकर का सहारा लेकर कन्या अकेली बैठी थी। उसने एक स्तंभ के दोनों ओर से पैर बाहर की ओर लटकाए हुए थे और समुद्र के जल को एकटक देखते हुए अपने जीवन के निर्णयों का विश्लेषण कर रही थी। वह अपने विचारों में इतना खोई हुई थी कि उसे नाव के साथ-साथ तैर रहे उस मानव जैसे जंतु का ध्यान करने में कुछ समय लगा।

उर्वा ने यह निर्णय ले लिया था कि वह अपना शिकार करते समय छल-कपट का सहारा नहीं लेगा; वह वैसा नहीं करेगा जैसा उस हरी आंखों वाली जलकन्या ने उसके साथ किया था। उसने सोच लिया था कि वह पहले से ही अपनी जलमानवी देह का प्रदर्शन कर देगा। उसने तब तक उस जलयात्री कन्या से आँखें नहीं मिलाईं जब तक कि उसने कई बार उछल कर अपनी जलमानवी पहचान को घोषित नहीं कर दिया।

वह कन्या अकेली बैठी थी जबकि नाव के कोष्ठ से उसके मित्रों के बातचीत करने का कोलाहल आ रहा था। इसी बिंदु को पकड़कर उर्वा ने बातचीत शुरू की। वह बोला, "आपके मित्र बहुत शोर कर रहे हैं। नहीं?"

कन्या को या तो यह प्रश्न बुरा लगा या यह बुरा लगा कि उसके मित्रों के कारण एक विलक्षण जलचरी जंतु को कष्ट हो रहा था। उसके चेहरे पर उदासी के भाव आ गए।

उर्वा तुरंत बोला, "नहीं! नहीं! मुझे कोई कष्ट नहीं है।"

एक तो वह कन्या पहले से ही उर्वा के सुंदर रूप को देखकर मोहित लग रही थी, ऊपर से वह उर्वा के कष्ट की चिंता करने लग गई थी। उर्वा जानता था कि कन्या का उसके प्रति लगाव उसके पुनः मानव बनने की इच्छा को चूर-चूर कर सकता था। हाँ, इससे उसकी वैकल्पिक इच्छा, अर्थात कन्या को जलकन्या में बदलकर जलमानव के रूप में अपना वंश बढ़ाने की इच्छा पूर्ण करना सरल हो सकता था।

वैकल्पिक इच्छा? क्या यही उसकी एकमात्र इच्छा नहीं थी? हाँ! उसको कन्या का आखेट करना था। उसे मानव संसार में पुनः नहीं जाना था। उसने निर्णय लिया कि वह

कन्या को उसके लगाव में फँसने देगा ताकि उसका काम सरल हो सके।

"घर की स्मृतियाँ व्याकुल कर रही हैं?" उर्वा ने बातचीत आगे बढ़ाते हुए पूछा। कन्या ने कोई उत्तर नहीं दिया। हाँ, उसकी आंखों में नमी आना इस बात का संकेत था कि उसके हृदय में हिम का कोई टीला पिघला था। अकेलापन भी तो हिम का टीला ही होता है। व्यक्ति को बाहर से कठोर बना देता है परंतु भीतर से वह सदा रोने की कगार पर रहता है।

उर्वा ने सहानुभूति जताते हुए कहा, "मुझे पता है अकेलेपन की पीड़ा क्या होती है। मैं भी वर्षों से अपने घर से दूर हूँ।"

अब उर्वा नाव के इतने समीप तैर रहा था कि जलयात्री कन्या को अपना सिर आगे निकाल कर नीचे देखना पड़ रहा था। वह इतनी मोहित थी कि उसे अपनी गर्दन में हो रही पीड़ा का भी भान नहीं था।

"कहाँ?" कन्या ने अपने सूखे मुख को गीला करते हुए पूछा, "कहाँ है आपका घर?"

"समुद्र पार।" उर्वा ने उत्तर दिया, "मुझे वहाँ जाने का रास्ता भी नहीं पता। मैं भटक गया हूँ।"

"मैं भी समुद्र मार्गों के बारे में अधिक नहीं जानती किंतु मेरे मित्र कदाचित आपकी सहायता कर सकते हैं। आओ, ऊपर आ जाओ!" कन्या बोली।

यही वह क्षण था जिसकी उर्वा को प्रतीक्षा थी। कन्या ने परोक्ष रूप से उसकी सहायता करने की इच्छा प्रकट कर दी थी। यदि वह उसे ऊपर उठाने में सफल हो जाती तो उर्वा पुनः मानव बन जाने वाला था।

उर्वा ने अपने मन से जलमानवों के संसार के सारे विचार एक ओर कर दिए और तुरंत ऊपर की ओर कूदा।

पहले प्रयास में वह नाव से टकराकर पुनः पानी में गिर गया परंतु दूसरे प्रयास में वह नीचे वाली स्तम्भकर को पकड़ने में सफल हो गया।

उसकी देह का नीचे वाला भाग जो मछली का था इस तरह फड़फड़ाने लगा जैसे कोई मछली काँटे में फँसने पर फड़फड़ाती है। उसकी देह का ऊपरी भाग नाव की स्तंभकर को कसकर पकड़े रहना चाहता था और निचला भाग समुद्र में जाना चाहता था। दोनों भागों के बीच इतना तनाव पैदा हो गया कि उसकी देह एक पत्र की तरह दो टुकड़ों में फट जाना चाहती थी। उसके मन में भी ऐसा तनाव उत्पन्न हो गया था कि उसका सिर फटा जा

रहा था। मन का एक भाग उसे समुद्र पार स्थित अपने घर-परिवार का स्मरण कराकर उसकी मानव में बदलने की इच्छा को आग दे रहा था। वहीं उसके मन का दूसरा भाग उसे उसके जलमानवों से बन गए सुदृढ़ रिश्तो का वास्ता देकर उस कन्या को जलकन्या में बदलने की इच्छा को बल दे रहा था।

इस रस्साकशी में उसकी देह का निचला भाग सफल होता लग रहा था। उसकी देह का मानवीय भाग निचले भाग का भार नहीं उठा सका और स्तंभकर से उसके हाथ छूट गए।

वह जलयात्री कन्या, जो अब तक सुन्न होकर उर्वा के संघर्ष को देख रही थी, चेत में आई और नीचे गिर रहे उर्वा की एक बांह पकड़ने में सफल हो गई। व्यक्ति के लिए एक छोटा-सा जल का पात्र पकड़कर रखना कठिन हो जाता है, वह जलयात्री कन्या तो पूरे जलमानव को पकड़कर रखने की चेष्टा कर रही थी। स्वाभाविक रूप से वह असफल होने वाली थी। ऐसा करने की चेष्टा में उसने स्वयं को भी संकट में डाल लिया था। अब वह स्तंभकर के बाहरी ओर एक हाथ से लटकी हुई थी और न केवल स्वयं का अपितु उर्वा का बोझ भी उठा रही थी। उसका मस्तिष्क सही से काम कर रहा होता तो वह उर्वा को छोड़ देती और स्वयं को बचाती।

उधर उर्वा के मन के किसी कोने में भी, क्षीण ही सही, एक इच्छा थी कि कन्या उसे छोड़ देती। परंतु उसके मन का दूसरा कोना प्रसन्न था कि कैसे वह कन्या आसानी से उसके जाल में फँस गई थी।

लगाव का खेल देखिए। उर्वा को बचाने के विचार से कन्या को इतना लगाव हो गया था कि उसने उर्वा को छोड़ा नहीं। जलमानवों के संविधान के अनुसार ऐसा करके कन्या ने यह संकेत दिया था कि वह उर्वा के साथ जाने को तैयार थी। उर्वा तो उसे सागर की गहराइयों में ले जाना चाहता था। अर्थात कन्या ने परोक्ष रूप से जलकन्या बनने के लिए अपनी अनुमति दे दी थी। फिर क्या था। उर्वा ने कर्मकांड पूरे किए और कन्या को जलकन्या में परिवर्तित करके उसे अपना वंशज बना दिया।

अगले कई वर्षों तक उर्वा ने अपनी नई वंशज के पिता होने का सुख भोगा। पिता के सुख में प्रेम, संतोष और गर्व का मिश्रण होता है। इस मिश्रण का आनंद लेते-लेते उसकी आयु बीत गई। समय बीता और वह दिन भी आ गया जब उसे अपने राज्य के लिए बलिदान होना था। मौत का उत्सव शुरू हो गया जिसमें उसे जीवित ही एक विशाल राक्षसी मछली के मुख में प्रवेश करना था।

अब उसकी देह का मानवीय भाग फड़फड़ाया जबकि जलमानवीय भाग आने वाले संकट से अनजान था। उसकी देह के दोनों हिस्सों के बीच भयंकर तनाव शुरू हो गया। वह वहाँ से भागना चाहता था। किंतु उसको किसी ने पकड़कर नहीं रखा हुआ था। वह भाग क्यों नहीं पा रहा था? भागना तो दूर वह अपने मुंह से एक चीख भी क्यों नहीं निकाल पा रहा था? वह इतना असहाय क्यों अनुभव कर रहा था?

असहायपन अचानक समाप्त हो गया। उसको सुखद अहसास हुआ कि वह वास्तव में मौत के द्वार पर नहीं खड़ा था। वह तो एक बुरा सपना देख रहा था। वह कोई जलमानव नहीं था। न ही कोई विशाल मछली उसे कच्चा चबाने को आतुर थी। वह तो एक साधारण मानव था जिसका नाम उर्वा था। वह अपनी झोपड़ी के भीतर सुरक्षित विश्राम कर रहा था। उसने चैन की गहरी श्वास ली और पानी पीने के लिए खड़ा हो गया।

बुरे सपने की भयावह स्मृतियाँ इतनी नूतन थीं कि वह उसके पश्चात सो नहीं पाया। वह घुटने मोड़कर अपने बिस्तर में पड़ा रहा। उसने अपनी हथेलियाँ जोड़कर घुटनों के बीच फँसा रखी थी। उसकी श्वास न के बराबर चल रही थी। उसकी आँखें खुली थीं। ऐसा लग रहा था जैसे वह किसी राक्षस के साए में मरा होने का अभिनय कर रहा हो। जागृत अवस्था में भी स्वप्नलोक की वे राक्षसी मछलियाँ उसे अभी भी खतरनाक रूप से समीप लग रही थीं।

यह बुरा सपना उसे इतनी बार आ चुका था कि वह गिनती भूल चुका था। हाँ, आज का सपना पहले के सपनों से कहीं अधिक विस्तृत था। बाबा ने उसे वादा किया था कि यह सपना उसे तब आना बंद हो जाएगा जब उसे जलमानवों के संसार का एक रहस्य पता चल जाएगा। आज उसे सपने में यह रहस्य पता चला था कि जलमानव राक्षसों की भांति तामसिक मंशा से आखेट नहीं करते। वे तो स्वयं स्वतंत्र होना चाहते हैं।

उर्वा बाबा को इस बारे में बताने के लिए सुबह होने की प्रतीक्षा करता रहा। वह आशा कर रहा था कि उसे उस बुरे स्वप्न से सदा के लिए मुक्ति मिल गई थी। सब कुछ तो देख लिया था आज उसने। अब क्या शिक्षा लेनी शेष रह गई थी?

उर्वा नित्य मातंग समाज के कर्मकांडों को संपन्न करने में बाबा की सहायता करता था। सुबह होते ही वह बाबा का हाथ बंटाने पहुँचा। आज के कर्मकांड में नारियल के नौ खोपरों के बीच एक-एक चींटी को बंद किया गया था। खोपरे कर्मकांड स्थल की परिधि पर रखे गए थे। हवन कुंड में घी की आहुति दी गई और तत्पश्चात उन चींटियों को एक-एक करके स्वतंत्र किया गया। चींटियाँ स्वतंत्र होकर जिस आड़े-टेढ़े रास्ते में भागी, उस रास्ते को एक टहनी से उल्लेखित किया गया और तत्पश्चात उस रास्ते पर चला गया। यह कर्मकांड

आत्मा के नश्वर संसार में की जाने वाली बेतरतीब और गणित से न मापी जा सकने वाली यात्रा को दर्शाता था।

उर्वा वार्ता शुरू करते हुए बोला, "बाबा, मैं समुद्र के बीचों-बीच एक चट्टान पर मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा था कि एक कन्या वहाँ उपस्थित हुई। मैं उसकी बातों में आ गया। उसके जाल में फँसने के पश्चात मुझे पता चला कि वह एक जलकन्या थी। उसने मुझे भी जलपुरुष में परिवर्तित कर दिया और वह मुझे अपने साथ समुद्र की गहराइयों में ले गई। उनके लोक में मुझे एक बहुत ही भावनात्मक रूप से सूखा जीवन जीना पड़ा।"

"और अब आप मन ही मन उस जलकन्या को सदा की तरह भला-बुरा कह रहे हो। है ना?" बाबा ने एक नारियल के खोपरे के ऊपर से घी से भरी चम्मच घुमाते हुए कहा। उस खोपरे के नीचे एक चींटी बंद थी।

मातंगों के लिए कर्मकांड के बीच में वार्तालाप करना नई बात नहीं थी। अपितु वे कर्मकांड से अधिक महत्त्व ज्ञान की वार्ता को देते हैं।

"नहीं, बाबा। यही तो मैं आपसे कहना चाहता हूँ। मेरे मन में अब उस जलकन्या के प्रति कोई द्वेष नहीं है। क्योंकि आज मुझे इस बुरे सपने का अगला भाग दिखाई दिया। उस भाग में मैं भी एक जलमानव के रूप में एक मानव कन्या का आखेट कर रहा था। तब मुझे जलमानवों के दृष्टिकोण से स्थिति को समझने का अवसर मिला।

“जलमानव तामसिक भाव से आखेट नहीं करते। वे आपको तभी जलमानव बनाते हैं जब आप परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से उनके साथ जाने की इच्छा प्रकट कर देते हो। जब मुझे जलपुरुष में बदला गया, यदि मैं चाहता तो चट्टान से गिरने की बजाय उस जलकन्या का हाथ छोड़ सकता था। मुझे उससे लगाव हो गया था। मैंने उसका हाथ पकड़ रखा था, उसने मेरा नहीं। मैं अपनी त्रुटि के लिए जलकन्या को दोषी नहीं ठहरा सकता।"

यह सुनकर बाबा ने कर्मकांड छोड़कर तुरंत उर्वा की ओर आश्चर्य से देखा। जलकन्या के सपने के इस नए भाग का उर्वा को दिखाई देना इस बात का संकेत था कि वह मातंग मुखिया बनने के बहुत समीप पहुँच गया था। इसका अर्थ यह भी था कि हनुमान जी के आगमन का समय समीप था। या वे आ चुके थे? कदाचित कल पूर्वजों की चट्टान के ऊपर जो घटित हुआ वह उनका वहम नहीं था! हनुमान जी न केवल आ चुके थे, उन्होंने बाबा के उत्तरदायित्व उर्वा को स्थानांतरित करने का कार्य शुरू कर दिया था!

"हनुमान जी आ चुके हैं।" बाबा अपनी प्रसन्नता को शब्दो का रूप देने से नहीं रोक पाए। उनके सिर से पैर तक प्रसन्नता की मीठी लहरें दौड़ रही थीं।

परंतु बाबा के शब्दों को सुनना तो दूर, उर्वा को उनके होठों में गति भी प्रतीत नहीं हुई।

हनुमान जी अपने आगमन की सूचना को फैलने से क्यों रोक रहे थे? वे क्यों नहीं चाहते थे कि बाबा सभी मातंगों को सूचित करें और साथ में उत्सव बनाएँ?

बाबा ने इस बारे में अधिक सोचना उचित नहीं समझा। उन्होंने निष्कर्ष निकाल लिया कि उनका मस्तिष्क हनुमान जी की लीलाएँ समझने के योग्य नहीं था।

बाबा कर्मकांड को पुनः शुरू करते हुए बोले, "पूरा सपना देख सकने की ये घटना बहुत महत्त्वपूर्ण है, उर्वा। इस बुरे सपने का रहस्य आपको शीघ्र ही समझ आएगा।"

"तो क्या मैं यह समझने के योग्य हो गया हूँ कि जलकन्या का हमारे सामान्य जीवन से क्या संबंध है?"

"हाँ, आपको कम से कम है यह जानने की योग्यता तो मिल ही गई है। सामान्य जीवन में जलकन्या हमारे आसपास ही भटकती रहती है। यदि आज दिखेगी तो मैं आपको बताऊंगा और समझाऊंगा। उसे देखना बहुत सरल है।" नारियल के खोपरे के ऊपर से घी की चम्मच घुमाने के पश्चात बाबा अग्निकुंड की ओर बढ़े जहाँ उसकी आहुति दी जानी थी।

एक घंटे के पश्चात, सुबह का नाश्ता करके उर्वा, उसका परम मित्र धनुष्क, उसके चाचा बसंत और मातंग प्रमुख बाबा शहद की खोज में निकल पड़े। जैसे ही उन्होंने अपने डेरे की परिधि पार की, उन्हें तीन मनुष्य दिखाई दिए। वे जंगलवासी तो नहीं लग रहे थे परंतु उन्होंने जंगलवासियों जैसा भेष बना रखा था। तीनों तीन अलग-अलग पत्थरों पर बैठे थे। ऐसा लग रहा था कि वे बहुत देर से मातंगों से मिलने की प्रतीक्षा कर रहे थे।"

"देखो वे रही तीन जलकन्याएँ जो मेरा आखेट करना चाहती हैं।" बाबा के शब्दों में क्रोध था। उन्होंने जानबूझकर अपनी दृष्टि नीची कर ली ताकि उन्हें उन तीन बहुरूपियों से दृष्टि न मिलानी पड़े।

"मुझे तो कोई जलकन्या दिखाई नहीं दे रही, बाबा। मुझे तो वे तीन बाहरी समाज के जन लग रहे हैं जो आपसे बात करना चाहते हैं।" उर्वा ने उन तीनों को एक दृष्टि से देखते हुए कहा। उसे बचपन से ही बाहरी समाज के जनों से मिलने की जिज्ञासा थी। किंतु इतनी भी नहीं कि वह बाबा की अवज्ञा करके सच में बाहर के जनों से मिलने की चेष्टा करता। बाबा ने बाहरी समाज से बिल्कुल भी संपर्क नहीं साधने के कठोर निर्देश दे रखे थे। उनके लिए बाहरी जन वे लालची थे जो जंगलों को नष्ट करने पर तुले हुए थे।

"हाँ उर्वा, आप सत्य कह रहे हो, मैं मिथ्या कह रहा हूँ। ये तीनों जलकन्याएँ नहीं है।" बाबा चिल्लाते हुए बोले।

उर्वा को बुरा नहीं लगा क्योंकि वह जानता था कि बाबा केवल क्रोधित होने का अभिनय कर रहे थे ताकि उनके क्रोध को देखकर वे बाहरी जन अपना रास्ता नाप लें या कम से कम बात करने की चेष्टा न करें।

परंतु वे तीनों सामान्य बाहरी जन नहीं थे। उनमें से एक को हनुदास नाम मिला हुआ था। हनुदास अर्थात वह जो हनुमान जी को समर्पित हो। उसने भरी दोपहरी में टोरंटो नगर की भागा-दौड़ी के बीच हनुमान जी के साक्षात दर्शन किए थे। अन्य दो भी बाहरी समाज के पहुँचे हुए संत थे जिनमें से एक को ‘स्वामी जी’ तथा दूसरे को ‘ब्रह्मचारी जी’ का संबोधन प्राप्त था।

अभी तो बाबा मातंग उन तीनों से बात करने को भी तैयार नहीं थे। किंतु कुछ दिन में वे तीनों जन मातंग समाज का भाग बनकर हनुमान जी द्वारा की गई वार्ताओं को संग्रहित करने वाले थे। उनके द्वारा संग्रहित वार्ताओं को 'कलिहनुवाणी' नामक पुस्तक के रूप में बाहरी समाज में पहुँचना था।

बाबा का बनावटी क्रोध उन तीनों संतों को उनके उद्देश्य से विचलित नहीं कर सका। वे हाथ जोड़कर मातंगों के पास आए और अपनी भाषा में कुछ बोले। मातंगों को कुछ समझ नहीं आया।

बाबा ने इस घुसपैठ का क्रोध उर्वा पर निकाला। उन्होंने ऐसे प्रतिक्रिया दी जैसे वे तीनों बाहरी संत उर्वा के बुलाने पर वहाँ आए हों। उन्होंने उर्वा के हाथ से शहद का खाली घड़ा छीना और उसी के पैरों के सामने भूमि पर दे मारा। घड़ा फूटने की ध्वनि में उनकी चिल्लाने की ध्वनि मिश्रित हुई तो ऐसा प्रभाव उत्पन्न हुआ कि तीनों बाहरी संत हाथ ऊपर करके पीछे हट गए। उन्होंने सांकेतिक भाषा में यह समझाने की चेष्टा की कि उनका मातंगों के जीवन में घुसपैठ करने का कोई उद्देश्य नहीं था।

रास्ता स्पष्ट हो गया तो सभी मातंग शहद की खोज में आगे बढ़ गए।

"वाह, क्या अभिनय था आपका, बाबा! अति उत्तम!" उर्वा के मुंह से बचकाने शब्द उससे भी अधिक बचकानी हंसी के साथ निकले। बाबा ने अपने माथे पर अतिरिक्त सिलवटें डालकर उसको गंभीर दृष्टि से देखा। चाचा बसंत कोई भजन गुनगुनाकर ऐसे अभिनय करने लगे जैसे उन्होंने उर्वा के बचकाने शब्दों को नहीं सुना।

सभी मातंग उर्वा से ज्ञान भरे शब्द सुनने की अपेक्षा रखते थे, बचकाने बोल नहीं। उर्वा नौ वर्ष का था जब मातंगों ने उसमें अपना अगला मुखिया देख लिया था। तब से उस पर दम घोंट देने वाली अपेक्षाओं का भार पड़ गया था। सब उससे यही अपेक्षा करते थे कि वह 80 वर्ष के वृद्ध की तरह बोलचाल करें। वह कुछ भी बोलता था तो मातंग उसके शब्दों में देवताओं का संदेश ढूँढने लग जाते थे। उसने अपने मस्तिष्क में एक ऐसी छलनी डाल रखी थी जिसमें से छाने बिना वह कुछ नहीं बोल सकता था। यदि उसकी ठहाके लगाने की स्वाभाविक इच्छा होती तो छलनी से छनकर वह मात्र मुस्कुराने की इच्छा में बदल जाती थी। यदि उसकी इच्छा मित्रों के साथ गपशप करने की होती तो छलनी से छनकर वह मौन की इच्छा में बदल जाती थी।

केवल उसका परम मित्र धनुष्क उसके वास्तविक रूप को जानता था। उर्वा एक साधारण नौजवान था जिसकी साधारण इच्छाएँ थी। देवताओं ने उसे ही मातंगों का नेतृत्व करने के लिए क्यों चुना था? यह प्रश्न उसके मन में सदा उठता रहता था।

"वैसे अच्छा ही हुआ।" धनुष्क ने उर्वा की बचकानी बातों से उत्पन्न हुए तनाव को समाप्त करने का प्रयत्न करते हुए कहा, "अच्छा हुआ कि शहद का घड़ा फूट गया। अब हमें एक घड़ा कम भरना पड़ेगा।"

धनुष्क की बात उर्वा की बात से भी बचकानी थी। अतः उर्वा ने स्वयं ही स्थिति संभाली। ज्ञान वार्ता शुरू करते हुए उसने पूछा, "बाबा, जलकन्या का रहस्य क्या है? क्या आपको उन बाहरी जनों की जगह तीन जलकन्याएँ दिखाई दीं?"

बाबा मातंग ने उत्तर दिया, "कोई भी आत्मा जिससे आप जुड़ गए हैं, जिससे आपको किसी भी प्रकार की आसक्ति है, वह आत्मा आपके लिए जलकन्या है क्योंकि वह आत्मा अपने बुरे कर्मों के सरोवर में आपको डुबा देती है।"

"मेरी आसक्ति तो धनुष्क से भी बहुत है, बाबा। तो क्या वह अपने बुरे कर्मों के सरोवर में मुझे डुबा रहा है?" उर्वा ने पूछा।

बाबा ने अपने कंधे के ऊपर से एक दृष्टि धनुष्क पर डालते हुए उर्वा को उत्तर दिया, "हाँ, यदि आपका अपने मित्र के प्रति लगाव है तो अवश्य आप उसके बुरे कर्मों के सरोवर में धीरे-धीरे डूबते जा रहे हो। जब मैं 'आपका' कहता हूँ तो मैं आपकी आत्मा की बात कर रहा हूँ, उर्वा नाम के किरदार की नहीं।"

"हाँ, आसक्ति बुरी चीज है।" धनुष्क के खिसियाए हुए मुंह से शब्द निकले। वह यह जताना चाह रहा था कि बाबा के शब्दों से उसे कुछ बुरा नहीं लग रहा था। अंततः वह भी

अपने मित्र को सता रहे बुरे सपनों का समाधान चाहता था।

"अरे धनु! थोड़ा सोचो!" उर्वा बोला, "यदि आसक्ति के कारण हमारी आत्माओं के बीच बुरे कर्मों का प्रवाह हो रहा है तो वह प्रवाह दोनों ओर से होगा ना! अर्थात मेरी आत्मा के बुरे कर्म आपकी आत्मा की ओर भी प्रवाहित होंगे ना?"

बाबा मातंग ने समझाया, "यदि आप दोनों की एक दूसरे से आसक्ति है तो अवश्य कर्म प्रवाह दोनों ओर से हो रहा है। अर्थात आप दोनों एक दूसरे के लिए जलकन्या हो।"

उर्वा बाबा की बात नहीं सुन रहा था। वह अपने मस्तिष्क में आसक्ति का गणित समझ रहा था। बोला, "यदि आसक्ति से कर्मों का प्रवाह होता है तो केवल बुरे कर्मों का प्रवाह क्यों होगा? अच्छे कर्मों का प्रवाह भी तो होगा?"

"जाने दो। आप अभी जलकन्या का रहस्य समझने के योग्य नहीं हुए हो।" बाबा के शब्दों में चिड़चिड़ापन स्पष्ट झलक रहा था।

"हाँ बाबा, मैं तो तब योग्य बनूंगा जब ये बुरे सपने मुझे पूरा पागल बना देंगे।" उर्वा ने कटाक्ष किया। किसी और पर तो उसका बल चल नहीं सकता था इसलिए चलते-चलते एक पेड़ की डाली से पत्ते तोड़कर उसने अपनी भड़ास निकाली।

लम्बे क्षण बीते। जंगल की ध्वनियों में उन मातंग पुरुषों ने अपना एक शब्द भी नहीं जोड़ा। हाँ, जब वह ऊंचाई चढ़ रहे थे तब बूढ़े बाबा के हाँफने की ध्वनि अवश्य जंगल की अन्य ध्वनियों में मिश्रित हुई।

उर्वा के मन में अचानक एक विचार आया। कहाँ से आया इस बारे में सोचने की बजाय उसने तुरंत उसको प्रकट करना उचित समझा। बोला, "बाबा, मान लो कि कोई प्रसिद्ध संगीतकार अथवा गायक है। पूरे देश में उसको चाहने वाले हैं। उसके प्रशंसकों की उसके प्रति आसक्ति एकपक्षीय है। केवल प्रशंसक उससे व्यक्तिगत रूप से जुड़े हैं, वह प्रशंसकों से नहीं। अर्थात कर्मों का प्रवाह एकपक्षीय है। प्रशंसकों ने अपनी आत्मा के कपाट अपने चहेते संगीतकार के लिए खोल रखे हैं। संगीतकार की आत्मा जितना चाहे उतने बुरे कर्म अपने प्रशंसकों की आत्मा पर उड़ेल सकती है। परिणामस्वरुप संगीतकार सुख में जीवन व्यतीत करता है और प्रशंसक नित्य जीवन के दुःख झेलते हैं।"

"बहुत अच्छे।" बाबा ने स्वर की कठोरता में कमी ना लाते हुए उर्वा की प्रशंसा की, "यदि आप चाहो तो कुछ भी समझ सकते हो। बिल्कुल सही कहा आपने। यदि आप किसी से जुड़े हुए हो, यदि आपको किसी से भावनात्मक लगाव है, तो आपने उस जीव की आत्मा के लिए अपनी आत्मा के कपाट खोल दिए हैं। उस जीव की आत्मा अपने कर्म आप पर

उड़ेल सकती है। और आत्मा का यह स्वभाव है कि वह बुरे कर्मों का त्याग करना चाहती है और अच्छे कर्मों को सहेजना चाहती है। किसी भी आत्मा को उसके कर्म आप पर उड़ेलने का अवसर दोगे तो वह आत्मा स्वाभाविक रूप से बुरे कर्म ही आप पर उड़ेलेगी। एक बात ध्यान रखो, कोई आत्मा जानबूझकर अपने बुरे कर्म आप पर नहीं उड़ेलती है। वह कोई षड्यंत्र नहीं करती है। जैसे पानी का स्वभाव है ढलान की ओर बहना, वैसे ही आत्मा का स्वभाव है बुरे कर्मों का त्याग करना। इसलिए हमें जलकन्या का उदाहरण ध्यान में रखना चाहिए। आप किसी भी आत्मा के साथ जुड़े हुए हो तो वह आत्मा आपके लिए जलकन्या है। वह जानबूझकर आपको बुरे कर्मों के सरोवर में नहीं डुबोना चाहती है। वह तो स्वयं स्वतंत्र होना चाहती है इसलिए अपने बुरे कर्मों को उड़ेल रही है। जलकन्या की तुलना किसी संक्रामक रोग से ग्रस्त रोगी से भी की जा सकती है। कोई रोगी जानबूझकर अपने रोग से आपको संक्रमित नहीं करता। आप जैसे ही उसके समीप आते हो, अपने आप ही संक्रमित हो जाते हो। इसलिए आपका मित्र धनुष्क जानबूझकर आपके ऊपर बुरे कर्म नहीं उड़ेल रहा है। यह सब अपने आप हो रहा है। इसलिए जलकन्या को दोष देना उचित नहीं है। दोष है आसक्ति का।"

धनुष्क का मुंह पीला पड़ गया। बाबा मातंग ने उसकी तुलना ऐसे संक्रामक रोगी से की थी जो मातंगों के होने वाले मुखिया उर्वा को संक्रमित कर रहा था। यद्यपि बाबा ने एक सामान्य बात कही थी, धनुष्क ने उसे अपने ऊपर ले लिया था। वार्ता का केंद्र बिंदु अपने ऊपर से हटाने की चेष्टा करते हुए उसने पूछा, "परंतु बाबा, उन तीन बाहरी जनों से तो आपकी कोई आसक्ति नहीं है तो फिर वे आपके लिए जलकन्या कैसे हुए? वे आपके ऊपर अपने बुरे कर्म कैसे उड़ेल सकते हैं?"

उत्तर उर्वा ने दिया, "अरे धनु, क्रोध भी आसक्ति का ही रूप है। आप यदि किसी पर क्रोध कर रहे हो तो इसका अर्थ है कि आप उससे भावनात्मक रूप से जुड़ गए हो। नकारात्मक भावना के साथ किसी से जुड़ना भी तो जुड़ना ही है।"

"बिल्कुल सही कहा, उर्वा।" बाबा बोले, "हर भावना आसक्ति का ही एक रूप है। भावनाएँ मुख्यतः नौ होती हैं। आनंद, उदासी, क्रोध, भय, दया, घिन्न, अपेक्षा, आश्चर्य और विश्वास। जो आपको आनंद देते हैं उनसे भी आपको आसक्ति है। जिनके कारण आप उदास हैं उनसे भी आपको आसक्ति है। जो आपको क्रोधित करते हैं उनसे भी आपको आसक्ति है। जिनसे आपको भय है उनसे भी आपको आसक्ति है। जिन पर आपको दया आती है उनसे भी आपको आसक्ति है। जिनसे आपको घिन्न आती है उनसे भी आपको आसक्ति है। जिनसे आप कोई अपेक्षा रखते हैं उनसे भी आपको आसक्ति है। जो आपको आश्चर्य में डालते हैं उनसे भी आपको आसक्ति है। जिन पर आपको विश्वास है उनसे भी

आपको आसक्ति है। जो भी आप में किसी भी प्रकार की सकारात्मक अथवा नकारात्मक भावना उत्पन्न करते हैं, उनसे आपको आसक्ति है। उन सबको जलकन्या समझो। वे सब आपको बुरे कर्मों के समुद्र में डुबोते हैं।"

"फिर तो हर कोई जलकन्या हुआ।" धनुष्क ने चैन की श्वास लेते हुए कहा।

"जितनी अधिक आसक्ति उतना अधिक बुरे कर्मों का प्रवाह होता है।" बाबा बोले।

यद्यपि बाबा ने एक तथ्य बोला था, धनुष्क ने इसको भी अपनी और उर्वा की मित्रता पर टिप्पणी समझ ली।

दूसरी ओर उर्वा अपने ही किसी गणित में व्यस्त था। जब उसके गणित से एक तथ्य सिद्ध हुआ, उसने तुरंत उसको व्यक्त किया, "राजा को कोई प्रेम करता है तो कोई घृणा। किंतु प्रेम तथा घृणा दोनों ही आसक्ति के रूप हैं। इसलिए आप चाहे राजा से प्रेम करो अथवा घृणा, आप अपनी आत्मा के द्वार खोल रहे हो जिसके भीतर से राजा अपनी आत्मा के बुरे कर्म आप पर उड़ेल रहा है। रोचक तथ्य है, है ना? राजा अपने चाहने वालों और घृणा करने वालों, दोनों से लाभान्वित होता है। कर्म का गणित राजा पर वैभव की वर्षा करता है और प्रजा बेचारी नित्य के जीवन में पिसती रहती है। इसका अर्थ है कि आपकी सांसारिक सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि आप कितने जनों से अपने प्रति आसक्ति पैदा करते हो। वह आसक्ति सकारात्मक हो अथवा नकारात्मक। समाज के अपराधी डर और आतंक फैलाकर जनता में अपने प्रति नकारात्मक आसक्ति पैदा करते हैं और धन दौलत में खेलते हैं। सज्जन सकारात्मक आसक्ति पैदा करके शांति और समृद्धि की ऊंचाइयाँ प्राप्त करते हैं।"

बाबा ने उर्वा के वक्तव्य को थोड़ा-सा बदला, "ऐसा कोई सज्जन नहीं जो केवल सकारात्मक आसक्ति पैदा करे। राजा राम और योगेश्वर कृष्ण से भी कुछ जन घृणा करते थे। उनके राज्य के दुर्जन ही नहीं, कुछ सज्जन भी उनकी कार्यशैली और विचारधारा की आलोचना करते थे।"

बाबा और उर्वा का यह संवाद कहीं ओर जा रहा था। धनुष्क के मन में उसकी उर्वा के प्रति मित्रता के बारे में ही उथल-पुथल चल रही थी। बाबा और उर्वा के संवाद के बीच अपनी आशंका मिटाने की चेष्टा में वह बोला, "हाँ, मेरी और उर्वा की मित्रता गहरी है। हमारे बीच में बुरे कर्मों का प्रवाह नहीं, बाढ़ है बाढ़!"

चाचा बसंत ने इस बातचीत में पहली बार अपना योगदान दिया, "हो सकता है आपकी आत्माओं के बीच बनी नहर में ऐसा संतुलन बन गया हो कि प्रवाह रुक गया हो।"

बाबा ने अनुशंसा की, "हाँ, यह संभव है। जब दो आत्माओं के बीच आसक्ति होती है तो उनके बीच का प्रवाह कई बातों पर निर्भर होता है। यहाँ पर हम केवल जलकन्या के रहस्य को समझने की चेष्टा कर रहे हैं।"

"तो क्या यही है जलकन्या का रहस्य?" उर्वा ने व्यंग्य पूर्वक कहा, "क्या इसी रहस्य के लिए मुझे बचपन से उस बुरे सपने को झेलना पड़ रहा है? मैं किस पीड़ा से गुजरता हूँ, बता नहीं सकता। एक ही रात में जलमानवों के संसार में वर्षों बिताना! और जिसको आप रहस्य कह रहे हैं उसे कोई बच्चा भी समझ सकता है। तो फिर इस जलकन्या को इतनी महत्ता क्यों दी जा रही है, मेरी समझ से बाहर है।"

बाबा बोले, "मातंग मुखिया बनने के पश्चात यह आवश्यक है कि आप जलकन्या को देख सको और पहचान सको और उससे केवल अपने आपको ही नहीं अपितु अन्य मातंगों को भी बचाओ। यह सरल लगता है परंतु बहुत जटिल है। जलकन्या साधारण जनों और जंतुओं के पीछे छिपी होती है। जब तक आप उसे पहचान पाते हो, देर हो चुकी होती है। सत्य कहूँ तो मैं भी आज बहुत शक्तिहीन अनुभव कर रहा हूँ। उन तीन घुसपैठियों के पीछे छिपी जलकन्या ने मुझे संक्रमित कर दिया लगता है।"

जब बाबा ने यह शब्द बोले तब उनके मस्तिष्क में उन तीन बाहरी जनों की तस्वीर उभरी। और उसके साथ ही बने क्रोध के कुछ बुलबुले जो उन्होंने तुरंत फोड़ दिए। यह थोड़ा-सा क्रोध इस बात को दर्शाता था कि उनका जलकन्या के विरुद्ध सुरक्षा कवच क्षीण पड़ गया था। वर्षों से मातंग मुखिया का असाधारण दायित्व निभा रहे बाबा को कल शाम से स्वयं के साधारण होने का आभास हो रहा था। जब से वे पूर्वजों की पहाड़ी पर से हनुमान जी के साक्षात दर्शन करके लौटे थे, उन्हें उस न्यासी की तरह अनुभव हो रहा था जिसके अधीन संपत्ति का स्वामी लौट आया हो। जलकन्या के विरुद्ध उनके सुरक्षा कवच में यह क्षीणता सामान्यतः उनको चौकन्ना कर सकती थी किंतु आज उन्हें कोई भय नहीं था। क्योंकि वे जानते थे कि यदि जलकन्या का आक्रमण हुआ तो हनुमान जी, जो वहाँ आसपास ही उपस्थित थे, स्थिति को संभाल लेंगे।

"तीन घुसपैठिए या उनके पीछे छिपी जलकन्या आपकी अधिक से अधिक क्या हानि कर सकती है, बाबा?" उर्वा ने पूछा, "उनके कारण आपको जो क्रोध हुआ उससे अधिक से अधिक क्या होगा? कुछ घंटे सिर में पीड़ा रहेगी। कुछ समय के लिए आपकी मानसिक शांति भंग होगी और क्या होगा?"

"देखो, आपके प्रश्न ने मेरी यह बात सिद्ध कर दी है कि आपको जलकन्या का रहस्य समझ नहीं आया है।" बाबा बोले, "आप क्रोध से होने वाली हानि की बात कर रहे हो

और मैं बुरे कर्मों के संक्रमण से होने वाली हानि की। क्रोध या कोई भी भावना तो दो आत्माओं के बीच केवल नहर खोदती है। उस नहर से होकर जो बुरे कर्म प्रवाहित होते हैं, वास्तविक हानि उनसे होती है। घुसपैठियों द्वारा मुझसे बातचीत करने की घटना की स्मृति मुझमें थोड़ा क्रोध पैदा कर सकती है। उस क्रोध से अधिक से अधिक मेरी मानसिक शांति भंग हो सकती है। किंतु उस क्रोध के कारण उन तीनों के जो बुरे कर्म मेरी आत्मा पर चिपक गए, हानि तो उनसे होगी। क्या पता कौन-कौन से बुरे कर्मों का संक्रमण मेरी आत्मा में हो गया हो? क्रोध से मेरी शांति भंग हो ना हो, उन संक्रमित हुए कर्मों का परिणाम मुझे अवश्य भोगना पड़ेगा। वह परिणाम तुरंत भी आ सकता है या कई वर्ष पश्चात भी। बुरे कर्म वे बीज हैं जो अपने विषैले फल कभी भी दे सकते हैं। उससे भी चिंता की बात यह है कि जो बुरे कर्म उन तीनों से मेरी आत्मा पर आ चिपके हैं, वे मुझसे जुड़ी अन्य आत्माओं को भी चिपक सकते हैं। इसलिए हानि केवल व्यक्तिगत मेरी नहीं अपितु पूरे समाज की होगी। इसलिए कहता हूँ, जलकन्या को पहचान पाना और उससे रक्षा करना एक मातंग मुखिया का सबसे बड़ा दायित्व है।"

बाबा कैसे विषैले फलों की बात कर रहे थे? उर्वा और धनुष्क यह समझने के लिए अपनी कल्पना के घोड़े दौड़ाने लगे। चाचा बसंत ने बाबा को मंत्रणा दी, "बाबा, यदि आप उदाहरण दें तो कुछ समझ आए।"

बाबा बोले, "मैं कोई भय पैदा नहीं करना चाहता हूँ क्योंकि भय भी आसक्ति का ही रूप है। परंतु उदाहरण चाहते हो तो कल्पना करो कि मेरे या मुझसे जुड़े किसी जन के साथ कोई दुर्घटना घट जाती है।"

"दुर्घटना? केवल इसलिए कि आप कुछ बाहरी जनों पर क्रोधित हुए?" धनुष्क बोला, "और आप तो क्रोधित हुए भी नहीं। आप तो क्रोधित होने का अभिनय कर रहे थे। अभिनय में कुछ वास्तविक क्रोध भी था तो भी उसका परिणाम दुर्घटना थोड़े ही हो सकती है?"

बाबा बोले, "मैं दोहराता हूँ, क्रोध केवल नहर खोदता है। हानि उस नहर से बहने वाले बुरे कर्म करते हैं।"

"हानि से बचने का कोई उपाय नहीं है क्या, बाबा?" चाचा बसंत ने पूछा। बसंत आयु में तो अपने भतीजों से बहुत बड़े थे परंतु ज्ञान में उनके बराबर ही थे क्योंकि जब 41 वर्ष पहले गुरु हनुमान मातंग कबीले में आए थे तब बसंत एक बालक थे और ज्ञान प्राप्त करने के योग्य नहीं थे।

धनुष्क ने विचार रखा, "हानि तो कम कर ही सकते हैं और कर भी रहे हैं। हम मातंग जन बाहरी जनों से तो संपर्क में रहते नहीं हैं। न ही उनसे किसी प्रकार का लगाव रखते हैं। इसलिए बाहरी जनों के बुरे कर्म तो हमें संक्रमित करने से रहे। हमारी आसक्ति आपस में ही होती है। हम मातंगों के खाते में वैसे भी अधिक बुरे कर्म तो हैं नहीं। तो हानि कहाँ से पहुँचाएंगे? यदि बुरे कर्म हैं तो भी हमारी आत्माओं के बीच बनी आसक्ति की नहरों में ऐसा संतुलन बन गया होगा कि अब कोई प्रवाह नहीं होता होगा। इसलिए हमें बाहरी जनों से संपर्क न बनाने की परंपरा को बनाए रखना चाहिए। यदि संपर्क हो भी जाए तो... तो..."

"तो?" बाबा मातंग ने उर्वा की ओर अपेक्षापूर्वक से देखा।

उर्वा ने निराश नहीं किया। वह बोला, "तो हमें भावनाओं में बहने की बजाय भावनाओं का अभिनय करना चाहिए, जैसे आपने किया। आप क्रोधित नहीं थे, अभिनय कर रहे थे।"

"ऐसा केवल बाहरी जनों के साथ नहीं, हमें आपस में भी करना चाहिए। ज्ञानी मातंग सभी भावनाओं अर्थात आसक्ति के सभी नौ रूपों से बचकर रहते हैं। हमारे लिए जीवन एक अभिनय है। इस विशाल नाटक, जिसे माया कहते हैं, में हम अभिनय मात्र करते हैं।"

"सच्ची भावनाएँ ही हमें सच्चा व्यक्ति बनाती हैं। दिखावटी भावनाएँ तो दुष्टों की पहचान है जो अपना काम निकालने के लिए दिखाते कुछ है और अनुभव कुछ और करते हैं।" धनुष्क उर्वा को संबोधित करते हुए बोला।

उर्वा ने उसे समझाया, "माया के जाल में फँसे जनों द्वारा भावनाओं का आडंबर करना अलग बात है और माया के जाल को समझकर भावनाओं और जीवन को अभिनय मानकर जीना अलग चीज है। जिस समय मेरे मन में एक सच्ची भावना होती है उसी समय मेरी आत्मा में यह जागृति भी रह सकती है कि भावना माया के महानाटक का भाग मात्र है। भावना और जागृति में कोई विरोधाभास नहीं है। दोनों साथ-साथ हो सकती हैं।"

"यह जागृति ज्ञान के साथ आती है। वह महाज्ञान जो हमारे इष्टदेव एवं गुरु हनुमान जी हर 41 वर्ष पश्चात देते हैं।" बाबा ने कहा।

बसंत की आंखों में दशकों की प्रतीक्षा सूखेपन के रूप में प्रदर्शित हुई। अपने भतीजों को संबोधित करते हुए बोले, "जब 41 वर्ष पहले हनुमान जी आए थे तब मैं बालक

था। मैं ज्ञान पाने के योग्य नहीं था और आप दोनों तो पैदा भी नहीं हुए थे। मैंने और मेरी आयु के मातंगों ने बहुत लंबी प्रतीक्षा की है।"

चाचा बसंत तथा उसके भतीजों को तनिक भी भान नहीं था कि हनुमान जी मातंगों से मिलने पुनः आ चुके थे।

"जिन्हें ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है उन्हें ब्रह्मजन कहा जाता है।" बाबा बोले, "ब्रह्मजन भी सुख का अनुभव करते हैं किंतु इस जागृति के साथ कि वे इस माया के महानाटक में एक किरदार मात्र हैं। ब्रह्मजन भी दुःख का अनुभव करते हैं परंतु इस जागृति के साथ कि वे इस माया के महानाटक में..."

"हाँ, समझ में आ गया, बाबा।" उर्वा बीच में टोकते हुए बोला, "समझ में आ गया कि यदि हम भावनाओं को इस जागृति के साथ अनुभव करें कि हम आत्मा हैं और विभिन्न किरदारों को जी रहे हैं तो हम जलकन्या से सुरक्षित रहते हैं।"

बातचीत क्या है? यदि हम आँखें बंद करके बातचीत करें तो पता चलेगा कि बातचीत क्या होती है। हमें कुछ स्वर सुनाई देती हैं। हम उन स्वरों पर अपनी प्रतिक्रिया देते हैं। इसी का नाम बातचीत है। अब मान लीजिए कि आपकी नाक में कोई गंध पहुँचे और आप उस पर अपनी प्रतिक्रिया दें। उसे क्या कहा जाएगा?

उर्वा, धनुष्क, वसंत और बाबा मातंग के बीच हो रही बातचीत ने तब नया मोड़ ले लिया जब एक दुर्गंध उनकी नाक तक पहुँची। उस पर प्रतिक्रिया देते हुए वे गंध के स्रोत तक पहुँचे। उन्होंने देखा कि एक कुत्ता एक झाड़ी के पास पड़ा था। दुर्गंध से तो ऐसे ही लग रहा था कि वह मरा हुआ होगा। पता चला कि उसकी पूरी देह में कीड़े पड़े हुए थे। तुरंत उल्टी करा दे सकने वाली भयानक दुर्गंध के कारण वे मातंग जन कुत्ते के समीप बैठकर उसकी जांच तो नहीं कर सके किंतु बाबा की अनुभवी आँखों ने पता लगा लिया था कि उसमें जान शेष थी। अन्य तीन मातंगों को तो वहाँ पर जीवन नहीं अपितु भिनभिनाती मक्खियों के बीच पड़ा एक माँस का लोथड़ा ही दिखाई दिया।

जीवन का चिन्ह पाकर बाबा तुरंत हरकत में आ गए। उन्होंने चाचा बसंत को विशेष औषधियाँ लाने के लिए भेजा जो लगभग एक मील दूर एक छोटी-सी झील के किनारे उपलब्ध थीं। कुत्ते के घावों में पड़े कीड़े केवल उन्हीं औषधियों से धुल सकते थे। बसंत आदेश पाकर तुरंत झील की ओर दौड़े। धनुष्क उनकी सहायता करने के लिए उनके साथ गया।

उनके जाने के पश्चात बाबा उर्वा को कार्य सौंपने के लिए उसकी ओर मुड़े।

"और उर्वा आप-"

परंतु उर्वा वहाँ पर था ही नहीं।

"उर्वा-" बाबा ने पुकार लगाई।

"नहीं... नहीं... आप मेरे साथ ऐसा नहीं कर सकतीं।" उर्वा करीब 30 डग की दूरी पर स्थित एक पेड़ के पीछे छिपकर मिमिया रहा था।

बूढ़े बाबा के चेहरे पर वही भाव थे जो अपने बच्चे को बेवजह डरते हुए देख किसी पिता के होते हैं। वे तीव्रता से पेड़ के पास गए और उर्वा को लगभग घसीटते हुए घायल कुत्ते के पास लाए।

"आप कब से इतने कमजोर हृदय हो गए कि आप घायल कुत्ते को समीप से नहीं देख सकते? ऐसे कैसे बनोगे आप मातंग मुखिया?" बाबा ने उर्वा को डांटते हुए कहा।

"जलकन्या।" उर्वा बुदबुदाया। उसकी दृष्टि उस जगह को एकटक घूर रही थी जहाँ कुत्ता पड़ा हुआ था। उसका चेहरा इस तरह श्वेत पड़ गया था मानो उसे फांसी चढ़ाया जा रहा हो।

"हाँ! जलकन्या! तो अंततः आपको जागृत अवस्था में भी जलकन्या दिख ही गई।" बाबा की आँख में उस पिता की आंखों जैसी चमक थी जो अपनी संतान को पहली बार चलते हुए देखता है। हल्की-सी मुस्कान, आंखों में गर्व की चमक और छिपाए नहीं छिप रहे जोश के साथ बाबा बोले, "हाँ! यह कुत्ता हमारे भीतर दया की भावना जगा रहा है। दया भी आसक्ति का ही एक रूप है। अर्थात कुत्ते के साथ हमारे लगाव के कारण हमारी आत्मा और उसकी आत्मा के बीच एक नहर बन चुकी है जिससे उसके बुरे कर्म हमारी ओर बह सकते हैं। कुत्ते की आत्मा हमारे लिए वह जलकन्या है जो हमें उसके बुरे कर्मों के सरोवर में डुबो सकती है।

“परंतु बुरे कर्मों के संक्रमण के डर से हम अपने दायित्व से नहीं भाग सकते। हमारा स्वभाव है सहायता करना। केवल इसलिए कि बुरे कर्मों के संक्रमण का संकट है, हम अपने स्वभाव के विरुद्ध नहीं जा सकते। इस कुत्ते को यही मरते हुए छोड़ देना विरक्ति नहीं, कायरता होगी। संक्रमण के डर से कोई आत्महत्या तो नहीं कर लेता। इसलिए हम अपने मूल स्वभाव की हत्या नहीं करेंगे। हम इस कुत्ते की सहायता करेंगे, परंतु इस जागृति के साथ कि हम माया के इस महानाटक में किरदार मात्र हैं। हमें इस कुत्ते की सहायता करने वाले दयावान मातंगों के किरदार का अभिनय मात्र करना है। हम अपनी दया की

भावना को नहीं मार रहे। न ही हमारी दयाशीलता किसी भी तरह से कम हुई है। ब्रह्मज्ञान से हमें यह जागृति मिली है कि ये दयावान किरदार हम नहीं है। हम तो आत्मा हैं।"

उर्वा बाबा के उपदेश नहीं सुन रहा था। न ही उसे सुनने की आवश्यकता थी। जो चीज वह वर्षों से सपनों में देखता रहा था, अब उसकी आंखों के सामने थी। उसने तो सोचा था कि जलकन्या केवल उदाहरण था। परंतु उसे कुत्ते के पास वास्तव में एक जलकन्या दिखाई दे रही थी। उपदेश जीवित हो गए थे। अब उसे जलकन्या के बारे में मौखिक उपदेशों की आवश्यकता नहीं थी। बाबा भी यह बात समझ गए और उर्वा को उस दिन के मूल कार्य अर्थात शहद की खोज में आगे भेज दिया।

जब उर्वा वहाँ से जाने लगा तो बाबा को उसकी चाल में भी परिवर्तन दिखाई दिया। अब उसकी चाल में युवा जोश कम और जीवन का अनुभव अधिक दिखाई दे रहा था।

उर्वा के वहाँ से जाने के पश्चात बाबा के पास बातचीत करने के लिए कोई नहीं था। इसलिए वे श्वास रोककर कुत्ते के पास उसके घावों का निरीक्षण करने के लिए बैठ गए।

उनकी दृष्टि मात्र एक क्षण के लिए कुत्ते के घायल सिर पर पड़ी होगी परंतु उस एक क्षण में उन्होंने जो देखा वह मृत्यु तक उन्हें ज्यों का त्यों स्मरण रहने वाला था। श्वेत, चिकने कीड़ों का झुंड कुत्ते के सिर को तेजाब की तरह काट रहा था। आधा सिर तो कीड़े खा चुके थे, पता नहीं कुत्ते में जीवन कैसे अटका हुआ था। सबसे भयानक और कंपकपी पैदा करने वाला दृश्य कुत्ते की आंखों का था जिनके गड्ढों में कीड़े तिलमिला रहे थे। नेत्रपिंड नीचे गिरने को हो रहे थे।

बाबा को सिर से पैर तक कंपकपी हुई तो वे कूदकर खड़े हो गए और आठ दस डग पीछे जाकर पूरी श्वास ली। कीड़ों से उन्हें इतनी घिन्न आई कि वह कब घृणा में बदल गई, उन्हें पता ही नहीं चला। वे कल्पना करने लगे कि कैसे वे विषयुक्त औषधि को कीड़ों पर उड़ेलकर उनका नाश करेंगे। कीड़ों के प्रति घृणा अब क्रोध में बदल गई और उनके क्रोध का लक्ष्य बने धनुष्क और चाचा बसंत जो औषधियाँ लेकर अभी तक नहीं लौटे थे।

"ये दो निकम्मे कहाँ रह गए?" बाबा ने दाँत पीसते हुए कहा। यद्यपि वे दोनों समय पर थे। वे वहाँ से दो एक मील की दूरी पर औषधियाँ चुन रहे थे। बाबा का समय ज्ञान गड़बड़ा गया लगता था। उनके कुछ क्षण एक घंटे की तरह बीत रहे थे। घिन्न, घृणा और क्रोध की वे तीव्र भावनाएँ जो तिलमिलाते कीड़ों ने जगाई थी, बाबा को डुबो रही थीं।

कुछ क्षण पश्चात सरोवर के किनारे जड़ी बूटियाँ चुन रहे बसंत और धनुष्क को एक विषैले सांप ने काट लिया। उनके मुंह से झाग निकलने लगे और वे अचेत हो गए।

औषधियाँ लाने में देरी अब बाबा के अशांत मन की कल्पना नहीं, वास्तविकता बन गई थी।

जलकन्या के रहस्य को जानने वालों के लिए बसंत और धनुष्क को सांप का काटना कोई दुर्घटना नहीं थी। कुत्ते के सड़ते तन में उपस्थित कीड़ों के समूह की भी एक आत्मा थी। कीड़े देखकर जो घिन्न, घृणा व क्रोध बाबा के मन में पैदा हुआ था, वे उससे स्वयं को अलग नहीं कर पाए। परिणामस्वरूप कीड़ों की आत्मा और उनकी आत्मा के बीच नहर बन गई जिसके माध्यम से बुरे कर्म बाबा की आत्मा की ओर प्रवाहित हो गए। वे कर्म तुरंत फलित भी हो गए। बाबा के दो प्रियजनों को सांप ने काट लिया।

कहाँ वे कीड़ों पर विष डालने की कल्पना कर रहे थे और कहाँ अब उनके प्रियजनों की रगों में विष बह रहा था।

कुत्ते के पीछे छिपी जलकन्या को उन्होंने पहचान लिया था परंतु कीड़ों के पीछे की जलकन्या को वे नहीं पहचान पाए थे। वे उस जलकन्या अर्थात कीड़ों की आत्मा को मुक्ति देने में असमर्थ रहे थे। उल्टा उस जलकन्या ने बाबा को ऐसे जीवन में खींच लिया था जहाँ उनके दो प्रियजन उनके कारण मृत्यु की कगार पर थे। बुढ़ापे में अपने प्रियजनों की मृत्यु के दोष का बोझ लेकर जीना तो कदाचित कीड़ों के जीवन से भी बदतर होने वाला था।

बाबा यह सोचकर वहाँ से चल दिए कि वे स्वयं ही शीघ्रता से झील के किनारे जाएँगे और वहाँ से जड़ी-बूटियाँ लाकर कुत्ते को स्वस्थ करेंगे।

जब वे झील के किनारे पहुँचे तो असमंजस में फँस गए कि दाएँ जाएँ या बाएँ। जो जड़ी बूटियाँ धनुष्क और बसंत लाने निकले थे वे झील के दोनों ओर थी। अपने गुम हुए परिजनों को ढूँढने वे किस ओर जाते? उन्होंने पागलों की तरह पुकार लगाई। कोई उत्तर नहीं मिला। उनके विचलित मन का ध्यान पक्षियों के एक झुंड की ओर गया जो मनहूस कलरव कर रहा था। उनकी दाईं दिशा में कुछ डग की दूरी पर छोटी झाड़ियों से घिरा हुआ एक ऊंचा पेड़ था जिसकी शाखाओं पर बैठे पक्षियों की हलचल पेड़ के नीचे किसी सर्पकांड का संकेत दे रही थी।

वहाँ पहुँचकर उन्होंने जो देखा वह उनके बुरे सपनों से भी बदतर था।

क्रियारहित और संभवत मृत दो तन... दहकती अग्नि की तरह लाल सर्पदंश... मुंह से निकलकर सूख चुके झागों के चिन्ह... आँखें खुली हुईं और पुतलियाँ ऊपर की ओर चढ़ी हुईं।

कांपते हाथों से बाबा ने वह काला धागा तोड़ा जो वे कमर में पहनते थे। धागे के दो भाग किए। अपने थरथराते घुटनों के बल बसंत के पास बैठकर उन्होंने उसकी पिंडली के

उस स्थान के नीचे धागा बाँधा जहाँ पर सांप ने काटा था। फिर अपने चाकू से उसके घाव को काटकर उन्होंने विषयुक्त रक्त निकालना शुरू किया।

सर्पदंश को ठीक करने के लिए की जाने वाली पूरी प्रक्रिया उन्होंने की परंतु बसंत में प्राणों का संचार नहीं हुआ। अब बाबा बुरी तरह घबरा गए थे। पैरों पर खड़े होने की शक्ति अब उनमें नहीं बची थी। वे सरकते हुए पास में पड़ी धनुष्क की देह के समीप गए और वहीं प्रक्रिया दोहराई।

जीवन की कोई किरण दिखाई नहीं दी। बाबा को जैसे पागलपन का दौरा पड़ गया। वे एक-एक करके धनुष्क और बसंत की स्थिल पड़ी देहों को हिलाकर उनके नाम पुकारने लगे। वे दोनों नींद में थोड़े ही थे जो अपना नाम सुनकर जाग जाते। जब देह में जीवन की आशा होती तो उनकी आत्माएँ वापिस लौटकर आती भी।

गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रहे बाबा के कंठ ने भी उनका साथ छोड़ दिया। अपने प्रियजनों के प्राणरहित चेहरे देखकर उनकी आंखों में आँसू आ गए और उनकी आंखों के आगे अँधेरा छा गया। अँधेरा भी ऐसा कि जैसे मृत्यु जीवन के कक्ष की खिड़कियों पर लकड़ी के फट्टे जड़ चुकी हो।

जो हो चुका था उसको ठीक करने की कोई आशा तो उन्हें दिखाई नहीं दी परंतु दुःख को कम करने के लिए उनके मन ने उनको उर्वा का नाम सुझाया। दुःख की घड़ी में मन सान्निध्य खोजता है। उन्होने उर्वा का नाम चिल्लाना शुरू कर दिया। उन्हें आशा थी कि उर्वा कहीं आस-पास ही था।

बाबा मातंगों में सबसे अधिक अनुभवी व बुद्धिमान थे। यदि वे कुछ नहीं कर सकते थे तो युवा उर्वा के वहाँ होने से क्या अंतर पड़ने वाला था? परंतु मन तो मन है। दुःख का कारण मिटाने की आशा समाप्त हो जाए तो दुःख को बांटकर कम करने की आशा खोजने लगता है।

किंतु बाहरी तौर पर बाबा उर्वा को ऐसे पुकार लगा रहे थे जैसे वे किसी पहुँचे हुए वैद्य को बुला रहे हों। वे कदाचित मृत्यु को यह दर्शाना चाहते थे कि उन्होंने अभी हार नहीं मानी थी और वे अभी भी मृत्यु को वहाँ से भगाने के विकल्प खोज रहे थे।

जब उर्वा का कोई उत्तर नहीं मिला तो बाबा के कमजोर पड़ चुके मन ने ऐसी तस्वीरें बनानी शुरू कर दी जिनमें उर्वा भी कहीं पास ही सर्पदंश के कारण अचेत पड़ा था। उनके मन के दूसरे भाग ने इन तस्वीरों को जलाने के लिए क्रोध की अग्नि सुलगा दी। क्रोध में वे उर्वा को कोसने लगे कि वह आवश्यकता के समय कभी भी उपलब्ध नहीं होता था।

बाबा के इस बेतुके क्रोध का अगला लक्ष्य बना वहाँ पास के पेड़ पर चीख रहा एक वानर जिसके एक हाथ में केला और दूसरे हाथ में सर्पदंश के लिए काम आने वाली जड़ी-बूटियों का गुच्छा था।

अब बाबा को ध्यान आया कि धनुष्क और बसंत ने अचेत होने से पहले सहायता की गुहार लगाई होगी। मातंग और वानरों के बीच संबंधों का अनांकित नियम था कि वे आवश्यकता पड़ने पर एक दूसरे की सहायता करते थे। सर्पदंश से ग्रस्त उन दो मातंगों की गुहार भी किसी वानर ने सुनी ही होगी। कदाचित उसी वानर ने सुनी थी जो उस पेड़ पर बैठा था। तभी तो उसके हाथ में विषरोधी जड़ी बूटियाँ थी। किंतु उसने वे जड़ी बूटियाँ उन मातंगों के पास क्यों नहीं फेंकी जिनको उनकी आवश्यकता थी? और वह वानर आनंद से केला खाने की बजाय अपने वानर समाज के अन्य सदस्यों को सहयोग के लिए क्यों नहीं बुला रहा था? मातंग और वानरों के बीच इसी सहयोग का परिणाम था कि कोई मातंग, कम से कम बाबा की स्मृति में, सर्पदंश से मृत्यु को प्राप्त नहीं हुआ था। परंतु आज यह सब कैसे हो गया? बाबा के विचलित मन ने सारा दोष उस वानर पर मढ़ दिया।

बाबा का पागलपन चरम सीमा पर पहुँच गया। बाबा ने एक पत्थर वानर की ओर दे मारा। पत्थर को चकमा देकर वानर ने बाबा की अनुकृति करते हुए केले के छिलके बाबा की ओर फेंके। जब वह निर्दयी जंतु पेड़ से उतरकर भागा तो बाबा ने छड़ी लेकर उसका पीछा करना शुरू कर दिया।

कहाँ वे बाबा थे जो इतने ज्ञानी थे कि वे देवताओं से वार्ता कर सकते थे और कहाँ ये बाबा थे जो क्रोध में इतने अंधे हो चुके थे कि एक वानर को पीटने के लिए दौड़ रहे थे! एक घंटे में वे अज्ञानता की गहराइयों में गिर गए थे।

तीन जलकन्याएँ उन्हें ले डूबी थीं। पहली जलकन्या उन कीड़ों की आत्मा थी जिन्होंने बाबा के मन में घिन्न पैदा करके उनको आसक्ति के बंधन में बाँधा। दूसरी जलकन्या धनुष्क और वसंत की अचेत देहों के पीछे छुपी थी जिसने दु:ख की भावना के माध्यम से बाबा की आसक्ति प्राप्त की। तीसरी जलकन्या उस वानर के पीछे थी जिसको पीटने के लिए बाबा क्रोध से आसक्त होकर दौड़ रहे थे।

उन्होंने अपनी बूढ़ी, थकी हुई देह को वानर के पीछे तब तक घसीटा जब तक कि उनकी छाती में असहनीय पीड़ा नहीं उठ गई। वे घुटनों पर हाथ रखकर नीचे झुके। उनके फेफड़े वायु के लिए तरस रहे थे। उनके तन के एक-एक पोर से पसीने की फुहारें छूट रही थीं। जिस वानर के पीछे भागते-भागते उनकी यह हालत हुई थी वह वानर आनंदपूर्वक एक पेड़ की नीची टहनी पर बैठ गया था।

उसी पेड़ के नीचे उर्वा शांति से बैठा था, उसका मुख पेड़ के तने की ओर था और उसके होंठ ऐसे हिल रहे थे जैसे वह किसी से बात कर रहा हो। बाबा जहाँ खड़े हाँफ रहे थे वह स्थान उर्वा से कुछ ही डग दूर था। किंतु कई क्षणों तक न तो बाबा को उर्वा दिखाई दिया और न ही उर्वा को बाबा की तेज श्वासें सुनाई दीं।

अंततः बाबा की श्वासों की गति साधारण हुई और उन्होंने अपना सिर उठाया तो उन्हें सामने उर्वा कि पीठ दिखाई दी।

"उर्वा!" बाबा ने चिल्लाने की चेष्टा की परंतु उनके गले से केवल घरघराहट निकली, "अरे निकम्मे... अरे कामचोर... अरे पुतले... यहाँ बैठे क्या कर रहे हो? मैं वहाँ गला फाड़-फाड़ कर..."

उर्वा ने एक क्षण के लिए अपनी गर्दन घुमाई और बाबा के शब्दों पर अपने चेहरे के भावों से प्रतिक्रिया दी। उसकी प्रतिक्रिया ऐसी थी जैसे किसी ध्यान में लीन साधु का ध्यान किसी आसुरी शक्ति ने भंग किया हो। इस क्षणिक प्रतिक्रिया के पश्चात उसने अपना मुख पुनः पेड़ के तने की ओर कर लिया।

बाबा का मस्तिष्क पुनः क्रोध से फट पड़ा। उर्वा तो बेचारा किसी दिव्य क्रिया में लीन था परंतु बाबा के मस्तिष्क ने उसके इस व्यवहार को अवज्ञा मान लिया था। उनके क्रोध का कारण बनी थी उर्वा की वह काल्पनिक बुरी छवि जो उनके मस्तिष्क ने बनाई थी परंतु उनके क्रोध का लक्ष्य बना वास्तविक उर्वा। उर्वा को पाठ पढ़ाने के विचार से वे बड़ी फुर्ती से आगे की ओर बढ़े परंतु उनकी छाती में भयानक पीड़ा ने ऐसे छुरे घोंपे कि वे अपंग हो गए। अपने दोनों हाथों से छाती का बायाँ भाग पकड़ते हुए उन्होंने पीड़ा भरी चीख निकाली जो उनके गले में ही फँस गई। वे पहले थोड़ा झुके, तत्पश्चात उनके घुटने भूमि पर टिक गए और तत्पश्चात वे सपाट धरती पर गिर पड़े। पीड़ा चली गई थी परंतु उनकी चेतना को साथ लेकर।

उर्वा ने अपनी गर्दन घुमाकर एक बार पुनः पीछे देखा। बाबा भूमि पर गिरे हुए थे किंतु वह अपनी जगह पर बैठा रहा। उसने बाबा की अवस्था को देखकर कोई भी प्रतिक्रिया नहीं दी। उसे लग रहा था कि जो कुछ भी उसके पीछे हो रहा था, वह मात्र एक भ्रम था। उसके लिए केवल एक ही आकृति वास्तविक थी और वह उसके ठीक सामने उपस्थित थी। वह आकृति थी चिरंजीवी हनुमान जी की जो पेड़ के तने के साथ लगकर विश्राम अवस्था में खड़े थे।

"... और तत्पश्चात वे बंदर का पीछा करते हुए यहाँ पहुँच गए। उन्होंने आपको देखा, मुझे नहीं। उन्होंने सोचा कि आप पेड़ से बात कर रहे हो।" हनुमान जी बाबा मातंग

के विचित्र व्यवहार के पीछे की कहानी उर्वा को सुनाते हुए बोले।

"परंतु क्यों देव? वे आपको क्यों नहीं देख पा रहे?" उर्वा ने पूछा।

"इस धरती की करोड़ों अन्य आत्माएँ मुझे क्यों नहीं देख पा रही हैं? बस वही कारण है कि बाबा भी मुझे नहीं देख पा रहे। बुरे कर्म! मेरे और उनके बीच बुरे कर्मों का एक गहरा गड्ढा बन गया है। बाबा पिछले एक घंटे में अज्ञान और भ्रम की कई परतों के नीचे दब गए हैं। यदि मैं उदाहरण अथवा रूपक का प्रयोग करके कहूँ, बाबा जलकन्याओं के जाल में फँस गए हैं।" हनुमान जी ने उत्तर दिया।

उर्वा ने कहा, "हे देव, यदि बाबा के बुरे कर्मों के नीचे दबने का कारण वह घिन्न है जो उन्हें कुत्ते के सिर में पड़े कीड़ों को देखकर आई, अथवा वह भय है जो उनको अपने प्रियजनों के संकट में होने के कारण हुआ, अथवा वह क्रोध है जो उन्हें विश्वासघाती वानर पर आया, तो मुझे भी बुरे कर्मों के गहरे गड्ढे में होना चाहिए। मुझे भी आप दिखाई नहीं देने चाहिए। क्योंकि मैं भी अतीत में कई बार घिन्न, भय तथा क्रोध जैसी भावनाओं से ग्रस्त हुआ हूँ।"

हनुमान जी बोले, "हाँ, आप और अन्य कई मातंग भी अतीत में कई बार बुरे कर्मों के गहरे गड्ढे में गिरे हैं। कई बार उन्हें जलकन्याओं ने फँसाया है। परंतु आप और आपके समाज के जन तुरंत ही जलकन्याओं के चंगुल से छुड़ा भी लिए गए हो-"

"कैसे देव? हमें किसने छुड़ाया? आप तो पिछले 41 वर्ष हमसे दूर रहे हैं। तो बार-बार जलकन्याओं के चंगुल में फँस रहे मातंगों को किसने छुड़ाया?" उर्वा ने पूछा।

"बाबा ने उनको बचाया।" हनुमान जी ने सहजता से उत्तर दिया, "हाँ! बाबा ही जलकन्याओं से मातंग समाज की रक्षा कर रहे थे और मेरे यहाँ से जाने के बाद अगले 41 वर्ष तक मातंग मुखिया के रूप में यह आपका दायित्व होगा कि आप अपने समाज के जनों को जलकन्याओं के जाल से बचाओ और छुड़ाओ।"

"हे देव, मैं इतने बड़े दायित्व के लिए तैयार नहीं हूँ। यदि मैं स्वयं फँस गया तो मुझे कौन बचाएगा?" उर्वा ने पूछा।

"आप नहीं फँसोगे। आप भूल से भी नहीं फँस सकते। उन बुरे सपनों का अनुभव जो बचपन से आपकी नींद नष्ट कर रहे हैं, और मेरा ज्ञान जो मैं आपको प्रदान करने जा रहा हूँ, दोनों मिलकर जलकन्या को तुरंत पहचानने में आपकी सहायता करेंगे।" हनुमान जी बोले।

"परंतु बाबा तो आज स्वयं फँस गए, देव।" उर्वा बोला और गर्दन घुमाकर पीछे भूमि पर पड़े बाबा के अचेत तन पर एक दृष्टि डाली।

जलकन्या के विरुद्ध लड़ाई में पिछले 41 वर्ष में बाबा के डग बिल्कुल भी नहीं लड़खड़ाए। जलकन्या के विरुद्ध उनका सुरक्षा कवच तब से क्षीण हुआ है जब से उन्हें पता लगा है कि मातंगों की रखवाली के लिए मैं यहाँ आ गया हूँ। और यह समझ में भी आता है। 41 वर्ष की थकान! व्यक्ति चैन चाहता है। जो भी है, आपके लिए यह सुनहरा अवसर है यह सीखने के लिए कि जलकन्याओं के चंगुल से किसी को कैसे छुड़ाते हैं। बताओ... यदि मैं यहाँ पर उपस्थित नहीं होता तो आप बाबा को ठीक करने के लिए क्या करते?" हनुमान जी ने पूछा।

उर्वा ने उत्तर दिया, "बाबा के विचित्र व्यवहार और बसंत और धनुष्क के दुर्घटना के समाचार से मेरे मन में भय पैदा होता। भय अर्थात आसक्ति, आसक्ति अर्थात जलकन्या। मुझे बाबा में जलकन्या दिखाई देती और मैं इस बोध से कर्म करता कि मैं इस माया के महानाटक में किरदार मात्र हूँ। इस आत्मजागृति के साथ मैं बाबा को उस स्थान पर ले गया होता जहाँ पर-"

चिरंजीवी हनुमान उसे बीच में टोकते हुए बोले, "इस तरह आप अपनी आत्मा को तो संक्रमण से बचा लेते परंतु बाबा की आत्मा का क्या जो पहले से ही संक्रमित है? उसको आप पूर्ववत कैसे करते? यदि आप उनके साथ उस स्थान पर जाते जहाँ पर सर्पदंश से पीड़ित वे दो कुटुंबजन पड़े हैं और उनको ठीक कर भी देते तो भी उस दुर्घटना की स्मृति ज्यों की त्यों जीवित रहती। जलकन्या का प्रभाव स्मृति के रूप में जीवित रहता और आप अच्छी तरह से जानते हैं कि मस्तिष्क में उपस्थित स्मृति भविष्य के निर्णय को प्रभावित करती है। अर्थात पिछले एक घंटे की स्मृतियाँ मातंगों के आने वाले कई वर्षों को प्रभावित कर सकती हैं। बाबा और आपके पूरे समाज को जलकन्या के प्रभाव से मुक्त करने के लिए आपको वह सब कुछ इस तरह पूर्ववत करना है कि उसकी स्मृति तक ना बचे।"

"परंतु कैसे, देव?" उर्वा ने पूछा।

हनुमान जी का उत्तर एक चमत्कार के रूप में आया। कम से कम उर्वा के लिए तो वह चमत्कार ही था। उसके पीछे बाबा उबासी लेते हुए कुछ ऐसे उठ खड़े हुए जैसे वे एक अच्छी-सी झपकी लेकर उठे हों।

बाबा ने धनुष्क का नाम पुकारा। आश्चर्य की बात यह थी कि वे धनुष्क से यह पूछ रहे थे कि उसने शहद इकट्ठा करने का काम पूरा कर लिया या नहीं। धनुष्क पास में ही एक

पेड़ के ऊपर चढ़ा शहद इकट्ठा कर रहा था और उसी पेड़ के नीचे खड़ा था बसंत। धनुष्क ने उत्तर दिया कि शहद प्राप्ति का कार्य लगभग पूरा हो चुका था।

हाँ! मातंग समाज के दो जन जो कुछ देर पहले सर्पदंश से पीड़ित होकर लगभग मृत हो चुके थे, अब न केवल पूर्णतः स्वस्थ थे अपितु उनके मस्तिष्क में उस दुर्घटना की स्मृति तक नहीं थी। परंतु किसी कारण से उर्वा की स्मृतियाँ ज्यों की त्यों रही। यदि उर्वा के मस्तिष्क में स्मृति नहीं होती तो उसे यह चमत्कार लगता ही नहीं। क्योंकि दुर्घटना ही नहीं हुई तो चमत्कार कैसा?

"कैसे देव?" उर्वा ने आश्चर्य से पूछा।

"आने वाले कुछ दिनों तक मैं यहाँ पर आप सब मातंगों के साथ रहूँगा। उस दौरान मैं आपको सिखाऊंगा कि यह चमत्कार कैसे किया जाता है।" हनुमान जी ने उत्तर दिया।

इस बीच बाबा ने हनुमान जी को देख लिया था। उनके वहाँ आने से उर्वा और हनुमान जी के बीच चल रहा संवाद रुक गया। और उसके पश्चात बसंत और धनुष्क भी वहाँ आ गए।

अध्याय 3

अवर्णीय का वर्णन

हवा में फैली बू भी कैसे व्यक्ति का रास्ता बदल देती है! अधमरे कुत्ते से आ रही बदबू ने उन मातंग पुरुषों - बाबा, उर्वा, धनुष्क, तथा बसंत - को उनका रास्ता भटकाया और उनको विचित्र स्थितियों में डाला। ठीक उसी समय जंगल के दूसरे भाग में कुछ मातंग महिलाओं ने एक भयानक गंध में श्वास लिया। वे महिलाएँ ईंधन के लिए लकड़ियाँ चुनने जा रही थीं। और उस गंध का अर्थ था समीप में ही किसी तेंदुए की उपस्थिति। उन्होंने तुरंत अपना रास्ता बदलकर एक लंबा रास्ता चुना। उन्होंने एक दिन पहले लकड़ियाँ काटकर एक जगह पर डाली थीं। वे उसी जगह पर जा रही थीं।

जब वे तेंदुए की गंध से दूर पहुँच गईं तब जाकर उनका आपस में बातचीत करने का साहस हुआ। बातचीत की शुरुआत बसंत की पत्नी जानकीरूपा ने की। वह कद में छोटी, भार में थोड़ी-सी अधिक और आयु में अधेड़ थी। वह बोली, "कैसी दयनीय स्थिति है हमारी! हम दयनीय कठपुतलियाँ हैं, व्यक्ति नहीं। हम जिस रास्ते पर चलना चाहते हैं, उस रास्ते पर भी नहीं चल पा रहे हैं। स्वेच्छा की अवधारणा मिथ्या है। कुछ अदृश्य एवं अज्ञात शक्तियाँ हमें नियंत्रित कर रही हैं।"

"एक राज्य में जो मिथ्या है वह दूसरे राज्य में सत्य हो सकता है।" एक छोटे कद की पतली मातंग कन्या बोली। उसका नाम उर्मी था। उसने आगे कहा, "मैंने बाबा को अपनी स्वेच्छा शक्ति से असंभव कार्य करते हुए देखा है। हमारे समाज के वृद्धजन अपनी शक्तियाँ दिखाते नहीं है परंतु जब आवश्यकता पड़ती है तो अपनी स्वेच्छा शक्ति का भरपूर प्रयोग करते हैं। आत्मज्ञान से सब कुछ संभव है। 41 वर्ष पहले जब हनुमान जी हमारे गाँव में आए थे तब उन्होंने जो ज्ञान दिया था उसी ज्ञान का प्रयोग करके हमारे वृद्ध मातंग जन चमत्कार करते हैं। 41 वर्ष पहले हम युवा मातंगों की आत्माएँ किसी अन्य देह में भटक रही थीं।"

"मेरी आत्मा तो इस देह में ही थी। मैं मातंग महिला के रूप में जन्म ले चुकी थी। किंतु मैं शिशु अवस्था में ही थी; मैंने एक शब्द भी नहीं सीखा था।" जानकीरूपा ने उर्मी के कथन की त्रुटि को सुधारते हुए कहा।

उर्मी और जानकीरूपा की आयु में 20 वर्ष का अंतर था। तो भी वे घनिष्ठ सहेलियाँ थी। उर्मी के जिज्ञासु मन के लिए जंगल का कण-कण ज्ञान की परम पुस्तक का एक पन्ना था। वह घंटों तक जंगल के पेड़-पौधों और पशु-पक्षियों को ऐसे निहारती रहती थी जैसे

कोई मनोरंजक पुस्तक पढ़ रही हो। एक तो उच्च कोटि की विदुषी होना और ऊपर से मातंग संस्कृति के ताने-बाने की रक्षा का उन्माद! ऐसी कन्या भला अपनी आयु की लड़कियों के साथ कैसे घुल मिल सकती थी? सभी मातंग यह मानते थे कि उर्मी मानसिक रूप से 80 वर्ष की महिला थी जो 20 वर्ष की देह में फँसी हुई थी। देवताओं ने भी उसे अगले मातंग प्रमुख उर्वा की होने वाली पत्नी घोषित कर रखा था। इन्हीं सब कारणों से सभी मातंग, चाहे वे युवा हों या वृद्ध, पुरुष हों या महिलाएँ, उसका विशेष आदर करते थे।

"चलो आज और अभी से कठपुतलियाँ बनना बंद कर देते हैं। चलो उसी रास्ते चलते हैं जिस रास्ते चलने की हमारी इच्छा है। चलो उसी रास्ते चलते हैं जहाँ से तेंदुए की उपस्थिति की गंध आ रही है।" जानकीरूपा बोली। उसके चेहरे की कृत्रिम मुस्कुराहट यह दिखा रही थी कि वह केवल उर्मी के चेहरे पर कुछ विशेष प्रतिक्रियाएँ लाने के लिए यह सब बोल रही थी।

"नहीं, वह नियमों के विरुद्ध होगा। जैसा कि आप जानती हो, हम मातंग उस रास्ते पर कभी नहीं चलते जिस रास्ते पर तेंदुए ने अपनी गंध छोड़ी हो।" उर्मी ने ठीक उसी प्रतिक्रिया के साथ उत्तर दिया जैसी जानकीरूपा ने अपेक्षा की थी। यदि यह प्रस्ताव उर्वा के सामने रखा गया होता तो वह इसे वास्तविकता में बदलने के लिए जुट जाता। परंतु उर्मी अलग थी, उर्वा से अलग, अपनी आयु के सभी मातंगों से अलग। वह नियमों और परंपराओं का पालन करने में विश्वास रखती थी। न केवल पालन अपितु कठोरता से पालन करवाने में भी विश्वास रखती थी। और इस सबको तर्कसंगत ठहराने के लिए उसका तेज मस्तिष्क तर्क की आपूर्ति में कभी विफल नहीं रहता था।

एक पल के विचार के पश्चात उर्मी के मस्तिष्क ने नियम न तोड़ने के लिए तर्क ढूँढा। वह बोली, "और वैसे भी, चाहे हम जो भी रास्ता चुनें, हम कठपुतलियाँ ही रहेंगे। यदि हम अपने भय को भूलकर उस रास्ते पर जाते भी हैं जिस रास्ते पर तेंदुए ने अपनी गंध छोड़ी है, तो भी हम कठपुतलियाँ ही रहेंगे, स्वामी नहीं बन जाएँगे। धरती पर ऐसे करोड़ों रास्ते हैं जिन पर इस समय कोई न कोई व्यक्ति चल रहा है। तो क्या हुआ कि हम उनमें से एक रास्ता अगले कुछ दिनों तक इसलिए प्रयोग नहीं करेंगे क्योंकि उस रास्ते पर तेंदुए के होने का भय है? शेष रास्तों का क्या? हम धरती के करोड़ों रास्ते अपने जीवन काल में देखेंगे भी नहीं। क्यों? क्योंकि हम कठपुतलियाँ हैं। जिनके हाथ में हमारी डोर है वे हमारे स्वामी हैं और उन्होंने धरती के इस कोने को हमारा रंगमंच चुना है। यही पर हमें अपना खेल दिखाना है। हमें पूरा जीवन जंगल के इन्हीं कुछ रास्तों पर बिताना है।"

"मुझे लगता है कि स्वामी एक नहीं, कई हैं। हर वह उच्च शक्ति जो हमारे रास्ते निर्धारित कर रही है, हम कठपुतलियों की स्वामी है।" जानकीरूपा बोली। जिस रास्ते पर

वे मातंग महिलाएँ चल रही थी, उस रास्ते पर प्रकृति जिज्ञासु मन के लिए बहुत सारा व्यंजन परोस रही थी। ज्ञान की बातें भी उस व्यंजन की तुलना में स्वादहीन लग रही थीं।

उर्मी का मन भी व्यंजन का आनंद ले रहा था। परंतु ज्ञान की बातें उसके लिए स्वादहीन नहीं अपितु अचार की तरह थी जो व्यंजन का स्वाद बढ़ाने का काम कर रहा था। वह बोली, "यह भी तो हो सकता है कि हमारा कोई भी स्वामी न हो? यह संभव है कि हमें कोई नियंत्रित नहीं कर रहा है। कदाचित हम किसी संकरी गलियों की भूलभुलैया में भटके हुए हैं। और उनमें से अधिकतर गलियाँ आगे से बंद हैं। हम बंद गलियों में अपना सिर पटककर रोते रहते हैं क्योंकि हमें पता नहीं है कि सही गली कौन सी है। कदाचित हमारे जीवन का उद्देश्य उसी सही रास्ते को ढूँढना है जो हमें इस भूलभुलैया से बाहर निकाल सकता है। अरे ध्यान से-"

उर्मी जानकीरूपा को रास्ते में पड़े एक काँटे के बारे में चेता रही थी। परंतु जब तक उसके मुख से वे शब्द निकले तब तक जानकीरूपा ने सुरक्षित काँटे वाली जगह को पार कर लिया था।

जब जानकीरूपा के कान में वे शब्द पड़े तो वह तुरंत रुकी और बोली, "क्या हुआ? कोई सांप वगैरा दिखा क्या?"

"कुछ नहीं।" उर्मी बोली। वह एक डग पीछे हटी और नीचे झुककर वह काँटा उठाया जिसको जानकीरूपा ने सुरक्षित पार कर लिया था। इस बीच उसकी अन्य सहेलियाँ भी रुक गई थीं और उसे कौतुक भरी दृष्टि से देख रही थीं।

जानकीरूपा को वह काँटा दिखाते हुए उर्मी बोली, "देखो यह काँटा आपके रास्ते में था। आपने इसे नहीं देखा। एक अदृश्य शक्ति ने आपको इससे बचाया। या इसे आपका सौभाग्य कहा जाए?"

जानकीरूपा ने काँटे को लेने के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाया और बोली, "कदाचित आप ठीक ही कहती हो। हम किसी भूलभुलैया में हैं। परिस्थितियाँ अघोषित आंधी की तरह हमारे सामने आती हैं। यदि हमें इस भूलभुलैया के रास्तों का पता होता तो कदाचित हम अपनी स्वेच्छा से इसमें विचरण कर पाते। अज्ञानता में हम इधर-उधर किसी भी दिशा में लुढ़क रहे हैं।"

"अज्ञानता नहीं, इसे आंशिक अज्ञानता कहा जाएगा।" उर्मी बोली। अपनी सहेलियों के मुख पर आए प्रश्नात्मक भावों को मिटाने के लिए उसने उदाहरण रूपी पोंचा घुमाया, "उस बेर की झाड़ी को देखो। वह झाड़ी भी इस भूलभुलैया का भाग है। मुझे इतना तो ज्ञान

है कि उस झाड़ी से बेर तोड़कर कैसे लाने हैं। परंतु मुझे इतना ज्ञान नहीं है कि इस राज्य की रानी कैसे बनना है। हुई न आंशिक अज्ञानता?"

जानकीरूपा इस कथन से असहमत थी। वह बोली, "आंशिक नहीं यह पूर्ण अज्ञानता है। आपको यह तो पता है कि उस पेड़ तक कैसे जाना है, कैसे पत्थर उछालना है और कैसे बेर प्राप्त करने हैं। परंतु आपको यह नहीं पता कि रास्ते में क्या अड़चन आएगी जो आपको उस पेड़ तक पहुँचने से रोकेगी। और वैसे भी पेड़ तक जाने की और यह सब करने की आवश्यकता क्यों है? क्यों न मैं इधर बेर प्राप्त करने की इच्छा प्रकट करूँ और उधर अगले ही क्षण मेरे हाथ में बेर हों?"

उर्मी पूर्ण अज्ञानता के तर्क से पूरी तरह आश्वस्त नहीं लगी परंतु उसके पास इसके विपरीत भी कोई तर्क नहीं था। कम से कम उस पल तो नहीं। वह और जानकीरूपा शेष रास्ते चुप रहे। इससे समूह की अन्य महिलाओं ने राहत की श्वास ली जिनके लिए ज्ञान की बातें मस्तिष्क का कोलाहल मात्र थीं।

"दानव हमला।" उर्मी चिल्लाई। लकड़ी इकट्ठा करते हुए उसे लगभग आधा घंटा हो चुका था जब उसे अपनी बाहों में फड़फड़ाहट अनुभव हुई। पहले तो उसने सोचा कि उसे फड़फड़ाहट का भ्रम मात्र हुआ। परंतु जब उसकी पूरी देह झटके खाने लगी तब उसने पूरी शक्ति से अपनी समूह की दूसरी महिलाओं को पुकार लगाई जो इधर-उधर लकड़ियाँ इकट्ठा करने के कार्य में जुटी थीं। जानकीरूपा और चार अन्य महिलाएँ उसको संभालने के लिए उसके पास आईं और घटनास्थल का निरीक्षण किया। उन्होंने एक सुरक्षित जगह चुनकर वहाँ से आसपास की नुकीली चीजों को हटाया ताकि उर्मी उस दानव के साथ संघर्ष के दौरान घायल न हो। इस बीच उस दानव ने उर्मी के तन पर पूरी तरह नियंत्रण कर लिया था।

उस दानव को मिर्गी का दौरा भी कहा जा सकता है। उर्मी उससे पहली बार नहीं लड़ रही थी। बचपन से ही वह भयानक अनुभव उसके जीवन का एक नियमित भाग बन गया था। वह एक ऐसा अंधड़ था जो अचानक आता था और सदा उसके मन-मानस पर और कभी-कभी उसकी देह पर चिन्ह छोड़ जाता था।

उसके हाथ-पैर कटी पतंग की तरह फड़फड़ाए, उसका चेहरा भयानक रूप से विकृत हुआ, उसका तन आत्मा को चीर देने वाली पीड़ा से तिलमिलाया। उसकी जीभ से ऐसे शब्द निकले जैसे वह किसी पराए ग्रह की भाषा बोल रही हो। उसकी सहेलियाँ असहाय होकर दयालुता के भाव से उसे देख रही थीं।

इस दृश्य को दो अनजान पुरुष भी देख रहे थे जो वहाँ से कुछ दूर स्थित एक पेड़ के नीचे छिपे हुए थे। वे न तो मातंग समाज से थे और न ही किसी अन्य कबीले से। वे दोनों उन तीन जनों में से थे जिनको बाबा ने कुछ समय पहले अपना क्रोधी रूप दिखाया था।

जब दौरे पड़ने बंद हो गए तो उर्मी चैन से एक पेड़ के नीचे लेट गई। उसकी सहेलियाँ उसे छोड़कर अपने काम में लग गईं। उसका तन व्यथित और थका हुआ था परंतु उसके मन में थे कुछ प्रश्न, कुछ विचार और देवताओं के प्रति कुछ शिकायतें।

राक्षसों ने उसके तन के माँस और खून में ऐसा क्या स्वादिष्ट पा लिया था कि वे बार-बार आकर दावतें करते थे? और देवताओं ने उसमें ऐसी क्या कमी ढूँढ ली थी कि वे उसे राक्षसों से बचाने के लिए नहीं आते थे? जहाँ तक उसे स्मरण था उसने कभी एक चींटी को भी हानि नहीं पहुँचाई थी। तो उसे क्यों बार-बार इस असहनीय पीड़ा को झेलना पड़ता था?

उसके पास हर प्रश्न के उत्तर थे। परंतु उस क्षण में उत्तरों से अधिक प्रश्न उसके मन को एक विचित्र-सी शांति दे रहे थे। उसकी आंखों के कोनों से आँसू लुढ़कने लगे। उसने आँखें झपककर आंसू रोकने की चेष्टा नहीं की और न ही उसने अपनी बुद्धि की गहराइयों में जाकर वे उत्तर निकालने की चेष्टा की जो उसकी पीड़ा को दर्शनशास्त्र की ठंडी पोटली में डालकर शांत कर सकते थे।

उसकी यह शिकायत पूरी तरह निराधार थी कि देवता उसकी रक्षा नहीं कर रहे थे। सच यह था कि स्वास्थ्य के जुड़वाँ देवता, जिन्हें अश्विन कहा जाता है, उस समय उसके पास उपस्थित थे और उसको स्वस्थ करने का हर संभव प्रयास कर रहे थे। दौरा पड़ने का पहला चिन्ह मिलते ही वे उसकी सहायता के लिए पहुँच गए थे। उन्होंने दौरा रोकने की हरसंभव चेष्टा की थी परंतु हर बार की तरह इस बार भी विफल रहे थे।

अश्विन देवों द्वारा किसी भी रोग का निवारण करने के लिए प्रयुक्त की जाने वाली पद्धति भी अपने आप में अनोखी है। यह पद्धति इस सिद्धांत पर आधारित है कि काल-आकाश अनंत है; यदि काल-आकाश के इस बिंदु पर कोई देह अस्वस्थ है तो किसी दूसरे बिंदु पर वह देह स्वस्थ है। वे दो बिंदु अस्तित्व के दो समानांतर तलों पर भी हो सकते हैं। एक जागृत आत्मा एक तल से दूसरे तल पर कूद सकती है किंतु एक सुसुप्त आत्मा को माया इस भ्रम में रखती है कि अस्वस्थ देह वाला तल ही एकमात्र वास्तविकता है। यह भ्रम पैदा करने के लिए माया कई हथकंडे अपनाती है।

यदि कोई आत्मा एक क्षण के लिए भी माया के जबड़े से मुक्त हो जाती है तो भी वह एक तल से दूसरे तल पर कूद सकती है और स्वस्थ देह में प्रवेश कर सकती है। अश्विन

देव यही करने का प्रयास करते हैं। उनके लिए रुग्णता को ठीक करना माया के साथ युद्ध है। यदि वे जीतते हैं तो रुग्णता ठीक हो जाती है। नहीं तो, जैसा कि उर्मी के साथ हो रहा था, रुग्णता चलती रहती है।

वहाँ पर उपस्थित सभी प्राणियों के लिए अश्विन देव अदृश्य थे। उर्मी वहाँ आँखें बंद करके लेटी हुई थी। उसको भी उनकी उपस्थिति का भान नहीं था। कुछ देर पश्चात वहाँ हनुमान जी भी आ गए। मातंग होने के नाते उर्मी को कम से कम हनुमान जी की उपस्थिति तो अनुभव करनी चाहिए थी। परंतु कदाचित उसके मन में उमड़ रही व्यग्र विचारों की आंधी ने उसके और उसके चिरंजीवी गुरु के बीच एक अपारदर्शी घुंघट डाल दिया था।

हनुमान जी के आते ही दोनों अश्विन देव उर्मी के दोनों ओर खड़े हो गए। हाथ जोड़कर और सिर झुका कर खेद जताते हुए वे बोले, "हनुमान जी, हमें पता है कि मातंग आपको बहुत प्रिय हैं। आप उनको पीड़ा में नहीं देख सकते। परंतु उर्मी के विषय में हम लाचार हैं। हमने अपना पूरा ज्ञान और विशेषज्ञता झोंक डाली है परंतु अब तक हम माया का वह हथकंडा नहीं पहचान पाए हैं जो उर्मी की आत्मा पर पकड़ बनाए हुए है।"

उर्मी भूमि पर कुछ इस तरह लेटी हुई थी की सूर्य की किरणें पेड़ के पत्तों से छन-छनकर उसके चेहरे पर गिर रही थीं। जो चेहरा मिर्गी के दौरे के कारण फीका पड़ गया था उसके ऊपर सूर्य की किरणें एक विचित्र जगमगाहट पैदा कर रही थीं। हनुमान जी उर्मी के पैरों की ओर खड़े थे। वे उसके चेहरे पर दिव्य दृष्टि डालते हुए उसके सिर की ओर बढ़े और वहाँ पर पड़े एक पत्थर पर विराजमान हो गए। (वह पत्थर पहले वहाँ नहीं था; अचानक प्रकट हुआ था।) अश्विन भी उर्मी के दोनों ओर बैठ गए।

महाबली हनुमान का स्वर जो बड़े-बड़े राक्षसों में कंपन पैदा कर देता है, यहाँ पर इतना मंद था जैसे वे किसी बच्चे को लोरी सुना रहे हों। उर्मी तो उनका स्वर सुन भी नहीं सकती थी। तो फिर वे क्यों इतने मंद स्वर में बोल रहे थे? कदाचित उनके शब्दों की आवृत्ति उर्मी की आत्मा तक पहुँच रही थी परंतु शब्द अश्विन देवों के लिए निकले थे। वे कह रहे थे, "हे अश्विन देवो, मैं जानता हूँ कि माया उर्मी की आत्मा को भ्रम में रखने के लिए कौन सा हथकंडा अपना रही है। मेरे पास एक योजना है। चलो उस पर कार्य करते हैं।"

हनुमान जी की योजना का एक भाग था उर्मी को उसके पिछले जन्म का एक घटनाक्रम स्मरण कराना। भूले हुए अतीत और अनदेखे भविष्य की सूचना का रोपण किसी आत्मा की यात्रा पर एक लंबा प्रभाव डाल सकता है। इसलिए जो महात्मा यह रोपण करते हैं वे पहले आत्मा को इसके लिए तैयार करते हैं। आत्मा को कर्म, इच्छा, काल-आकाश, माया आदि के बारे में ज्ञान देना उसी तैयारी में आता है।

हनुमान जी ने अपनी आँखें बंद की। अश्विन देवों ने अपने हाथ मिलाकर एक कमल की आकृति बनाई और उस आकृति को उर्मी की नाभि के ऊपर हवा में स्थित किया। ऐसा लग रहा था मानो वह कमल उर्मी की नाभि में उगा हुआ था और उसकी डंठल अदृश्य थी। हनुमान जी ने बोलना शुरू किया परंतु उनके शब्द हवा में नहीं तैरे। केवल उनके होंठ हिल रहे थे और उनके शब्द सीधे उर्मी के मस्तिष्क में उतर रहे थे। अवर्णीय का वर्णन करने वाले शब्द गुरु से सीधे शिष्य के मन में उतरते हैं, हवा में नहीं तैरते -

मेरी बच्ची आप थकी हुई हो। चलो मैं आपके मस्तिष्क को इस विश्व के रहस्यों के ज्ञान का भोजन करवाता हूँ। यह एक ऐसा भोजन है जो औषधि लेने से पहले करना आवश्यक होता है।

आपके लिए यह ब्रह्मांड एक अनंत विस्तार है जिसमें सितारे, ग्रह और अन्य खगोलीय पिंड समाए हुए हैं। क्या आपने कभी विचार किया है कि यह ब्रह्मांड उसके लिए कैसा प्रतीत होगा जो काल-आकाश से बंधा हुआ नहीं है?

मैं जब चाहूँ काल-आकाश के बंधन से मुक्त हो सकता हूँ। जैसे ही मैं काल की सीमाओं के बाहर जाता हूँ तो कुछ भी रहस्य नहीं रहता। जो कुछ भी हो चुका है, जो हो रहा है, और जो होने वाला है, सब रहस्य के डिब्बे से बाहर निकल आता है। अतीत, वर्तमान और भविष्य जैसे शब्द अर्थ खो देते हैं। 'हो चुका है' , 'हो रहा है' और 'होने वाला है' आदि वाक्यांशों का भी कोई अर्थ नहीं रह जाता। ऐसा लगता है जैसे सब कुछ पहले ही हो चुका है। मैं ब्रह्मांड की कोई भी घटना कभी भी अपनी इच्छा से देख सकता हूँ, चाहे वह घटना वर्तमान क्षण के अतीत में हो अथवा भविष्य में।

तनिक कल्पना करो कि जो भी दृश्य पिछले लाखों वर्षों में हो चुके हैं या अगले लाखों वर्षों में होने वाले हैं उन सबको इकट्ठा देखा जाए तो हमें क्या दिखाई देगा?

यह ब्रह्मांड समय के धागों और आकाश के द्रव से प्रकट हुआ है। यदि काल-आकाश से बाहर निकलकर देखा जाए तो यह ब्रह्मांड एक शांत और चमकदार श्वेत गोले की तरह दिखाई देगा।

पीले रंग के धागों से एक खाँचा बुनो, उस खाँचे की बुनाई ऐसी हो जैसे मकड़ी के जाले की होती है। और तत्पश्चात उस खाँचे में एक श्वेत रंग का द्रव भर दो। जैसे मकान बनाते समय लोहे के खाँचों में रोड़ा भरा जाता है वैसे ही समय के पीले खाँचों में आकाश का श्वेत द्रव भरा हुआ है।

आप काल-आकाश के जाल में फँसी हुई हो। आपके लिए यह ब्रह्मांड वस्तुओं से बना हुआ है। आप उन वस्तुओं को छोटा-बड़ा, जीव-निर्जीव आदि वर्गों में विभाजित करती हो। परंतु काल-आकाश के जाल से स्वतंत्र आत्मा के लिए यह ब्रह्मांड दृश्यों से बना दिखाई देता है। ऐसी आत्मा किसी भी दृश्य को चुनकर ऐसे जी सकती है जैसे वह दृश्य उसके साथ ही घटित हो रहा है।

कुछ क्षण के लिए आप अपनी 'उर्मी' नामक पहचान को त्याग दो। मान लो कि आप काल-आकाश से बाहर निकल गई हो। आपकी कोई पहचान नहीं है, कोई मन नहीं है, कोई स्मृतियाँ नहीं है। आप कुछ भी नहीं हो क्योंकि यदि आप कुछ होती तो काल-आकाश के भीतर होती, बाहर नहीं। यदि कुछ न होना अर्थात शून्यता की कल्पना करना कठिन है तो कल्पना करो कि आप प्रकाश का एक बिंदु मात्र हो।

मैं देख रहा हूँ कि आप अब भी 'उर्मी' नामक पहचान से जुड़ी हुई हो। उसे छोड़ दो। आप शून्य हो!

आप प्रकाश की एक बिंदु मात्र हो और आप काल-आकाश के गोले में प्रवेश के लिए तैयार हो। वहाँ पर अनगिनत दृश्य घटित हो रहे हैं। आप ये भी कह सकते हो कि वहाँ पर अनगिनत दृश्य घटित हो चुके हैं। उन दृश्यों में से आप एक दृश्य जीने के लिए काल-आकाश के गोले में प्रवेश कर रही हो।

मान लो कि आप इस दृश्य को जीना चाहती हो - वैभव नाम का एक युवा पुरुष एक जंगल में स्वादिष्ट आम खा रहा है। धरती पर लाल फूलों की कालीन बिछी हुई है। चहकते पक्षियों की मधुर ध्वनि एक सुखदायक वातावरण बना रही है। पके हुए फलों और फूलों की सुगंध हवा में व्याप्त है।

काल-आकाश के एक विशेष बिंदु पर यह एक विशेष दृश्य घटित हो रहा है। वैभव इस दृश्य के केंद्र में है। (जंगल के उसी भाग को एक वानर भी अनुभव कर रहा है जो उसी पेड़ के ऊपर बैठा है जिस पेड़ के नीचे वैभव बैठा है। परंतु वानर इसको अलग तरह से अनुभव कर रहा है। वानर के दृष्टिकोण से घटित हो रहा दृश्य वैभव के दृश्य से अलग माना जाएगा क्योंकि उस दृश्य के काल-आकाश के निर्देशांक थोड़े-से भिन्न हैं।)

हे उर्मी! जाओ मैं आपको काल-आकाश के उस बिंदु पर भेजता हूँ जहाँ पर वैभव का दृश्य हो रहा है। जाओ और उसे जीना प्रारम्भ करो।

आप कहती हो, "हे देव! एक दर्शक उस मंच पर नहीं जाता जहाँ पर दृश्य घटित हो रहा है। यदि मैं इस दृश्य के भीतर जाऊंगी तो यह दृश्य परिवर्तित हो जाएगा। मैं दृश्य के

भीतर एक और किरदार के रूप में शामिल नहीं होना चाहती। मैं इसे ज्यों का त्यों जीना चाहती हूँ।"

आप शून्य हो। आपके जुड़ने से इस दृश्य में कोई अंतर नहीं पड़ेगा।

आप कहती हो, "मैं प्रकाश का एक बिंदु मात्र हूँ; मैं काल-आकाश के इस गोले के बाहर तैर रही हूँ। यह दृश्य पता नहीं इस गोले में कितना भीतर घटित हो रहा हो। वहाँ तक जाने के लिए कदाचित मुझे करोड़ों मील की दूरी तय करनी पड़ेगी जिसमें कदाचित अरबों वर्षों का समय लगे।”

यदि आप शून्य सुरंगों के रास्ते जाओगी तो आपको न तो समय के धागों को छूना पड़ेगा और न ही आकाश के द्रव को। अर्थात आप काल-आकाश के इस गोले के किसी भी बिंदु पर बिना कोई समय लिए पहुँच सकती हो।

आप पूछती हो, "यह कैसे संभव है, देव? इस गोले में सुरंग कहाँ है? समय के धागों से बना यह खाँचा आकाश के द्रव से पूरी तरह भरा हुआ है। मुझे तो इसमें कोई सुरंग नहीं दिखाई दे रही।"

हाँ, इसमें सुरंग है। अपितु सुरंगों की एक भूलभुलैया है।

एक तार की कल्पना करो जो एक खूंटी से दूसरी खूंटी तक बंधा हुआ है। उसके ऊपर पानी डालोगे तो वह तार पानी से भीग जाएगा। परंतु यदि उसके ऊपर आप एक ऐसा द्रव डालो जिसका वह तार प्रतिरोध करता है तो वह द्रव तार को नहीं छू पायेगा। तार और उस द्रव के बीच एक थोड़ा-सा रिक्त स्थान रह जाएगा। चाहे आप उस तार को कितना भी उस द्रव में डूबाओ, वह तार द्रव को नहीं छूएगा। तार और द्रव के बीच सदा रिक्त स्थान रहेगा।

समय के तारों और आकाश के द्रव के बीच भी ऐसा ही कुछ होता है। समय के तार एक ऐसा प्रतिरोधी बल पैदा करते हैं जो आकाश के द्रव को समय के तारों के साथ छूने नहीं देता। अब आप ही कल्पना करो कि समय के तारों से बने खांचे में जब आकाश का द्रव डाला जाता है तब जो रिक्त स्थान रह जाता है उसे क्या कहेंगे?

यदि समय का तार केवल एक होता और आकाश के द्रव में डूबा होता तो उस प्रतिरोधी बल के कारण एक बेलनाकार सुरंग पैदा होती। परंतु समय के तार अनगिनत हैं जो मकड़ी के जाले की ओर फैले हुए हैं। इसलिए जो सुरंगे पैदा होती हैं वे भिन्न-भिन्न आकारों की होती हैं। सुरंगों की एक भूलभुलैया बन जाती है।

क्योंकि इन सुरंगों में आकाश का द्रव नहीं है इसलिए आकाश की शून्यता है। परंतु समय के तार इन सुरंगों के बीचों-बीच से होकर गुजरते हैं। टेढ़े-मेढ़े आकारों की सुरंगों की धुरी की कल्पना करो। उस धुरी में से होकर समय के तार गुजरते हैं। यदि आप उन तारों को न छूओ तो आपको समय की शून्यता भी अनुभव हो सकती है। इस तरह आप काल-आकाश दोनों से मुक्त रह सकती हो।

कल्पना करो कि आप प्रकाश के एक बिंदु के रूप में एक बेतरतीब आकार की शून्य सुरंग में तैर रही हो। उस सुरंग की दीवारें आकाश के द्रव से बनी हुई है। उस सुरंग के बीचों-बीच जो समय के तार लटके हुए हैं आप उन्हें छुए बिना आगे बढ़ रही हो। कुछ दूरी के पश्चात आप देखती हो कि वह सुरंग कई अन्य सुरंगों में बँट जाती है जो विभिन्न दिशाओं में जाती हैं। आप उनमें से एक सुरंग चुनती हो और आगे बढ़ती हो। कुछ दूरी के पश्चात आपको पुनः एक संगम मिलता है जहाँ से कई दिशाओं में कई सुरंगे जा रही हैं। आप पुनः उनमें से एक सुरंग चुनती हो और आगे बढ़ती हो परंतु आगे आपको रास्ता बंद मिलता है। आप मुड़कर पुनः संगम पर आती हो और वहाँ से एक दूसरी सुरंग चुनती हो और आगे बढ़ती हो। क्या आप सुरंगों की भूलभुलैया की कल्पना कर पा रही हो?

हर सुरंग में काल-आकाश का एक अलग दृश्य प्रदर्शित हो रहा है।

आप कहती हो, "जैसा कि मैं कल्पना कर पा रही हूँ, यह ब्रह्मांड काल-आकाश से बना एक मंच है जिस पर यह महान नाटक चल रहा है और ये शून्य सुरंगे दर्शकों के लिए बने वे गलियारे हैं जहाँ से उस नाटक के दृश्य देखे जा सकते हैं। उदाहरण के तौर पर, इनमें से एक सुरंग ऐसी है जहाँ से वैभव द्वारा आम खाने का वह दृश्य दिखाई देता है।"

आप न केवल इस दृश्य को तीन आयामों में देख सकती हो अपितु इस दृश्य की आवाजें, गंध और स्पर्श को भी अनुभव कर सकती हो। आप इस दृश्य को ऐसे जी सकती हो जैसे आप वैभव हो।

मैं आपको उस सुरंग में भेजता हूँ जहाँ से उस दृश्य की जीवंत तस्वीरें उपलब्ध है।

आप वहाँ पहुँचती हो परंतु आपको कुछ दिखाई नहीं देता है। सुरंग की जिन दीवारों पर आपको वैभव द्वारा आम खाने का वह दृश्य दिखाई देना चाहिए था वे दीवारें रिक्त हैं। वे दीवारें एक बेलनाकार श्वेत पटल की तरह लग रही हैं।

आप पूछती हो, “क्या गड़बड़ है? इस पटल पर कुछ दिखाई क्यों नहीं दे रहा?”

यदि उस श्वेत पटल पर एक आम का चित्र होता भी तो क्या आप उसे देख पाती? आप शून्य हो। आपको कुछ नहीं पता कि आम कैसा दिखता है और कैसी गंध देता है।

आपके पास वह अनुभव नहीं है जो अनुभव किसी को विभिन्न पदार्थों में अंतर करना सिखाते हैं। उन अनुभवों के बिना आप सजीव और निर्जीव, गतिमान और अगतिमान, छोटा और बड़ा, कोमल और कठोर, काला और श्वेत, अँधेरा और प्रकाश, गोल और चकोर, वस्तु और अवस्तु आदि में भेद नहीं कर सकतीं। जो दृश्य आप जीना चाहती हो वह बिल्कुल आपके सामने घटित हो रहा है। परंतु आपके पास उस दृश्य को जीने के लिए आवश्यक अनुभव नहीं हैं।

आप पूछती हो, “हे देव, जिन अनुभवों की आप बात कर रहे हैं उन अनुभवों को अर्जित करने के लिए वैभव नामक किरदार को पूरा जीवन लगा है। क्या इसका यह अर्थ है कि इस एक दृश्य को जीने के लिए मुझे पहले वैभव के जीवन के सभी दृश्य जीने होंगे? इस जीवन के ही क्यों, कदाचित उसके पिछले जन्मों के दृश्य भी जीने होंगें?”

इसका अर्थ यह तो निश्चित है कि जो दृश्य आप जीना चाहती हो वह कई अन्य दृश्यों पर निर्भर करता है।

दृश्य 1 - वैभव गोविंदवाड़ी नामक एक गाँव से अपनी यात्रा शुरू करता है और सूरज ढलने से पहले अपने गंतव्य तक पहुँचने की इच्छा रखता है।

दृश्य 2 - उसके रथ का पहिया जंगल से गुजरते समय कीचड़ में फँस जाता है।

दृश्य 3 - पहिए को कीचड़ से निकालने के प्रयास में वह थक जाता है और विश्राम करने का निर्णय लेता है। अब उसे सूरज ढलने से पहले गंतव्य तक पहुँचना असंभव लगता है।

दृश्य 4 - वह समीप ही आम के कई पेड़ देखता है और उसे आम खाने की इच्छा होती है।

दृश्य 5 - वह आम खा रहा है।

आप दृश्य 5 को जीना चाहती हो परंतु यह दृश्य कई अन्य दृश्यों पर निर्भर करता है। उदाहरणतः यदि उसके रथ का पहिया कीचड़ में न फँसा होता तो उसे आम के पेड़ दिखाई ही नहीं देते। दृश्य 1, 2, 3 और 4 के बिना दृश्य 5 में वह विशिष्ट अनुभूति नहीं आई होती जो उसे भाग्य से मिले इस स्थान पर आम खाकर अपनी थकान मिटाने में आ रही है।

दृश्य 6 - वैभव सूरज ढलने से पहले अपने गंतव्य तक पहुँच गया है।

वैभव सूरज ढलने से पहले अपने गंतव्य तक नहीं पहुँच सका। दृश्य 6 वास्तविकता में नहीं बदल सका। वैभव इस दृश्य को नहीं जी सका। यात्रा शुरू करने से पहले उसने इस

दृश्य की कल्पना भर की थी। यदि आप किसी दृश्य की कल्पना कर सकती हो तो वह दृश्य काल-आकाश के किसी न किसी बिंदु पर वास्तव में घटित हो रहा है। आप उस दृश्य को जी पाती हो या नहीं वह दूसरी बात है।

जब आप एक दृश्य को जीती हो तो आप एक अनुभव अर्जित करती हो। जब आप एक दृश्य को जीने की इच्छा रखती हो परंतु नहीं जी पाती हो, तब भी आप एक अनुभव अर्जित करती हो।

अनुभव क्या होता है और कहाँ संग्रहित होता है? आप एक अनुभव की कल्पना एक प्रकाश की छोटी पोटली के रूप में कर सकती हो। हर प्रकाश की पोटली अपने आप में विशिष्ट है क्योंकि उस पोटली के भीतर उस अनुभव की विशिष्ट सूचना भरी हुई है। तो भी हम प्रकाश की पोटलियों को दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं - लाल पोटलियाँ और हरी पोटलियाँ।

जब आप एक दृश्य को जीती हो तो आप हरी पोटली अर्जित करती हो जिसे 'कर्म' कहते हैं। आप जब किसी दृश्य को जीने की इच्छा रखती हो, अर्थात यह प्रार्थना, कल्पना, आशा अथवा विचार रखती हो कि वह दृश्य आप जी सको, तो आपको लाल रंग की पोटली प्राप्त होती है जिसे 'इच्छा' कहते हैं। जब इच्छा फलित हो जाती है तो कर्म में बदल जाती है। अर्थात लाल पोटली हरे रंग की पोटली में बदल जाती है।

वैभव ने अतीत में बहुत सारे दृश्य जिए हैं और बहुत सारे दृश्यों को जीने की अधूरी इच्छा की है। वैभव इस दृश्य में जो कुछ भी है वह अतीत के उन सब दृश्यों से प्राप्त अनुभवों अर्थात कर्म और इच्छा के कारण है। अर्थात किसी भी किरदार की विशिष्ट पहचान उसके पिछले कर्मों और इच्छाओं से बनती है।

वैभव के कर्म और इच्छाएँ उसके जन्म से ही नहीं उसके जन्म से पहले से ही जुड़ती आ रही हैं। उदाहरण के तौर पर, एक दृश्य है जिसमें वह एक बच्चा है और आम शब्द पहली बार सीख रहा है; एक दूसरा दृश्य है जिसमें वह पहली बार आम चख रहा है; एक तीसरा दृश्य है जिसमें वह रथ चलाना सीख रहा है आदि आदि। आज उसका जो भी व्यक्तित्व है, इन दृश्यों से प्राप्त अनुभवों के कारण है।

उसके जन्म के समय भी उसका एक विशिष्ट व्यक्तित्व था - एक विशिष्ट देह और एक विशिष्ट परिवार। वह सब कहाँ से आया? उसके पिछले जन्मों के अनुभवों से। उन कर्म व इच्छाओं से जो उसने जन्म और मरण के चक्र में घूमते हुए अर्जित किए। वैभव द्वारा आम खाने का दृश्य साधारण दृश्य लगता है परंतु इस दृश्य में सहस्त्रों वर्षों के दृश्यों से अर्जित अनुभव, अर्थात कर्म और इच्छाएँ, समाहित हैं।

आप कहती हो, “हे देव मैं भी तो यही कह रही थी। यह साधारण दृश्य जीने के लिए मुझे उसके वर्तमान जीवन और उसके पिछले जन्मों के अनगिनत दृश्यों से अनुभव इकट्ठा करने पड़ेंगे। उसकी आत्मा ने सहस्त्रों वर्षों में जो हरे और लाल रंग के प्रकाश की पोटलियाँ इकट्ठा की हैं वे सब मुझे चाहिए इस दृश्य को जीने के लिए।”

दृश्य पहले ही घटित हो चुके हैं। अनुभव पहले ही लिए जा चुके हैं। कर्म और इच्छाओं की प्रकाश पोटलियाँ जो इस दृश्य को जीने के लिए आपको चाहिए वे उस शून्य सुरंग में पहले से ही उपलब्ध हैं जहाँ से यह दृश्य देखा और जिया जा सकता है। हाँ, जिस शून्य सुरंग में आप इस समय यह दृश्य जीने के लिए उपस्थित हो उस सुरंग में इस दृश्य के लिए आवश्यक सभी कर्म और इच्छाओं की प्रकाश पोटलियाँ उपस्थित हैं।

आप पूछती हो, “तो मैं यह दृश्य क्यों नहीं जी पा रही हूँ, देव? इस शून्य सुरंग की दीवारें खाली पटल जैसी क्यों है?”

आप शून्य हो। इस दृश्य को जीने के लिए आपको कुछ बनना पड़ेगा। आपको एक पहचान धारण करनी पड़ेगी। आपको कर्म और इच्छाओं से बना एक परिधान पहनना पड़ेगा।

“परंतु कैसे, देव?”

इस सुरंग के बीचों-बीच जो समय के तार लटक रहे हैं उन पर सवार हो जाओ। इच्छा और कर्मों की प्रकाश पोटलियाँ आपके ऊपर स्वतः आकर लद जाएंगी। इस तरह आपको एक प्रकाश की देह प्राप्त होगी जिसे लिंग कहा जाता है। उस लिंग की ज्योति जब इस सुरंग की दीवारों पर पड़ेगी तो आपको वह दृश्य दिखेगा जिसे देखने के लिए आप इस सुरंग में आई हो।

“केवल दिखेगा? एक दर्शक की तरह? मैं दृश्य को जीना चाहती हूँ देव।” आप दोहराती हो।

शून्य सुरंगों की यह व्यवस्था आपको किसी भी दृश्य को तीनों आयामों में दिखाती है। इतना ही नहीं, इस व्यवस्था के माध्यम से आप दृश्य की सभी अनुभूतियों को प्राप्त कर सकती हो। जब प्रकाश की देह अर्थात लिंग शून्य सुरंगों की दीवारों पर ज्योति डालता है तो दृश्य जीवंत हो उठता है और आप समय के तारों पर फिसलने लगती हो। जब आप इन तारों के माध्यम से पूरी सुरंग पार कर लेती हो तब वह दृश्य आपके लिए समाप्त हो जाता है और आप इससे बाहर निकल सकती हो। आपको समय का व्यतीत होना अनुभव होगा, आमों के रस का स्वाद अनुभव होगा, जंगल की सभी गंधें और आवाजें आप अनुभव कर

सकोगी। आपको हर वह अनुभूति होगी जो इस दृश्य के भीतर है। संक्षेप में कहें तो समय के तारों पर सवार होते ही आप शून्य नहीं रहोगी, आप वैभव की पहचान धारण कर लोगी। आप इस दृश्य को ऐसे जिओगी जैसे आप वैभव हो।

ध्यान रहे, आप दृश्य की रचनाकार नहीं हो। यदि आप यहाँ पर इस दृश्य को देखने और अनुभव करने और जीने के लिए उपस्थित नहीं होती तो भी यह दृश्य घटित हो रहा होता। आप केवल साक्षी हो। आप इस सुरंग में इस दृश्य को जीने आई हो। वैभव उस किरदार का नाम है जिसको जीने के लिए आप यहाँ आई हो।

जब यह दृश्य समाप्त होता है तो आपके पास विकल्प है कि या तो आप समय के तारों से नीचे उतरकर अपनी शून्य अवस्था में पुनः लौट सकती हो या तारों पर सवार होकर अगले दृश्य में प्रवेश कर सकती हो। कटु सत्य यह है कि समय के तारों पर चढ़ना सरल है परंतु उतरना कठिन। हो सकता है कि आप एक दृश्य को जीने के लिए समय के तारों पर चढ़ो और करोड़ों दृश्य जीने के पश्चात उतर पाओ।

समय के तारों पर चढ़ने और उतरने के बीच की आपकी यात्रा को ‘आत्मा’ का नाम दिया जाएगा। चाहे आप कितने भी दृश्य जियो और कितना भी समय समय के तारों पर बिताओ, वह केवल एक आत्मा की यात्रा मानी जाएगी। आप दृश्य 5 को जीने के लिए समय के तारों पर चढ़ो और तत्पश्चात उतर न पाओ तो कदाचित वैभव के जीवन के सहस्त्रों दृश्यों को जीती रहोगी और तत्पश्चात भास्कर नामक किरदार के दृश्यों को जिओगी और आगे ऐसे ही यह यात्रा चलती रहेगी। जब तक आप समय के तारों से नहीं उतर जाती आपकी गिनती केवल एक आत्मा के रूप में होगी।

आत्मा को हम प्रायः उसके किरदारों के नाम से जानते हैं। वैभव की आत्मा और भास्कर की आत्मा एक ही आत्मा होगी यदि वह यात्रा के दौरान एक बार भी समय के तारों से नहीं उतरी है।

मान लो कि आप ‘दृश्य 5’ को जीने के पश्चात तुरंत समय के तारों से उतर जाती हो और तत्पश्चात शून्य सुरंगों से होते हुए 'दृश्य क' में पहुँचती हो जो उसी किरदार अर्थात वैभव के जीवन का ही एक दृश्य है। जिस आत्मा ने ‘दृश्य 5’ जिया और जिस आत्मा ने 'दृश्य क' जिया दोनों अलग-अलग आत्माएँ कहलाएंगी।

आप कहती हो, “हे देव, आत्मा की परिभाषा बताने के लिए मैं आपके प्रति कृतज्ञ हूँ परंतु इस समय मेरी रुचि यह जानने में अधिक है कि एक बार समय के तारों पर चढ़ने के पश्चात उनसे उतरना कठिन क्यों हो जाता है?”

यह समझने के लिए आपको इस ब्रह्मांड को दो भागों में देखना होगा - आंतरिक संसार और बाहरी संसार।

आंतरिक संसार शून्य सुरंगों की वह भूलभुलैया है जिसमें लाल और हरे रंग की प्रकाश पोटलियाँ (कर्म और इच्छाएं) हैं, समय के तार हैं जो सुरंगों के बीचों-बीच होकर गुजरते हैं, आकाश का द्रव है जो इन सुरंगों की श्वेत पटल जैसी वह दीवार बनाता है जिस पर दृश्य दिखाई देते हैं। आप अर्थात शून्य जैसे ही समय के तारों पर सवार होते हो लाल और हरे रंग की प्रकाश पोटलियाँ आपके ऊपर लद जाती हैं और आपको प्रकाश की एक देह प्राप्त होती है। तत्पश्चात आप काल के तारों पर फिसलते हुए दृश्य को जीते हो।

बाहरी संसार वह संसार है जिसमें दृश्यों के किरदार उपस्थित हैं। सभी दृश्य वहाँ पर पहले ही घटित हो चुके हैं। उनमें परिवर्तन की कोई संभावना नहीं है। हाँ, आप जिस भी दृश्य की कल्पना करोगी वही दृश्य कहीं ना कहीं बाहरी संसार में पहले से ही उपस्थित है। किसी दृश्य को बदलने की कोई आवश्यकता नहीं है। जो भी परिवर्तन आप किसी दृश्य में लाने की इच्छा रखती हो वह परिवर्तन किसी दूसरे दृश्य में पहले से ही हो रखा है।

चलो वैभव का उदाहरण लेते हैं। आम खाने के पश्चात वह हाथ धोने की इच्छा रखता है। वह अपने फँसे हुए रथ के पास जाता है और पाता है कि पानी का बर्तन खाली है। दृश्य कुछ इस तरह से हैं -

दृश्य 7 - वह ‘दृश्य 8’ की कल्पना करता है और उसे जीने की इच्छा रखता है।

दृश्य 8 - उसके हाथ जो आम खाने से चिपचिपे हो गए थे अब धुले हुए हैं और वह नूतन अनुभव कर रहा है।

दृश्य 9 - हाथ धोने की इच्छा से वह अपने रथ की ओर बढ़ रहा है।

दृश्य 10 - वह अपने रथ पर पहुँच गया है परंतु वहाँ पर वह पाता है कि पानी के बर्तन में एक बूंद भी पानी नहीं है।

दृश्य 11 - उसकी हाथ धोने की इच्छा पानी न होने के कारण अपूर्ण है इसलिए वह चिड़चिड़ा अनुभव कर रहा है।

उसने दृश्य 8 जीने की इच्छा की थी परंतु वह जी बैठा दृश्य 11! ऐसा क्यों होता है? आप इच्छा करते हो कुछ परंतु आपको जीने के लिए मिलता है कुछ और? इतना ही नहीं आप कुछ ऐसा जी लेते हो जो अनावश्यक है। उदाहरण के लिए दृश्य 9 और दृश्य 10। आपको रथ तक चलकर जाने और पानी प्राप्त करने की आवश्यकता क्यों है? यदि आपको

इस क्षण हाथ धोने की इच्छा होती है तो दूसरे ही क्षण आपके हाथ धुल जाने चाहिए। आपको इस इच्छा को पूरा करने के लिए कुछ और करने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए।

दृश्य 8 और दृश्य 11, दोनों दृश्य काल-आकाश में कहीं न कहीं घटित हो रहे हैं। आप कौन सा दृश्य जीना चाहती हो उसी को चुन सकती हो। या आप दोनों को भी जी सकती हो। दोनों दृश्यों के लिए दो अलग-अलग शून्य सुरंगे हैं जहाँ से आप ये दृश्य जी सकती हो। आप शून्य हो और शून्य सुरंगों में न तो समय है (यदि आप समय के तारों को न छुओ) और न ही आकाश है। आप सहस्त्रों मीलो की दूरी बिना किसी प्रयास के और लाखों वर्ष बिना किसी समय लिए तय कर सकते हो। बिना किसी प्रयास के और बिना कोई समय लिए आप उस शून्य सुरंग में जा सकती हो जहाँ से दृश्य 8 जीया जा सकता है। वहाँ जाकर आप समय के तारों पर पुनः सवार हो सकती हो और वह दृश्य जी सकती हो।

समस्या पैदा करता है इन शून्य सुरंगों का टेढ़ा-मेढ़ा और अनियमित आकार। मान लो कि आप उस सुरंग में हो जहाँ से दृश्य 7 जिया जा सकता है - सुरंग 7। आप उस दृश्य को जी रही हो। आपने कर्म और इच्छाओं की प्रकाश पोटलियों के एक विशेष संयोजन को अपने ऊपर लाद लिया है। अर्थात आपके पास अब एक प्रकाश की देह है जिसका एक विशिष्ट आकार है।

मान लो कि अब आप उस सुरंग में जाना चाहती हो जिसमें दृश्य 8 चल रहा है - सुरंग 8। उस सुरंग का एक विशेष आकार है। आपकी जो प्रकाश की देह सुरंग 7 में है वह सुरंग 8 में कदाचित न घुस सके। आपको वह देह घुसाने की आवश्यकता भी नहीं है। आप सुरंग 7 की देह वहीं पर छोड़कर शून्य बन सकती हो और तत्पश्चात सुरंग 8 में बिना समय लिए जा सकती हो और वहाँ पर प्रकाश की एक नई देह धारण कर सकती हो जो दृश्य 8 को जीने के लिए चाहिए। सुरंग 8 में जैसे ही आप समय के तारों पर सवार हो जाओगी वैसे ही वहाँ पर उपस्थित कर्म और इच्छाओं की प्रकाश पोटलियाँ अपने आप आपके ऊपर लद जाएंगी और आपको प्रकाश की एक देह प्रदान कर देंगी।

यदि हर दृश्य को जीने के पश्चात आप पुनः शून्य बन सकती हो तो आप एक साधारण आत्मा नहीं हो, आप एक देवात्मा हो।

साधारण आत्माएँ अपनी प्रकाश की देह के साथ इतना आसक्त हो जाती हैं कि उसे छोड़ नहीं पातीं। साधारण आत्माएँ उन कर्मों की पोटलियों का त्याग नहीं कर सकतीं जिनसे उनको एक पहचान प्रदान हुई है, एक देह प्रदान हुई है। एक साधारण आत्मा के

रूप में आप कहती हो, “मैं सुरंग 8 में जाना चाहती हूँ परंतु मेरे पास इस समय जो कर्म और इच्छाओं की पोटलियाँ हैं उनको नहीं छोड़ना चाहती।”

परिणाम? आपकी वर्तमान देह सुरंग 8 में नहीं घुस सकती। परंतु समय के तारों पर फिसलते-फिसलते आपकी देह कहीं तो जाएगी। इसलिए आप सुरंग 8 में घुसने की बजाय सुरंग 11 में घुस जाती हो। आप देखती हो कि आपके रथ में रखे बर्तन में पानी की एक बूंद तक नहीं है। आपकी हाथ धोने की इच्छा अपूर्ण रह जाती है।

एक साधारण आत्मा जैसे ही किसी दृश्य को जीना शुरू करती है, आंतरिक संसार को भूल जाती है और बाहरी संसार से आसक्त हो जाती है। उसे यह अनुभव होता है की वह समय के तारों से चिपक गई है और उसके पास समय के साथ साथ एक दृश्य से दूसरे दृश्य में घिसटते चले जाने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। बाहरी संसार एक महाकाय प्रलोभिका की तरह है जिसके पास आपको आसक्ति में डालने के लिए अनगिनत हथकंडे हैं।

आपने वैभव द्वारा रसीले आम खाने का दृश्य जिया। तो आपको अगला दृश्य जीने की क्या आवश्यकता है? अगला दृश्य अर्थात वैभव द्वारा हाथ धोने की इच्छा रखना। आपको ऐसा लगता है कि आपको वैभव का किरदार जीते रहना पड़ेगा नहीं तो वह मर जाएगा। आपको ऐसा लगता है कि आप ही वैभव हो। आपको ऐसा क्यों लगता है? अतीत के अनुभवों के कारण। आपको लगता है कि आप वैभव के रूप में ही जन्मे थे। आपके पास वैभव के जीवन की स्मृतियाँ हैं। आपका एक परिवार है जो आप पर निर्भर है। आपको सूर्य अस्त होने से पहले घर पहुँचना है। आपका रथ कीचड़ में फँस गया है आदि आदि।

आप यह भूल जाती हो कि आप शून्य हो और आप केवल एक दृश्य जीने के लिए यहाँ आई हो। वे सभी अतीत के अनुभव आपके कैसे हो सकते हैं? आपने कुछ ही क्षण पहले इस दृश्य को जीने के लिए वे अनुभव अपने ऊपर लादे हैं। किस रूप में? लाल और रंग की प्रकाश पोटलियों के रूप में जिन्हें कर्म और इच्छा कहा जाता है। यदि आप इन पोटलियों का त्याग कर देती हो तो आपकी वैभव के साथ कोई आसक्ति नहीं रहेगी और ना ही बाहरी संसार के साथ। आप शून्य अवस्था में पुनः लौट जाओगी परंतु वैभव के जीवन के दृश्य आपके बिना भी चलते रहेंगे। जब आप वहाँ पर नहीं रहोगी तो कोई अन्य आत्मा उन दृश्यों को जियेगी। वैभव के बारे में चिंता करना आपका काम नहीं है। जो भी उसके साथ होने वाला है वह पहले से ही हो चुका है।

आपके पास किसी भी दृश्य को जीने की स्वेच्छा है परंतु उसको बदलने अथवा उसकी रचना करने की नहीं। इस ज्ञान के अभाव में आप यह मानने लगती हो कि आप ही कर्ता हो और आप ही रचयिता। यद्यपि यह बुरी बात नहीं है। जब आप दृश्य को जी रही हो तो आपको यह अनुभव होना चाहिए कि आप ही कर्ता हो। इससे आपके अनुभव में वास्तविकता आती है। परंतु जैसे ही दृश्य समाप्त होता है तो परमज्ञान के सहारे आपको दृश्य से बाहर आ जाना चाहिए। आपको समय के तारों से नीचे उतर जाना चाहिए।

एक साधारण आत्मा किसी दृश्य को जीने के पश्चात समय के तारों से नीचे नहीं उतर सकती। एक साधारण आत्मा दृश्य की समाप्ति पर अपनी प्रकाश की देह को पूरी तरह नहीं त्याग सकती। परंतु कोई भी आत्मा अपनी प्रकाश की देह को इतना लचीला तो बना सकती है कि वह जो दृश्य चाहे उसे जीने के लिए किसी भी सुरंग में घुस सके। उदाहरण के तौर पर आपकी आत्मा इस समय उर्मी नामक किरदार के जीवन के दृश्यों को जी रही है। इस समय आपके किरदार को मिर्गी के दौरों की एक भयानक रुग्णता है। आप ऐसे दृश्य जीने की इच्छा रखती हो जिनमें आपका किरदार स्वस्थ हो।

यदि आपको अपने ऊपर लदे कर्म और इच्छाओं की प्रकाश पोटलियों को त्यागने में कोई कठिनाई नहीं है तो आप अभी और इसी समय किसी भी शून्य सुरंग में घुसकर कोई भी दृश्य जी सकती हो।

आप निवेदन करती हो, “हे देव, मुझे कोई भी कर्म और इच्छा की पोटली पकड़े रखने में रुचि नहीं है। आप चाहे सभी प्रकाश पोटलियों को ले लो परंतु कृपया करके मुझे एक स्वस्थ जीवन दे दो। उसके लिए मुझे जो कुछ भी देना पड़े, मैं तैयार हूँ।”

आपके कर्म और इच्छाओं की पोटलियों को लेने वाला मैं कौन होता हूँ? आपको उनका त्याग करना पड़ेगा। उनको त्यागना इतना सरल नहीं है। उनको त्यागना अपने एक अंग को त्यागने के समान है। क्या आप अपना हाथ काटकर दे सकती हो? हाँ, प्रकाश पोटलियों को त्यागना इतना कठिन है। आपकी धारणाएँ, आपके विचार, आपकी आसक्तियाँ और जो कुछ भी आपको उर्मी होने का भान कराता है वह सब उन कर्मों और इच्छाओं के कारण है जो आपकी आत्मा पर लदे हैं। प्रकाश पोटलियाँ छोड़ने का अर्थ है पहचान छोड़ना। यह सारे घटक आपकी पहचान का किस तरह अभिन्न भाग हैं, उसका मैं आपको भान कराता हूँ।

आप, उर्मी, एक हरे छाते के नीचे विश्राम कर रही हो। इसे कौन पकड़े हुए है? इसका आपको विचार करना चाहिए परंतु आप नहीं करती हो। क्योंकि आपके ऊपर कर्म

और इच्छाओं की कुछ पोटलियाँ लदी हुई हैं जो आपको यह बताती हैं कि यह हरा छाता कुछ विशेष नहीं अपितु वृक्ष नाम की एक साधारण चीज है।

वायु आपके आस-पास भी है और आपके भीतर भी। आप वायु के समुद्र में तैर रही हो। आपको आश्चर्यचकित होना चाहिए परंतु आप नहीं होती हो। क्योंकि आपकी आत्मा पर कर्म और इच्छाओं की कुछ पोटलियाँ लदी हैं जो आपको बताती हैं कि यह सब एक साधारण प्रक्रिया है जिसे श्वास लेना कहते हैं।

जब आप किसी तेंदुए को देखती हो तो आपको डर लगता है। एक सुंदर दृश्य आपके चेहरे पर शांति लाता है। जब उन लालची जनों का चेहरा आपके मस्तिष्क में आता है जो जंगल को नष्ट कर रहे हैं तो आप क्रोध से लाल हो जाती हो। जब आप किसी को निःस्वार्थ भाव से किसी की सहायता करते देखती हो तो आप भावनात्मक हो जाती हो। ये सभी भावनाएँ आपके स्वभाव को विशिष्ट बनाती हैं। कोई अन्य मनुष्य इन परिस्थितियों में अलग तरीके से व्यवहार करेगा। आप वैसे व्यवहार क्यों करती हो जैसे आप करती हो? क्योंकि आपकी आत्मा के ऊपर कर्म और इच्छा की प्रकाश पोटलियों का एक विशिष्ट संयोजन बना हुआ है।

'मैं उर्मी के रूप में पैदा हुई... मेरा जीवन स्वास्थ्य संबंधी संघर्षों से भरा पड़ा है... मैं इन-इन विचारधाराओं का पालन करती हूं... मुझे एक दिन मरना है...' ये सब विचार कहाँ से आते हैं? उन कर्म और इच्छाओं की प्रकाश पोटलियों से जो आपकी आत्मा के ऊपर लदी हुई हैं।

किसी दृश्य को जीते समय कर्म और इच्छाओं की प्रकाश पोटलियों को पकड़कर रखना दृश्य को पूरी तरह जीने के लिए आवश्यक है। परंतु जैसे ही दृश्य समाप्त हो जाता है आपको कर्म और इच्छाओं की पोटलियों से अपनी पकड़ ढीली कर देनी चाहिए ताकि आप जो अगला दृश्य जीना चाहती हो उसके भीतर सहजता से प्रवेश कर सको। आपके आसपास जो कुछ भी हो रहा है उस सब पर आपको प्रश्न करना चाहिए। आपको प्रश्न करने की प्रक्रिया पर भी प्रश्न करना चाहिए। जैसे ही बाहरी संसार आपको एक खाली श्वेत पटल लगे तब आपको कर्म और इच्छाओं की पोटलियों पर पुनः पकड़ बना लेनी चाहिए। तब आप अपने आपको उस दृश्य में पाओगी जिसकी आपने इच्छा की है।

आप पूछती हो, “हे देव, मेरे जैसी साधारण आत्मा के लिए सभी कर्म और इच्छाओं की पोटलियों को त्यागना संभव नहीं लगता। क्या केवल उन प्रकाश पोटलियों को त्यागा जा सकता है जो मेरी देह के रोग का कारण बनी हुई हैं?”

परंतु आप उन पोटलियों को पहचानोगी कैसे? केवल ऋषि-मुनि उनको पहचान सकते हैं। मुझे पता है कि कौन सी प्रकाश पोटलियाँ आपके रोग का कारण बन रही हैं। मैं शल्य चिकित्सा द्वारा उनको हटाने जा रहा हूँ। मैंने यह कर्म और इच्छा का ज्ञान इसलिए आपको दिया है ताकि आप उन पोटलियों से अपनी पकड़ ढीली कर लो और मेरा शल्य चिकित्सा का काम सरल हो जाए।

अध्याय 4

समय के तार

उर्मी को आवश्यक ब्रह्मज्ञान देने के पश्चात हनुमान जी ने उसे उसके पिछले जन्म का वह घटनाक्रम स्मरण कराया जो उसके रोग की जड़ था। उन्होंने वह घटनाक्रम कुछ इस तरह सुनाया कि उनके शब्द केवल अश्विन देवों को सुनाई दिए परंतु उन शब्दों का नाटकीय रुपांतरण उर्मी को स्वप्न की तरह दिखाई दिया।

पिछले जन्म में उर्मी एक किसान की पत्नी थी। उसका नाम चंद्रा था। एक बार एक वानरों का समूह जंगल से रास्ता भटककर गाँव में आ पहुँचा। गाँव के कामचोर जनों और दुष्ट बच्चों ने उन वानरों को तड़पाना शुरू कर दिया। गाँव के सभी कुख्यात जन उन वानरों पर पत्थर फेंकने लगे, उनको एक छत से दूसरी छत पर दौड़ाने लगे, उनका घेराव करके उनको पीटने लगे। जितना अधिक वानर चिल्लाते उतना ही उन परपीड़कों को आनंद होता। बेचारे वानर न तो उस गाँव से बाहर का रास्ता ढूँढ पा रहे थे और न ही कोई ऐसा कोना ढूँढ पा रहे थे जहाँ वे सुरक्षित विश्राम कर सकते। तीन दिन और रात तक यही सब चलता रहा। वानर भूखे थे क्योंकि दिन में उनको इधर-उधर दौड़ाया जा रहा था और रात में वे खाना ढूँढते कैसे?

चौथे दिन भूखे, घायल और थके हुए वानरों ने चंद्रा के घर की छत पर शरण ली। एक तो छत की गर्म सतह, ऊपर से चौंधिया देने वाला सूर्य। उनकी शरणस्थली तड़पा-तड़पा कर मार देने को आतुर भीड़ से कम पीड़ादायक नहीं थी। परंतु वे वहीं पर जमे रहे क्योंकि गर्मी की उस दोपहरी के सूर्य का प्रकोप अंधाधुंध वार कर रही उस भीड़ के प्रकोप की तुलना में न्यायसंगत लगा। वह घर गाँव के अन्य घरों से अलग एक खेत में था इसलिए उसकी छत तुलनात्मक रूप से सुरक्षित अनुभव हो रही थी। वानरों की श्वास अभी स्थिर भी नहीं हुई थी कि उन्हें वहाँ पर किसी की उपस्थिति का भान हुआ।

किसान का 9 वर्ष का लड़का वानरों को देखने के लिए सीढ़ी चढ़ आया था। सीढ़ी लकड़ी से बनी थी और वह बच्चा उसके सबसे ऊपर वाले सोपान पर खड़े होकर छत पर बैठे वानरों को देख रहा था। जब वानरों ने उसको देखा तो उनमें से एक ने चीख निकाली। बच्चा डर गया और सीढ़ी से अपनी पकड़ खो बैठा। वह सिर के बल ऐसे गिरा कि गिरते ही अचेत हो गया।

चंद्रा ने सहायता के लिए चीख-पुकार लगाई। उसका पति, जो खेतों में काम कर रहा था, दौड़ते हुए वहाँ आया और तुरंत चिकित्सक को बुलाने चला गया। जब तक गाँव

का कामचलाऊ चिकित्सक वहाँ पहुँचा तब तक पूरे गाँव में यह समाचार फैल गया था। समाचार भ्रांति में बदलकर उन दुष्ट गाँव वालों के कान में पहुँच गया जो वानरों का पीछा कर रहे थे। अब उनके पास एक प्रयोजन था, एक पवित्र प्रयोजन - गाँव को उन 'नरभक्षी वानरों' से मुक्त करना जिन्होंने एक बच्चे को 'जिंदा निगल लिया था'।

हिंसा तो जंगल के पशु-पक्षी भी करते हैं किंतु मानव जाति धर्म और कर्तव्य आदि के सुंदर बहाने लगाकर जो हिंसा करती है उससे अधिक घिनौना ब्रह्मांड में कुछ नहीं है। अपने मुख पर रक्षक का मुखौटा पहनकर और हाथों में लाठियाँ लेकर गाँव के वे तथाकथित सज्जन वानरों का आखेट करने निकल पड़े थे।

इधर घर के सदस्य अपने घायल बच्चे की देखभाल करने में व्यस्त थे, उधर उस भीड़ ने छत पर पत्थर फेंकने शुरू कर दिए थे। डरे हुए वानरों को वहाँ से नीचे उतरकर अपनी जान बचाने के लिए भागना पड़ा। परंतु वहाँ से भागने के असफल प्रयासों के पश्चात वे वापिस चंद्रा के घर की छत पर आ गए। उनके तीन दिन के अनुभवों के अनुसार वही एक जगह थी जो उनके लिए सुरक्षित थी।

जब उन हिंसक युवाओं ने छत पर जाने के लिए सीढ़ी की ओर डग बढ़ाए, चंद्रा ने आक्रोश जताया। जब उनमें से कुछ जन वानरों को छत से हटाने के लिए नीचे से ही पत्थर फेंकने लगे तो चंद्रा ने उन्हें रोका। उसके मस्तिष्क में वानरों को बचाने का कोई विशेष धार्मिक विचार नहीं था और न ही उसके मुख पर कोई धर्म-कर्म के प्रवचन थे। वह जो कुछ भी कर रही थी सोच समझकर नहीं कर रही थी। यह तो उसका सहज स्वभाव था।

"मेरे घर से निकल जाओ।” चंद्रा तब तक ऐसा चिल्लाती रही जब तक कि उस हिंसक भीड़ का हर व्यक्ति उसके घर से दूर जाकर उसकी आंखों से ओझल नहीं हो गया।

वानरों के प्रति उसकी करुणा इतनी गहरी थी कि दुःख की घड़ी में भी छलक आई थी। बिना किसी विशेष धार्मिक विचार के उस भीड़ को वहाँ से भगाकर उसने धर्म और पुण्य का एक महान कार्य कर दिया था।

कामचलाऊ चिकित्सक ने गर्म पानी मांगा। चंद्रा सीधी रसोई में गई और चूल्हे पर पानी चढ़ाया। आज आग के जलने की ध्वनि कुछ अधिक ही सुनाई दे रही थी। वह भी दोपहरी के कोलाहल में। उसके मस्तिष्क में एक भयानक सन्नाटा छा रहा था। उसे अनुभूति हो रही थी कि कोई बहुत ही बुरी घटना होने वाली थी या हो चुकी थी।

कुछ क्षण पहले उसका बेटा स्वस्थ था। उसके साथ कुछ बुरा कैसे हो सकता था? उसने अपने आपको यह विश्वास कराने का प्रयास किया कि जो भी चोट उसके बेटे को

लगी थी वह साधारण थी। किंतु भयावह रूप से पसर रहा सन्नाटा चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा था कि चोट जानलेवा थी। जैसे-जैसे पानी गर्म होता गया वैसे-वैसे उसके पैर ठंडे होते गए।

जब वह गरम पानी लेकर गई तब कामचलाऊ चिकित्सक उसके घायल बच्चे के हाथ रगड़ रहा था। वह कदाचित यह भी भूल चुका था कि उसने पानी मांगा था। जब चंद्रा ने उसको पानी देने के लिए हाथ बढ़ाया तो उसके चेहरे पर खीज के भाव आए। उसे नहीं पता था कि वह क्या कर रहा था परंतु वह अपने भावों से जताना चाह रहा था कि चंद्रा ने आकर किसी महत्त्वपूर्ण क्रिया में विघ्न डाल दिया था।

गांव वालों के लिए वह भगवान से कम नहीं था। और हो भी क्यों नहीं? रोगियों की आधी रुग्णता तो उस आशा और विश्वास से समाप्त हो जाती थी जो उसकी नाटकीय भाव भंगिमाओं से पैदा होता था। रोगियों को स्वस्थ करने की यह उसकी एक विशेष पद्धति थी। परंतु यह पद्धति तब काम करती थी जब रोगी चेत में होता था। चंद्रा का बच्चा तो चेत में ही नहीं था। वह न तो उसकी भाव भंगिमाएँ देख पा रहा था और न ही आशा और विश्वास की औषधि ग्रहण कर पा रहा था।

चंद्रा और उसके पति का उस कामचलाऊ चिकित्सक पर पूरा भरोसा था। परंतु वह चिकित्सक यह भलीभांति जानता था कि वह जो कुछ भी कर रहा था उसका बच्चे के सिर में लगी गहरी चोट पर कोई प्रभाव नहीं होने वाला था।

चंद्रा ने जलपात्र अपने पति को थमा दिया जो चिकित्सक के पास ही बैठा था। वह वापिस रसोई में लौट आई। भयावह सन्नाटे को पसरने से रोकने के लिए उसने ऐसा बनावटी माहौल बनाने की चेष्टा की कि सब कुछ ठीक-ठाक था। पहले तो उसने रसोई के बर्तनों को इधर-उधर किया और उसके पश्चात पहले से ही धुले बर्तनों को धोना शुरू कर दिया। अपनी इस कल्पना में वास्तविकता का छौंका डालने की चेष्टा में उसने सब्जी को तीन अलग-अलग प्यालियों में परोसा। उसकी कल्पना में यह एक साधारण दोपहर थी और भोजन का समय हो गया था और उसके परिवार के सभी तीन जन भोजन करने वाले थे। तत्पश्चात बिना किसी विशेष विचार के उसने एक बड़ा प्याला उठाया और उसमें कुछ रोटियाँ और कुछ फल रखे।

वह उसी मनहूस सीढ़ी से ऊपर चढ़ी जिसने उसके परिवार को शोक के गहरे कुँए में गिराया था। उसने खाना छत पर डाल दिया और नीचे आ गई। जब वह ये सब कर रही थी तो उसके मस्तिष्क में कोई विशेष धर्म-कर्म का विचार नहीं था। उसने यह सब ऐसे किया

जैसे वे वानर उसके परिवार के ही सदस्य हों और उनको खाना देना उसका नित्य का कार्य हो। वह पुनः रसोई में आ गई और अपने आपको व्यस्त करने के लिए काम ढूँढने लगी।

उसको तनिक भान नहीं था कि उसने करुणा का एक महान कार्य किया था। और कदाचित इसीलिए वह कार्य महान था। वानरों को खाना डालने का एक छोटा-सा कार्य इतना बड़ा था कि पूरे ब्रह्मांड में हलचल मच गई थी और वह हलचल सभी देवों और देवियों ने अनुभव की थी।

चिरंजीवी हनुमान उस समय एक जंगल में ध्यान कर रहे थे। वे उठे और समय के देवता काल से उन्होंने पूछा, "हे काल! क्या आपने भी यह अनुभव किया? किसी मानव की आत्मा देवत्व को प्राप्त हुई है! मुझे बताओ वह कौन साधु है जिसकी तपस्या फलित हुई है?"

"उसका नाम चंद्रा है।" काल ने उत्तर दिया, "और वह एक साधारण गृहिणी है और उसने काम केवल इतना किया है कि अपनी छत पर शरण लिए हुए भूखे वानरों के लिए खाना डाला है।"

"तो फिर वे साधारण वानर नहीं होंगे। कदाचित वे मेरे विशेष शिष्यों अर्थात मातंगों के वानर होंगे।" हनुमान जी बोले।

काल बोले, "नहीं, जिस किसान की पत्नी की मैं बात कर रहा हूँ उसका मातंगों से कोई लेना देना नहीं है। क्षमा करना हनुमान जी, परंतु उसने जो कुछ किया है उसमें कुछ भी असाधारण नहीं है। आप स्वयं ही देख लो।"

हनुमान जी समय में पीछे गए और चंद्रा के घर पर जो कुछ भी दृश्य घटित हुए थे उनको स्वयं देखा। वे वानर साधारण ही थे परंतु चंद्रा द्वारा किए गए कर्म असाधारण और दिव्य थे। उसने वानरों को मात्र इसलिए अपना परिवार माना था कि वे उसकी छत पर शरण लिए हुए थे। उसकी करुणा में इस बात ने भी छेद नहीं किया था कि उन वानरों ने उसको जीवन के सबसे बड़े दुःख में डाल दिया था।

साधारण मनुष्य भलाई का काम करने से पहले भी पाप-पूण्य, धर्म-कर्म आदि का लेखा-जोखा करते हैं। और भलाई का काम करने के पश्चात जो गर्व और संतुष्टि आती है वह भी लंबे समय तक उनके मन-मानस में छपी रहती है। परंतु चंद्रा ने भलाई ऐसे की थी जैसे वह उसका नित्य का कार्य हो।

काल अभी भी यह मानने को तैयार नहीं थे कि चंद्रा का कार्य असाधारण था। वे बोले, "कदाचित वह आपकी बहुत बड़ी भक्त है इसलिए उसने वानरों के प्रति दया

दिखाई।"

हनुमान जी बोले, "हाँ, वह मेरी भक्त है, इसमें कोई संदेह नहीं है। परंतु वह आज तक मेरे मंदिर नहीं आई है और न ही मुझसे उसने कोई प्रार्थना की है। जिस गाँव में वह रहती है उस गाँव में यह मिथ्या धारणा प्रचलित है कि महिलाओं को मेरे मंदिर में न ही प्रवेश करना चाहिए और न ही मुझसे कोई प्रार्थना करनी चाहिए। वह अपने कर्मों से मेरी भक्त है न कि कर्मकांडों से। जब वह वानरों को खाना दे रही थी तब भी उसके मन-मानस में मेरा चित्र नहीं उभरा था।"

काल को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने पूछा, "इस समय उसकी इकलौती संतान जीवन और मृत्यु से जूझ रही है। क्या अब भी उसने आपसे कोई प्रार्थना नहीं की? यदि मेरा गणित मिथ्या नहीं है तो उस घायल बच्चे की आत्मा उसकी देह से ठीक साढ़े छह घंटे पश्चात सदा के लिए विदा हो जाएगी। मृत्यु की छाया चंद्रा के घर पर बड़ी होती जा रही है।"

"नहीं, वह बच्चा मृत्यु को प्राप्त नहीं होगा।" हनुमान जी यह कहकर जंगल से अंतर्ध्यान हो गए और चंद्रा के घर में प्रकट हुए।

गांव के मानकों के अनुसार यह घर ठीक-ठाक बना हुआ था। बच्चा बरामदे में पड़ी एक चारपाई पर अचेत लेटा था। उस बरामदे के भीतर दो बड़े कमरे थे। काम चलाऊ चिकित्सक चारपाई के पास पड़ी एक लकड़ी की मेज पर बैठा व्यस्त होने का अभिनय कर रहा था। बच्चे का पिता भूतल पर उकड़ू बैठे हुए चिकित्सक के निर्देशों के अनुसार सहायता करने के लिए तत्पर था।

हनुमान जी चारपाई के चारों ओर घूमे और रोगी की अच्छे से जांच पड़ताल की। उसके सिर पर कोई बाहरी चोट दिखाई नहीं दे रही थी और न ही कहीं से खून बहा था। चोट गहरी थी और सीधे सिर पर लगी थी।

अश्विन देव चारपाई के दोनों ओर प्रकट हुए। लगभग आधे घंटे के उपचार के पश्चात उन्होंने घोषणा की, "हे हनुमान जी, हमने मस्तिष्क की चोटें सफलतापूर्वक ठीक कर दी हैं। अब बच्चे की देह पूरी तरह स्वस्थ है परंतु अचेत है। इसकी आत्मा ने इसकी देह में पुनः आने से मना कर दिया है क्योंकि इसकी आत्मा अपने अगले जन्म के साथ कड़ियाँ जोड़ चुकी है।"

बच्चे की आत्मा बिल्कुल भी पीड़ा में नहीं थी। वह तो इस जन्म और उस जन्म के मध्य कुछ ऐसे दृश्य जी रही थी जो सपनों जैसे होते हैं। वे दृश्य अनियमित और असंगत थे

अर्थात इस संसार के दृश्यों की भांति एक दूसरे से जुड़े हुए नहीं थे। उसकी आत्मा अगले जन्म में प्रवेश करने की तैयारी कर रही थी जिसमें उसके परिजन भी भिन्न होने वाले थे और देह भी भिन्न होने वाली थी। अगले जन्म में प्रवेश करने के पश्चात उसे चंद्रा का नाम भी स्मरण नहीं रहने वाला था और न ही इस जन्म की अन्य घटनाएँ।

अतः पीड़ा केवल और केवल चंद्रा की थी। वह अपना इकलौता बच्चा खोने वाली थी। वह उसे केवल देह से जानती थी। इससे कोई अंतर नहीं पड़ने वाला था कि उस देह में कौन सी आत्मा विराजे। वह उसे तब तक अपना ही बच्चा समझने वाली थी जब तक कि वह देह उसी तरह हँसती, उसी तरह खेलती और उसी तरह व्यवहार करती जैसे उसका बच्चा करता आ रहा था। इसलिए हनुमान जी का कार्य था उस स्वस्थ हो चुकी देह में किसी आत्मा को लाना।

यह कोई असाधारण या अभूतपूर्व स्थिति नहीं थी। देवी देवता मानव कल्याण के लिए ऐसी आत्माओं की व्यवस्था करते हैं जो आत्मारहित देहों में प्रवेश करके जीवन बचाती हैं। परंतु यह मामला मानव जाति के कल्याण का नहीं था। यह तो केवल एक परिवार की प्रसन्नता का प्रश्न था। देवी देवताओं के क्रमाचार के अनुसार इस स्थिति को मानव स्तर पर ही सुलझाया जाना था। इसमें देवों की सहायता कम से कम ली जानी चाहिए थी। इस स्थिति का मानवीय हल निकालने के लिए हनुमान जी का आंतरिक संसार में जाना आवश्यक हो गया।

आंतरिक संसार शून्य सुरंगों की एक भूलभुलैया है। उन सुरंगों के बीचों-बीच से समय के तार निकलते हैं। उनकी दीवारें श्वेत रंग के पटल की तरह होती हैं क्योंकि वे आकाश के द्रव से बनी होती हैं। उन्हीं पटलों पर सभी दृश्य चलते हैं। हर सुरंग में एक विशेष दृश्य उपलब्ध होता है। आत्मा समय के तारों के ऊपर सवार होकर उस दृश्य को जी सकती है।

हनुमान जी बाहरी संसार से अलग होकर शून्य सुरंगों के माध्यम से उस सुरंग में पहुँचे जहाँ पर चंद्रा की आत्मा उस समय उपस्थित थी। वहाँ पर जो दृश्य चल रहा था वह बहुत ही मनहूस था। उस दृश्य की प्रमुख किरदार चंद्रा थी और वह अपने भय से भागने की चेष्टा में रसोई के बर्तनों को इधर-उधर कर रही थी। उसका इकलौता बच्चा मृत्यु से जूझ रहा था। छह घंटे के भीतर वह उस प्राणहर सुरंग में पहुँचने वाली थी जिसमें उसके बच्चे की मृत्यु का दृश्य चल रहा था। हनुमान जी का कार्य था उन छह घंटों के भीतर उसके बच्चे के तन में एक आत्मा को प्रवेश कराना। उसका परिणाम यह होता कि चंद्रा प्राणहर सुरंग में प्रवेश करने की बजाय उस सुरंग में प्रवेश करती जिसमें उसका बच्चे के ठीक होकर आँख खोलने का दृश्य चल रहा था।

हनुमान जी ने देखा कि चंद्रा की आत्मा का समय के 13 तारों पर स्वामित्व था। अन्य शब्दों में, जिस सुरंग में उसकी आत्मा उस समय उपस्थित थी उसके बीचों-बीच से समय के 13 तार गुजर रहे थे। एक आत्मा का जितने समय के तारों के ऊपर स्वामित्व होता है वह इस बात को भी दर्शाता है कि उसने भक्ति के मार्ग पर कितना रास्ता तय कर लिया है। (आत्मा अपनी मुक्ति के लिए जो रास्ते अपनाती है वे मुख्यतः तीन श्रेणियों में आते हैं - भक्ति मार्ग, ज्ञान मार्ग, और भक्ति और ज्ञान का मिश्रित मार्ग।)

जिन जीव आत्माओं का स्वामित्व समय के केवल छह तारों पर होता है वे वानर आत्माएँ होती है। भक्ति के मार्ग पर या किसी भी अन्य मुक्ति के मार्ग पर उन्होंने अभी तक एक भी डग नहीं रखा है। वे केवल मूल इच्छाओं अर्थात भोजन और जनन के वश में होती हैं।

जिन जीव आत्माओं का स्वामित्व समय के केवल 7 तारों पर होता है उन्होंने भक्ति के मार्ग पर अभी-अभी डग रखा है। वे एक मान्यता प्रणाली से बंधी होती है। वह प्रणाली या तो तर्क आधारित होती है (विज्ञान, दर्शनशास्त्र आदि) अथवा अनुभव आधारित होती है (धर्म, संप्रदाय, मानवता, अध्यात्मिकता, प्रेम आदि)। एक सामान्य मानव के पास समय के कम से कम 7 तारों का स्वामित्व होता है। वे सभी जाने-अनजाने किसी न किसी मान्यता प्रणाली से बंधे होते हैं।

जिन जीव आत्माओं के पास समय के 8 तारों का स्वामित्व होता है वे भक्ति के मार्ग पर एक डग आगे चल चुकी होती हैं। वे न केवल एक मान्यता प्रणाली से बंधी होती हैं अपितु उसी मान्यता प्रणाली को मानने वाले जनसमूह से संबंध बना चुकी होती हैं। एक समूह का भाग होना उनकी मान्यता को और भी दृढ़ करता है। उन्हें अपनी मान्यताएँ सत्य लगने लगती हैं।

वे जीव आत्माएँ जिनके पास समय के 9 तारों का स्वामित्व होता है वे भक्ति के मार्ग पर थोड़ा और चल चुकी होती हैं। वे अपनी मान्यता प्रणाली में स्वयं को झोंकना प्रारम्भ कर देती हैं। वे अपने पंथ के लिए कुछ न कुछ बलिदान करना शुरु कर देती हैं। कुछ आत्माएँ अपना समय देती हैं, कुछ आत्माएँ अपना धन देती हैं, कुछ अपनी संपत्ति देती हैं, कुछ पशु आदि देती हैं, कुछ अपना चैन देती हैं। ऐसी आत्माएँ वह सब देने के लिए तत्पर रहती हैं जिसको देने की प्रेरणा उनके देवी-देवता, गुरु, अथवा पुस्तकें आदि देते हैं।

जो जीव आत्माएँ समय के 10 तारों की स्वामिनी होती हैं उनका भक्ति का स्तर और भी ऊंचा होता है। वे उन जनों से मेलजोल करना बंद कर देती हैं जो किसी अन्य मान्यता प्रणाली से संबंध रखते हैं। वे हर उस चीज को अनदेखा करती हैं जो उनके मत

और विश्वास को हिला सकती है। वे हर ध्यान भटका देने वाली चीज से बचते हैं और अपने आपको केवल अपनी मान्यता प्रणाली में झोंकते रहते हैं। वे अपना समय, प्रयास और धन संपत्ति अपने पंथ के लिए दान करते रहते हैं।

जो जीव आत्माएँ समय के 11 तारों पर अपना स्वामित्व जमा चुकी हैं वे अपनी मान्यता प्रणाली में इतनी अनुभवी और अंगभूत हो जाती हैं कि वे अन्य मत प्रणालियों से बचने की बजाय उनको प्रत्युत्तर देने लगती हैं। वे अन्य मत के जनों से बहस करें या ना करें परंतु अपने मस्तिष्क में उनके मत के विरुद्ध तुरंत तर्क बना लेती हैं। वे अपनी मान्यता प्रणाली को सर्वोच्च घोषित कर देती हैं। वे अन्य मत प्रणालियों को या तो पूरी तरह अस्वीकृत कर देती हैं या उन्हें अपनी ही मान्यता प्रणाली का एक गौण रूप सिद्ध कर देती हैं।

जो आत्माएँ समय के 12 तारों पर सवार हैं वे अन्य मान्यता प्रणालियों को सफलतापूर्वक इतने प्रत्युत्तर दे चुकी होती हैं कि उन्हें अपनी मान्यता प्रणाली परम सत्य लगने लगती हैं। उन्हें पूर्ण विश्वास हो जाता है कि ब्रह्मांड की कोई भी चीज उनकी मान्यता प्रणाली द्वारा समझी जा सकती है। यदि कुछ नहीं समझा जा सकता है तो उनके पास यह समझाने के लिए भी तर्क होता है कि वह क्यों नहीं समझा जा सकता। वे ब्रह्मांड की हर घटना में अपने भगवान और अपने पंथ की उपस्थिति देख सकती हैं।

जो आत्माएँ समय के 13 तारों पर विराजमान है उन्हें किसी को कुछ समझाने की आवश्यकता अनुभव नहीं होती और न ही वे किसी को अपने पंथ में लाने का प्रयास करती हैं। उनके लिए पूरा ब्रह्मांड ही अपने ईश्वर अथवा सिद्धांतों का अभिव्यक्त रूप बन जाता है।

जो आत्मा समय के 14 तारों का स्वामित्व धारण कर लेती है वे दो प्रतिबिंबों में बंट जाती हैं और दोनों प्रतिबिंब समय के 7-7 तारों पर विराजमान होते हैं। भाषा की सरलता के लिए हम प्रत्येक प्रतिबिंब को एक अलग आत्मा मान कर चलते हैं। एक आत्मा से विभाजित हुई दो आत्माएँ! दोनों एक ही देह के साथ समन्वयता से जुड़ी रहती हैं। यदि एक आत्मा किसी दृश्य में लीन हो जाती है तो दूसरी आत्मा उसे ज्ञान का दर्पण दिखाती है।

उदाहरण के तौर पर सृजन नाम का एक भक्त कार्यालय के काम के दबाव के कारण कष्ट में है। उसकी दो आत्माएँ हैं जो एक दूसरे की प्रतिबिंब हैं। पहली आत्मा कष्ट का अनुभव कर रही है। उसकी दूसरी आत्मा पहली को प्रतिबिंब दिखाकर यह बोध कराती है कि सृजन मात्र एक किरदार है। वह किरदार कष्ट में है, आत्मा नहीं। उस किरदार का

कार्य अधूरा पड़ा है, आत्मा का नहीं। आत्मा स्वयं को किरदार से अलग करके शून्य का अनुभव कर सकती है। इस तरह दोनों आत्माएँ मिलकर आत्मज्ञान की ज्योति जलाती हैं।

रिद्धि नाम की एक दूसरी भक्त है जो अभी-अभी मंदिर होकर आई है और अत्यंत आनंद का अनुभव कर रही है। उसकी भी दो आत्माएँ हैं जो एक दूसरे की प्रतिबिंब हैं। पहली आत्मा पूरी तरह आनंद में खोई हुई है। दूसरी आत्मा पहली को प्रतिबिंब दिखाकर यह बोध कराती है कि रिद्धि मात्र एक किरदार है। उसका किरदार आनंद में डूबा है, आत्मा नहीं। किरदार अभी-अभी मंदिर होकर आई है, आत्मा नहीं। आत्मा किरदार से अलग होकर शून्य का अनुभव कर सकती है। इस तरह दोनों आत्माएँ मिलकर आत्मज्ञान की ज्योति जलाती हैं।

एक ही देह के साथ जुड़ी हुई दो आत्माएँ उन दो जनों की तरह हैं जो एक ही घर में रहते हैं। यदि वे आत्माएँ एक-दूसरे की पूरक हैं, जैसा कि एक आत्मा के दो में विभक्त होने पर होता है, तो वे शांति से एक ही देह से जुड़ी रह सकती हैं। वे अंततः शून्य को प्राप्त हो जाती हैं अर्थात वे जीवन-मरण से मुक्ति पा लेती हैं।

समय के 7 तारों से 14 तारों तक की आत्मा की यात्रा सरल नहीं होती। यह इस पर निर्भर करता है कि आत्मा का किरदार किस मान्यता प्रणाली से बंधा हुआ है। वह मान्यता प्रणाली यदि दूषित है तो आत्मा यात्रा के बीच में ही लंबे समय तक अटकी रह सकती है। मान्यता प्रणाली एक वाहन का कार्य करती है। यदि वाहन ठीक भी हुआ तो भी आत्मा को 14 तारों का स्वामित्व प्राप्त करने में एक से अधिक जन्म लेने पड़ सकते हैं।

जब हनुमान जी ने चंद्रा की आत्मा को समय के 13 तारों पर सवार देखा तो उन्हें उसकी आत्मा को दो भागों में विभाजित करने का विचार आया। एक भाग चंद्रा का जीवन जी सकता था और दूसरा भाग उसके बच्चे का। हनुमान जी ने यह विचार काल के साथ साँझा किया।

हनुमान जी बोले, "यदि उसके पास समय का एक तार और अधिक होता तो उसकी आत्मा अपने आप ही दो में विभाजित हो जाती। वह बिना किसी बाहरी सहायता के अपने बच्चे को बचा पाती।"

काल ने मुस्कुराते हुए कहा, "तब भी उसे अश्विन देवों की सहायता तो लेनी ही पड़ती। यह कामचलाऊ चिकित्सक क्या कर रहा है इसको स्वयं पता नहीं है। यह बच्चे की मस्तिष्क की चोट को कैसे ठीक करता?"

"मैंने तो अश्विन देवों को यहाँ आने के लिए नहीं कहा। क्या आपने उन्हें बुलाया है?" हनुमान जी ने पूछा।

"नहीं।" काल ने उत्तर दिया, "मैंने सोचा कि आपने..."

"किसी के कर्म चंद्रा की आत्मा जैसे हों तो अश्विन देवों को आना ही पड़ता है। न ही मैंने उनको यहाँ बुलाया है और न ही किसी अन्य देव ने।" हनुमान जी ने बताया।

काल इस बात से सहमत थे। वे बोले, "हाँ, चंद्रा की आत्मा शक्तिशाली तो है। समय के 13 तारों पर स्वामित्व प्राप्त करना कोई छोटी बात नहीं है। परंतु मैं आपके इस विचार को सहमति नहीं दूँगा कि उसकी आत्मा को विभाजित किया जाए। विभाजित करने के पश्चात एक आत्मा के पास सात समय के तार होंगे और दूसरी के पास छह। कौन सी आत्मा कौन सा किरदार चुनेगी? यदि छह तारों वाली आत्मा चंद्रा के किरदार के साथ जुड़ती है तो वह वानर की तरह व्यवहार करना शुरू कर देगी। आपने देखा ही है कि असहाय वानरों के साथ यहाँ के गाँव वालों ने कैसा बर्ताव किया है। वे वानर की तरह व्यवहार कर रही महिला के साथ कैसा बर्ताव करेंगे? वे पत्थरों से उसे मार डालेंगे। कदाचित उसका स्वयं का परिवार भी यह समझे कि उसमें कोई बुरी आत्मा आ गई है और यह समझकर उसे घर से बाहर निकाल दे। उसके बच्चे को बचाने के लिए उसको मानसिक रूप से अपंग करना कितना उचित है? यदि छह तारों वाली आत्मा उसके बच्चे के किरदार के साथ जुड़ती है तो वह पूरा जीवन एक मानसिक रूप से अपंग बच्चे की माँ के रूप में पीड़ा सहन करेगी और कदाचित गाँव वाले उस बच्चे की भी बलि ले लें क्योंकि वह बच्चा वानरों की तरह व्यवहार करेगा।"

हनुमान जी शांति से सोचते हुए बोले, "मैं जानता हूँ, काल। बस समय के एक और तार पर उसका स्वामित्व होता तो... उसके पति की आत्मा के पास कितने तार हैं? देखता हूं..."

"मैं पहले ही देख चुका हूँ।" काल बोले, "उसकी आत्मा के पास समय के केवल सात तार हैं, हनुमान जी। उसके पास एक तार भी अधिक नहीं है।"

"इसका अर्थ है कि मानव स्तर पर कोई समाधान संभव नहीं है। यदि माता और बच्चे दोनों को जीवित रहना है तो उनमें से एक को मानसिक रूप से अपंग होना पड़ेगा। हाँ, यदि कोई -"

हनुमान जी का वाक्य अभी पूरा भी नहीं हुआ था कि काल बोल पड़े, "हाँ, इसके समाधान के लिए दैवीय सहायता की आवश्यकता है।"

"- यदि कोई अनजान व्यक्ति, कदाचित कोई साधु, अपनी आत्मा को विभाजित करके इस बच्चे को दे दे तो समाधान हो सकता है।" हनुमान जी ने वाक्य पूरा किया।

काल संदेह के स्वर में बोले, "परंतु आत्मा को विभाजित करके इस बच्चे को देने के लिए देने वाले का इस बच्चे के प्रति जुड़ाव होना आवश्यक है। हाँ, कोई साधु अवश्य इस बच्चे के साथ जुड़ाव स्थापित कर सकता है। परंतु क्या इतना गहरा जुड़ाव स्थापित हो सकता है कि वह अपनी आत्मा का एक भाग इसको दे दे?"

"हाँ, हो सकता है। क्या आप आसपास किसी ऐसे साधु की खोज कर सकते हैं जिसके पास दान करने के लिए समय के कुछ तार अतिरिक्त हों?" हनुमान जी ने आग्रह किया।

काल ने तुरंत सूचना दी, "हाँ, एक साधु है। वह पास के ही जंगल में है परंतु यदि वह अपनी नियमित चाल से चलकर आएगा तो इस घर तक समय पर नहीं पहुँच पाएगा।"

हनुमान जी ने काल द्वारा दी गई सूचना का विश्लेषण किया।

"मुझे कोई कठिनाई दिखाई नहीं देती, काल। यहाँ से छह घंटे की दूरी पर मुझे एक सुरंग दिखाई दे रही है जिसमें चल रहे दृश्य के मुख्य किरदार का नाम चंद्रा है और वह इस बात से खुश है कि उसका बच्चा ठीक हो गया है। मैं उस दृश्य में एक साधु को भी देख सकता हूँ। हम चंद्रा की आत्मा को उसी सुरंग में लेकर जा रहे हैं। वह साधु उस दृश्य में समय से पहुँच चुका है।" हनुमान जी बोले।

काल ने उत्तर दिया, "उसी सुरंग के समानांतर एक दूसरी सुरंग है जिसमे चल रहे दृश्य का मुख्य किरदार अत्यंत दुःखी है। हम दोनों उस दृश्य में उपस्थित हैं और साधु के समय पर ना आने के कारण कोई तत्काल हल ढूँढने का प्रयास कर रहे हैं।"

"चिंता मत करो, काल। हम चंद्रा की आत्मा को उस दूसरी सुरंग में नहीं जाने देंगे। चलो, हम अपना अपना कार्य करते हैं।" हनुमान जी ने कहा।

उस गाँव से कुछ मील की दूरी पर एक जंगल में विश्राम कर रहे एक साधु के मस्तिष्क में अचानक एक अस्पष्ट-सा विचार आया। उस विचार ने साधु के चेतन मन में कोई उपस्थिति अंकित नहीं कराई परंतु एक कर्म को अंकुरित कर दिया। साधु अचानक उठ खड़ा हुआ और चलने लगा। उसे नहीं पता था कि कहाँ जाना है परंतु उसे इतना पता था कि चलते जाना है।

वह साधु अनगिनत वर्षों से हनुमान जी से मिलने को आतुर था। वह किसी अदृश्य शक्ति को समर्पित था। उसे लगता था कि एक अदृश्य शक्ति, जिसे वह अपना गुरु कहता था, उसके कर्मों को निर्देशित कर रही थी। कभी वह बिना विषय के कुछ भी बोलता, कभी बिना प्यास के पानी पीता, कभी पानी होते हुए भी प्यासा रहता, कभी बिना कारण के नाचता और बिना किसी गंतव्य के चलता जाता।

वह सीधे किसान के घर की ओर नहीं जा रहा था परंतु भाग्य उसे वही ले जा रहा था। रास्ते में उसके साथ जो घटनाएँ घटीं उनके कारण वह कभी दौड़ा, कभी धीरे-धीरे चला, कभी रुक गया, कभी मुड़ा। वे सभी घटनाएँ इसलिए हो रही थी ताकि वह ठीक उस समय पर किसान के घर पहुँचे जिस समय पर काल चाहते थे। एक भी पल की देरी या एक भी पल की शीघ्रता से वह काल के द्वारा निर्धारित गंतव्य से भटक सकता था।

उस दौरान हनुमान जी चंद्रा के घर की छत पर भयभीत वानरों के साथ बैठे रहे। चंद्रा ने उनको खाना दे दिया था। वे अब केवल विश्राम और शांति चाहते थे। सूर्यास्त तक उनकी धीमी ध्वनियाँ प्रसारित होती रही परंतु उनको किसी मानव ने नहीं सुना। मानव मस्तिष्क उस आवृति की ध्वनियाँ नहीं सुन सकता। परंतु देवी देवताओं ने वे ध्वनियाँ आनंदपूर्वक सुनी क्योंकि वह कोई साधारण वार्तालाप नहीं अपितु चेतना के निम्नतम स्तर अर्थात वानरों और उच्चतम स्तर अर्थात हनुमान जी के बीच का वार्तालाप था।

सूर्यास्त के पश्चात वे वानर वापिस जंगल की ओर चल दिए; हनुमान जी ने उनको रास्ता बता दिया था। जब हनुमान जी छत से नीचे उतरे तब उन्हें समाचार मिला कि वह साधु अभी तक नहीं पहुँचा था।

काल के संदेह और भय सत्य सिद्ध हो गए थे। चंद्रा के बेटे को अचेत हुए अब कई घंटे बीत चुके थे। चंद्रा अब अत्यंत दु:खी और चिंतित थी।

हनुमान जी ने देखा कि कुछ क्षण के पश्चात चंद्रा की आत्मा उस दृश्य में प्रवेश करने वाली थी जिसमें उसके बच्चे की मृत्यु हो जाती है। तुरंत कार्यवाही की आवश्यकता थी। इसलिए हनुमान जी ने काल से कहा, "आपको हस्तक्षेप करना पड़े तो करो परंतु उस साधु को तुरंत यहाँ पहुँचाओ।"

काल ने मंत्रणा दी, "हे हनुमान, आप उसे उड़ाकर यहाँ पर ले आओ। जिस गति से वह आ रहा है उस गति से आएगा तो उसे कम से कम आधा घंटा और लगेगा।"

हनुमान जी जानते थे कि यह संसार को बचाने का युद्ध नहीं था। केवल एक बच्चे को बचाना था। किसी को उसके भाग्य के विपरीत उड़ाकर लाना नश्वर संसार के नियमों का

उल्लंघन होता। इससे संसार की हानि अधिक और लाभ कम होता। उन्हें तुरंत कोई ऐसा समाधान निकालना था जो धरती के नियमों के विपरीत ना हो।

काल ने स्थिति को समझा और मंत्रणा दी, "हनुमान जी, चलिए बच्चे की माता की आत्मा को ही विभाजित कर देते हैं। ठीक है कि उनमें से एक मानसिक रूप से अपंग हो जाएगा परंतु दोनों कम से कम जीवित रहेंगे। मानसिक अपंगता का समाधान हम भविष्य में भी निकाल सकते हैं।"

हनुमान जी उस चारपाई के पास गए जहाँ पर बच्चा लेटा था। चंद्रा अब चारपाई के पास ही बैठी थी। उसकी आंखों से आशा समाप्त होती जा रही थी। चंद्रा की ओर देखते हुए हनुमान जी बोले, "साधारण स्थिति में 13 तारों वाली आत्मा को विभाजित करना कठिन होता। परंतु अब जबकि चंद्रा अपना जीवन देकर भी अपने बच्चे को बचाना चाहेगी, यह कार्य सरल हो गया है।”

"मुझे तो सरल होता दिखाई नहीं दे रहा है।" काल सभी संभावनाओं का विश्लेषण करने के पश्चात बोले, "अपनी जान देकर अपने बच्चे की जान बचाने की उसकी इच्छा तीव्र नहीं है। उसकी आत्मा के ऊपर लदी हुई इच्छा की प्रकाश पोटलियों को देखिए। उसकी स्वयं की जान बचाने की इच्छा वाली पोटली अधिक तीव्रता से प्रकाशित है। स्वयं को न्यौछावर करके अपने बच्चे को बचाने की इच्छा वाली पोटली कम प्रकाशित है। यह क्या दर्शाता है? यही कि वह अपना जीवन अपने बच्चे के जीवन से अधिक मूल्यवान मानती है।"

छोटे से विचारशील अंतराल के पश्चात हनुमान जी बोले, "ऐसा आसक्ति के कारण हो रहा है, काल। वह अपने बच्चे को अपनी जान से भी अधिक चाहती है। परंतु आसक्ति, जो हर भावना के भीतर मिलकर उसको दूषित कर देती है, उससे यह दोषपूर्ण कार्य करवा रही है। आसक्ति के कारण वह अपने बच्चे के साथ वह करने जा रही है जो कदाचित शत्रु भी नहीं करते।"

काल बोले, "ओलावृष्टि में फँसा रथ!"

"बिल्कुल सही।" हनुमान जी ने सहमति जताई और समस्या का समाधान ढूँढने के पश्चात उसको क्रियान्वित करने में जुट गए।

काल उस कथा की ओर संकेत कर रहे थे जो देवी देवताओं के बीच बहुत प्रचलित है। एक सारथी का रथ कहीं फँस जाता है। मौसम खराब होता है, ओलावृष्टि होने वाली होती है। वह स्वयं को तो बचा सकता है क्योंकि रथ के ऊपर एक ठोस छतरी बनी होती है।

परंतु वह अपने घोड़े को कैसे बचाए जिसे वह अपनी जान से भी अधिक चाहता है? सौभाग्य से वह थोड़ी दूरी पर एक आश्रय स्थल देखता है और रथ के पहिए को निकालने का अपना प्रयास दोगुना कर देता है।

उसके मस्तिष्क में केवल यह विचार बिजली की तरह कौंध रहा होता है कि वह कैसे उस पहिए को निकाले और शीघ्र से शीघ्र आश्रय स्थल में पहुँचे। ओलावृष्टि शुरू हो जाती है परंतु वह अपने रथ के पहिए को हिला भी नहीं पाता है। अंततः वह हताश होकर बैठ जाता है और देवों को कोसने लगता है। भय, निराशा, क्रोध, अपेक्षा आदि भावनाएँ आसक्ति के विष के साथ मिलकर उसको जकड़ लेती हैं। सुरक्षित अपने रथ की छतरी के नीचे बैठे हुए और आंसू भरी आंखों से वह अपने घोड़े को तीरों से भी भयानक ओलावृष्टि में घायल होते हुए देखता है। जब घोड़ा पूरी तरह मर जाता है तब उसकी भावनाएँ और आसक्ति हवा में उड़ती हैं और तब उसकी आँखें खुलती हैं कि वह अपने प्रिय घोड़े को रथ से अलग करके पास स्थित शरण स्थल में ले जाकर बचा सकता था।

आसक्ति के कारण ऐसा ही होता है। आसक्ति आपको आपकी नश्वर पहचान, आपके मत, आपके विचारों से कसकर बाँध देती है। आप जो कुछ भी हैं, जो कुछ भी आपके पास है, उससे आपको सुरक्षित अनुभव करना चाहिए। परंतु आसक्ति के कारण आप असुरक्षित और भयभीत अनुभव करते हैं। आप हर चीज पर अंकुश लगाना चाहते हैं जो आप अपनी मानते हैं। कोई चीज आपकी अपनी है तो उसके ऊपर अंकुश लगाने की क्या आवश्यकता है? आसक्ति आपको इतना अंधा बना देती है कि आप अपने घोड़े की मृत्यु का कारण स्वयं बन जाते हैं और स्वयं ही दुःखी होते हैं।

प्रेम मनुष्य को स्वतंत्र करता है परंतु आसक्ति से दूषित प्रेम बिल्कुल उल्टा करता है। चंद्रा का उसके बच्चे के प्रति प्रेम अथाह था परंतु वह प्रेम आसक्ति से दूषित था। उसका उसके देवता के प्रति क्रोध, देवताओं से अपेक्षाएँ, परिस्थितियों के कारण निराशा, अपने बच्चे की मृत्यु का भय आदि सभी भावनाएँ आसक्ति से दूषित होकर उसे अपने किरदार अर्थात चंद्रा से कसकर बाँध रही थीं - मैं चंद्रा हूँ। मैं इस और इस देवता में विश्वास रखती हूँ। मेरा बच्चा मृत्यु से जूझ रहा है। मेरा अपने देवता के प्रति विश्वास अटूट है। मुझे पता है कि सब कुछ सही हो जाएगा और मैं कुछ ही समय में अपने बच्चे के साथ रात्रि भोजन करूँगी।

यदि उसके सभी विचार जिनमें 'मैं', 'मेरा', 'मुझे' आदि जुड़े हैं की गठरी बाँध दी जाए तो उस गठरी को चंद्रा की पहचान कहेंगे। आसक्ति के कारण वह इस गठरी को छाती से लगाए बैठी थी। देवगण उसकी सहायता के लिए वहाँ पर उपस्थित थे परंतु वे कोई सहायता तभी कर सकते थे जब वह अपनी गठरी को एक ओर रखती। साधारण

समस्याओं के समाधान के लिए इस गठरी में थोड़ा बहुत परिवर्तन ही आवश्यक होता है। परंतु चंद्रा की समस्या इतनी गहरी थी कि उसे अपनी गठरी का आधा भाग त्यागना था। उसे इस बात की चिंता करने की आवश्यकता नहीं थी कि वह गठरी का आधा सामान कहाँ उड़ेलती। उसे केवल गठरी को ढीला करने की आवश्यकता थी। शेष कार्य करने के लिए देवता वहाँ उपस्थित थे।

यदि वह अपनी गठरी को ढीला छोड़ देती तो उसके विचार कुछ ऐसे होते - मैं चंद्रा हूँ। *क्या सच में मैं चंद्रा हूँ?* मैं इस और इस देवता में विश्वास रखती हूँ। *परंतु क्यों?* मेरा बच्चा मृत्यु से जूझ रहा है। *यह वास्तविकता है या एक बुरा सपना?* मेरा अपने देवता के प्रति विश्वास अटूट है। *किसी के प्रति विश्वास होना विश्वास न होने से बेहतर कैसे हैं? ये दोनों मानवीय भावनाएँ ही तो हैं। मेरा देवता यह क्यों चाहेगा कि मैं इनमें से एक भावना को धारण करूं?* मुझे पता है कि सब कुछ सही हो जाएगा और मैं कुछ ही समय में अपने बच्चे के साथ रात्रि भोजन करूँगी। *मेरे लिए सही क्या है और मिथ्या क्या है यह कौन निर्धारित करेगा? सही और मिथ्या की धारणाएँ मेरे छोटे से मस्तिष्क में किसने बिठा रखी हैं?*

अपनी ही पहचान को आत्म जागृति के प्रकाश में या तो वह सत्य अन्वेषक देख सकता है जो परम सत्य को जानने के बिल्कुल समीप पहुँच चुका है, या वह भक्त जो समय के 14 तारों पर स्वामित्व प्राप्त कर चुका होता है। चंद्रा इन दोनों में से कोई भी नहीं थी। उसके पास समय के केवल 13 तारों का स्वामित्व था। केवल एक चीज थी जो उसकी आसक्ति को तोड़कर उसकी पहचान की गठरी से पकड़ ढीली कर सकती थी - किसी प्रियजन की मृत्यु या फिर कोई अन्य त्रासदी। उसकी आत्मा का विभाजन तभी संभव था जब उसके बच्चे की मृत्यु हो जाती और कुछ क्षण के लिए उसे सब कुछ अनजान लगने लगता। विचित्र द्वंद्व की स्थिति थी! उसके बच्चे को मृत्यु से बचाने के लिए उसकी आत्मा का विभाजन आवश्यक था और उसकी आत्मा के विभाजन के लिए उसके बच्चे की मृत्यु आवश्यक थी। ऐसी स्थितियाँ मानव जीवन में प्रायः तब आती हैं जब देवगण सहायता के लिए तैयार होते हैं परंतु मानव आत्माएँ आसक्ति की गठरी से अपनी पकड़ ढीली नहीं कर पातीं।

अब केवल कुछ क्षण शेष थे। उस बच्चे की देह उसकी आत्मा के वापिस लौटने की प्रतीक्षा समाप्त करके मृत्यु को प्राप्त होने वाली थी। हनुमान जी ने तुरंत वायु के देवता श्री पवनदेव से सहायता मांगी।

"उन देव को मेरा प्रणाम जो नश्वर जीवो की देहों में निवास करते हैं! कोई उनको पवन कहता है तो कोई प्राण। सजीव वस्तुओं में तब गति आती है जब वे उनके भीतर

निवास करते हैं और निर्जीवों में तब गति आती है जब वे उनको बाहर से धकेलते हैं। चंद्रा के बच्चे की नश्वर देह मेरे सामने उपस्थित है। आत्मा भी उसको छोड़ कर चली गई है परंतु प्राण अभी भी उसमें निवास कर रहे हैं। यह उनकी महानता को दर्शाता है। वे हर नश्वर तन को अपनी आत्मा पुनः बुलाने का पूरा अवसर देते हैं। मैं उनसे प्रार्थना करता हूँ कि वे आज थोड़े कम दयालु हो जाएँ। मैं उनसे प्रार्थना करता हूँ कि वे चंद्रा के बच्चे की देह को तुरंत छोड़ दें।" हनुमान जी ने दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना की।

"इसे कम दयालु होना नहीं, क्रूरता कहते हैं।" पवन देव दहाड़े। उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था कि हनुमान जी उनसे ऐसी प्रार्थना कर सकते थे। चंद्रा के घर के आंगन में एक बवंडर जैसा कुछ उठा। यदि वह किसी साधारण दिन का मौसम का परिवर्तन होता तो कदाचित चंद्रा अपने बाहर सूख रहे कपड़ों तथा अन्य घर के सामानों को आंधी से बचाने के लिए दौड़ती। परंतु आज वह बवंडर उसके जीवन में आए चक्रवात के सामने कुछ नहीं था। मृत्यु उसके सभी सपनों को निगल जाने को आतुर थी।

हनुमान जी ने पवन देव से पुनः प्रार्थना की।

पवन देव ने हनुमान जी को स्मरण कराया, "हे हनुमान, आपको इस बच्चे की रक्षा करनी चाहिए। इसको कुछ क्षण और श्वास लेने दो। क्या पता इन कुछ क्षणों में मृत्यु को हराने का कोई उपाय छिपा हो। उसके पश्चात, जैसा कि निश्चित है, मैं उसकी देह को छोड़ दूंगा। परंतु आप मुझसे अभी उसकी देह को छोड़ने का निवेदन मत करो।"

हनुमान जी उस बवंडर के ठीक बीचों-बीच अपना एक घुटना टिकाकर बैठ गए। हाथ जोड़कर व सिर झुकाकर उन्होंने प्रार्थना की, "हे पवनदेव, कृपया उस बच्चे की देह को अभी त्याग दीजिए।"

बवंडर थम गया और साथ ही उस बच्चे की श्वासें भी। ऐसा लगा मानो चंद्रा का पूरा घर वायुहीन हो गया हो। पवन देव उसके बच्चे की देह को छोड़ चुके थे और कदाचित उसके घर को भी।

कामचलाऊ चिकित्सक ने रोगी को मृत घोषित कर दिया और चंद्रा के पति के कंधे पर हाथ रख कर बोला, "साहस से काम लो।"

चंद्रा के पति ने बिल्कुल साहस छोड़ दिया और बिलख-बिलख कर रोने लगा।

परंतु चंद्रा सुन्न हो गई थी। उसे सब कुछ अनजान लग रहा था। उसके कान बहरे हो गए थे और आँखें चौड़ी हो गई थीं। जब उसका बच्चा मौत से जूझ रहा था तब कई पड़ोसी भी वहाँ एकत्रित हो गए थे। उन पड़ोसियों में से महिलाएँ रोने लगी। उनमें से एक ने चंद्रा के

कंधे पकड़कर उसको ऐसे झकझोरा जैसे वह पानी के रिक्त पात्र को हिलाकर एक दो बूंद निकालने का प्रयास कर रही हो। परंतु चंद्रा की आंखों से एक बूंद भी पानी नहीं निकला।

उसके चेहरे पर कोई भाव नहीं थे। शारीरिक रूप से वह मानो बुत बन गई थी। परंतु उसकी आत्मा अंतर्द्वंद से कुलबुला रही थी। उसकी आत्मा का एक भाग लगभग यह मान चुका था कि उसे बच्चे के खोने के दु:ख का अनुभव जीना पड़ेगा। परंतु उसकी आत्मा का दूसरा भाग इस सबको एक बुरा सपना समझ रहा था। ये दोनों भाग आपस में टकराकर उन चिरकालीन प्रश्नों की चिंगारियाँ उत्पन्न कर रहे थे जो प्रश्न बड़े-बड़े राजाओं को संन्यास लेने पर विवश करते आ रहे हैं - मैं कौन हूँ? यह संसार क्या है? मृत्यु क्या है?

कुछ क्षण के इस अंतर्द्वंद के पश्चात, जो उसकी आत्मा को दो भागों में विभाजित करने ही वाला था, वह हँसने लगी। उसके पड़ोसियों ने सोचा कि वह दु:ख के कारण मानसिक रोगी हो गई थी।

"रो दे, चंद्रा, रो दे ... आपने अपना एक बच्चा खोया है। वह मर चुका है... रो दे... आंसुओं की बाढ़ बन जा... चिल्ला-चिल्ला कर रो..." उसकी सहेलियाँ उसको झकझोर कर और चांटे मारकर वास्तविकता में लाने का प्रयास कर रही थीं।

बच्चे की देह में श्वास नहीं चल रहे थे किंतु वह मृत नहीं हुई थी। वह अंतिम क्षण भी आ गया जब वह आत्मा के पुनः आने की सभी आशाएँ त्यागकर मृत होने वाली थी। आत्मा के पुनः आने का द्वार बंद होने वाला था। एक बार द्वार बंद हो जाता तो देवता भी आत्मा का प्रवेश देह में नहीं करवा सकते थे।

"उसकी आत्मा विभाजित नहीं हुई है, हनुमान जी! किसी दूसरी आत्मा को यहाँ पर बुलाने का प्रबंध कीजिए। देवताओं के लोक से कोई आत्मा यहाँ तुरंत बुलाइए।" काल ने मंत्रणा दी।

हनुमान जी ने प्रतीक्षा की। एक क्षण के लिए उन्होंने इस विकल्प पर भी विचार किया कि वहाँ पर उपस्थित किसी अन्य आत्मा को विभाजित किया जा सकता है या नहीं। उन्होंने चारपाई के आसपास बैठे सभी जनों की आत्मा को देखा और परखा। उन्होंने काल की इस मंत्रणा पर भी काम किया कि देवलोक से कोई आत्मा बुलाई जाए। आत्मा बुलाने का मंत्र उनके होठों पर था। परंतु इस सबके बीच उन्हें अपनी मूल योजना के सफल होने का विश्वास था। और उनका विश्वास मिथ्या सिद्ध नहीं हुआ।

चंद्रा की आत्मा, च13, अंततः दो आत्माओं में विभाजित हो गई - च6 (समय के छह तारों वाली आत्मा) और च7 (समय के सात तारों वाली आत्मा)। च7 आत्मा उसके

बच्चे की देह के साथ जुड़ गई। उसने आँखें खोलीं, उसके होंठ गतिमान हुए और उसने कुछ शब्द बोले जो किसी को समझ नहीं आए। उस घर में व्याप्त शोक की चीखें आश्चर्य की फुसफुसाहटों और सुख की मुस्कुराहटों में तब्दील हो गईं। परंतु इन नई ध्वनियों में चंद्रा की ध्वनि नहीं थी।

चंद्रा भीड़ से निकलकर बरामदे के एक कोने में पहुँच गई थी और अपनी पीठ लगाकर ऐसे बैठी थी जैसे उसका इस घर से कोई संबंध नहीं था। यदि उसकी आंखें न फड़फड़ा रही होती और गर्दन न लचक रही होती तो वह उस माँ की तरह शांत लगती जिसने अभी-अभी भयानक प्रसव पीड़ा से गुजरकर एक बच्चे को जन्म दिया है।

"क्या वह पूरे जीवन ऐसे ही मानसिक रूप से अपंग रहेगी?" काल बोले, "यह न्यायसंगत नहीं है। इस महिला ने इतना अच्छा जीवन व्यतीत किया है कि उसका समय के 13 तारों पर स्वामित्व हो गया था। ऐसी महिला इस तरह मानसिक रूप से अपंग होकर पूरे गाँव में हंसी का पात्र बने, यह कहाँ का न्याय है? यदि बच्चे का जीवन आपके लिए इतना ही महत्त्वपूर्ण था तो आपको देवलोक से कोई आत्मा बुला लेनी चाहिए थी।"

"देवलोक से आत्मा बुलाने की क्या आवश्यकता है यदि मानव स्तर पर कोई समाधान निकल जाए?" हनुमान जी बोले।

"यह उचित नहीं है हनुमान जी। मैं जानता हूँ कि मैं काल हूँ और मेरे मुख से उचित और अनुचित की बातें विचित्र लगती हैं और मैं यह भी जानता हूँ कि यदि इस महिला को अपने बच्चे के जीवन और अपने मानसिक स्वास्थ्य के बीच एक चुनना पड़ता तो वह अपने बच्चे का जीवन ही चुनती। फिर भी..."

"स्वाभाविक रूप से यह सब उसी ने चुना है, काल। उसको विकल्प प्रदान किए गए थे। मैंने तो उसकी आत्मा के विभाजन में मात्र एक कारक की भूमिका अदा की। विभाजन के पश्चात वह स्वयं के लिए च7 आत्मा और अपने बच्चे के लिए च6 आत्मा चुन सकती थी। वह अपने लिए मानसिक स्वास्थ्य और अपने बच्चे के लिए मानसिक अपंगता चुन सकती थी।" हनुमान जी बोले।

यदि आंतरिक संसार के दृष्टिकोण से कहा जाए तो यह कहेंगे कि च13 आत्मा, जिसको हनुमान जी ने विभाजित किया था, ने एक मानसिक रूप से अपंग तन-मन को अपना किरदार चुना था और एक स्वस्थ तन-मन को अपने किरदार का बेटा चुना था।

काल तो अपने स्वभाव के कारण हनुमान जी के इस कारनामे की आलोचना कर रहे थे परंतु अन्य देवी देवता हनुमान जी पर प्रशंसा के फूल बरसा रहे थे। वे इस बात से

प्रभावित थे कि कैसे हनुमान जी ने दिव्य शक्तियों का कम से कम उपयोग करके मानवीय स्तर पर ही अंतिम क्षण में उस बच्चे को बचाने का समाधान ढूँढ निकाला था।

काल ने चंद्रा के जीवन के भविष्य का विश्लेषण करने के पश्चात कहा, "हे हनुमान जी, आपने चंद्रा को मानसिक अपंगता नहीं, मृत्यु दी है। मैं देख सकता हूँ कि अब से ठीक तीन घंटे पश्चात यहाँ पर अंधेरा हो जाएगा। उसका पति खेतों में फसलों की रखवाली कर रहा होगा। उसका बच्चा सो रहा होगा। वह मानसिक अपंगता के कारण रसोई में जाएगी और अपने कपड़ों को आग लगा लेगी। यहाँ से कुछ ही दूरी पर एक मोड़ है जहाँ मृत्यु उसकी प्रतीक्षा कर रही है।"

हनुमान जी मुस्कुराते हुए बोले, "नहीं काल, आपने जो दृश्य बताया है वह उन सहस्त्रों दृश्यों में से एक है जिनमें चंद्रा की आत्मा प्रवेश कर सकती है। जिस मोड़ की आप बात कर रहे हैं उस मोड़ पर चंद्रा की आत्मा नहीं जाएगी। क्या आप एक दूसरा मोड़ देख सकते हैं जहाँ पर चल रहे दृश्य में एक साधु उसके घर पहुँचा है?"

"साधु? साधु अब क्या कर सकता है?" काल बोले, "वह अपनी आत्मा को विभाजित करके एक भाग चंद्रा के बेटे को देने आ रहा था। परंतु चंद्रा के बेटे को अब उसकी आवश्यकता नहीं है।"

"अब वह अपनी आत्मा का एक भाग चंद्रा को देगा।" हनुमान जी ने बताया।

काल ने तर्क दिया, "एक बच्चे को मृत्यु शय्या पर देखकर कदाचित साधु की आत्मा विभाजित होकर उस बच्चे को बचाना चाहती। परंतु अब तो बच्चा स्वस्थ है। तो भला साधु की आत्मा विभाजित क्यों होगी?"

हनुमान जी बोले, "अब चंद्रा की देह को आत्मा की आवश्यकता है। उसको आवश्यकता है समय के सात तारों वाली आत्मा की जो उसकी च6 आत्मा के साथ निवास करके उसका मानसिक स्वास्थ्य बहाल कर सके। मुझे लगता है कि उस साधु की आत्मा इस नेक कार्य के लिए अपना एक भाग अवश्य देना चाहेगी।"

"मुझे इसमें संदेह है।" काल अपने चिरपरिचित ढंग से बोले, "हो सकता है कि आप साधु की आत्मा के विभाजन का कारक बन जाए परंतु आप विभाजित आत्मा के एक भाग को चंद्रा का किरदार जीने के लिए बाध्य नहीं कर सकते। इसके लिए साधु का चंद्रा से संयोजन आवश्यक है और वह यह संयोजन उत्पन्न नहीं कर पाएगा। हो सकता है कि यहाँ पर उपस्थित चंद्रा के पड़ोसी उस साधु को द्वार से ही लौटा दें।"

"ऐसा है क्या?"

"हाँ, हनुमान जी। अगर साधु द्वार से ही नहीं लौटता है तो भी उसके लिए चंद्रा के साथ संयोजन बिठाना असंभव होगा। यहाँ पर उपस्थित चंद्रा के पड़ोसी अपने अज्ञान भरे वचनों से उसके मन में अस्पष्टता के बादल पैदा कर देंगे। यह गाँव अज्ञानियों और घोर निराशावादियों से भरा पड़ा है। अज्ञानी भी ऐसे जो आत्मसंतुष्ट हैं। वे समझते हैं कि वे बहुत बड़े ज्ञानी हैं। जैसे ही वे साधु को देखेंगे वे उसको गाली देना शुरू कर देंगे। इससे साधु को कदाचित क्रोध न आए परंतु चंद्रा की साधु के प्रति आस्था डगमगा जाएगी। और बिना आस्था के साधु और चंद्रा के बीच संयोजन स्थापित नहीं हो पाएगा। मृत्यु शय्या पर पड़े एक निष्छल बालक के साथ संयोजन स्थापित करना अलग बात होती।"

"मैं जानता हूँ, काल।" हनुमान जी ने गहरी श्वास ली और बोले, "परंतु चंद्रा कोई साधारण महिला नहीं है। और वैसे भी इस समय उसके पास कोई मस्तिष्क नहीं है। जनता द्वारा बोले गए शब्दों का साधु के प्रति उसके व्यवहार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।"

कुछ ही क्षणों में वह साधु चंद्रा के घर के द्वार पर पहुँच गया। उसे कुछ नहीं पता था कि उसके पैर उसे उस घर में क्यों खींच लाए थे जहाँ पर भीड़ जमा थी। उसकी आँखें दिव्य दर्शन को तरस रही थीं। परंतु अनायास ही उसके मुख से जो शब्द निकले वे एक भिक्षुक के शब्द थे। उसने भिक्षा में मांगा भी तो भोजन।

जैसा कि काल और हनुमान जी ने अनुमान लगाया था, चंद्रा के बरामदे के सामने एकत्रित आत्मसंतुष्ट अज्ञानियों की उस भीड़ में से टिप्पणियाँ आने लगी। पहली टिप्पणी आई, "कोई भी साधु सूर्यास्त के पश्चात भिक्षा नहीं मांगता। आप एक पाखंडी हो।"

उन मूर्ख पुरुषों में से एक अन्य ध्वनि आई, "स्वादिष्ट भोजन करने का मन हो रहा है क्या? वास्तविक साधु केवल पत्ते खाते हैं और आपको स्वादिष्ट भोजन चाहिए! निकल जाओ यहाँ से!"

साधु धीरे-धीरे बरामदे की ओर ऐसे बढ़ा जैसे कोई हाथी भेड़ियों के झुंड के बीचों-बीच से रास्ता बनाकर चल रहा हो। बरामदे के पास पहुँचकर उसने ध्वनि लगाई, "यह भूखा साधु इस घर की स्वामिनी से भोजन की भिक्षा मांगता है।"

मूर्ख जनों द्वारा की गई टिप्पणियाँ तलवार की मार जैसी थीं परंतु साधू हवा की तरह था। जब मनुष्य में अहम समाप्त हो जाए तो गालियाँ उसके मन में बिना कोई चिन्ह छोड़े आर-पार हो जाती हैं। यदि कोई गाली उसके बाहरी अस्तित्व की किसी परत पर चिपक भी जाती तो वह इस आत्मज्ञान से तुरंत उतर जाती कि यह बाहरी संसार केवल भ्रम है और कुछ भी नहीं।

किसी भी आत्मा के विभाजन के लिए उसको दो ओर से खींचा जाना आवश्यक है - एक ओर से भावनाओं का अतिरेक उसे खींचता है और दूसरी ओर से परम सत्य। भावनाओं का अतिरेक उसे माया की ओर खींचता है और परम सत्य उसे दैवीय दिशा में खींचता है। हनुमान जी यह अपेक्षा कर रहे थे कि मूर्खों की भीड़ द्वारा दी जा रही गालियों से वह साधु अपमानित अनुभव करेगा और अपमान की भावना का अतिरेक उसकी आत्मा को विभाजित करने में सहायक होगा। परंतु वे जैसा सोच रहे थे वैसा हुआ नहीं।

बरामदे में घुसने से पहले साधु ने अपनी दाईं ओर दृष्टि डाली तो उसे प्रकाश की एक आकृति दिखाई दी जो आंगन के उस भाग में उपस्थित थी जो खाली था। वह मूर्खों की भीड़ से निकलकर उस आकृति की ओर तेजी से बढ़ा तो ढलान के कारण गिर पड़ा। पीछे से उन मूर्खों ने पुनः टिप्पणियाँ शुरू कर दीं। परंतु उस साधु का तन और मन किसी दैवीय शक्ति के वश में हो चुका था। जैसे ही वह उठा तो उसने वह दृश्य देखा जिससे उसकी देह ऐसे पिघल गई जैसे कोई मोम का पुतला पिघलता है। अब उसे लग रहा था जैसे वह कोई मानव नहीं अपितु प्रकाश की एक आकृति था। पीछे दीवार के पास लगे हुए चारा काटने के यंत्र का पहिया ऐसे प्रतीत हुआ जैसे वह काल का पहिया हो। अंधेरे से भी अधिक काला! उस यंत्र के पास वह आकृति खड़ी थी जिसको देखने के लिए उसकी आँखें वर्षों से तरस रही थीं! और वह आकृति उस यंत्र की ओर मुख करके ऐसे खड़ी थी जैसे उस यंत्र से कोई मंत्रणा कर रही हो। धीरे-धीरे वह आकृति स्पष्ट होती गई।

एक क्षण पश्चात वह साधु उस आकृति अर्थात हनुमान जी के चरणों में साष्टांग प्रणाम कर रहा था।

"बंद करो यह तंत्र मंत्र। आप किसके चरणों में पसरे हुए हो, पाखंडी कहीं के? खड़े हो जाओ और घर से बाहर निकल जाओ।" मूर्खों की भीड़ में से आ रही आवाजें साधु को पुनः सुनाई देने लगीं और चारा काटने की मशीन के पास खड़ी आकृति उसको दिखाई देना बंद हो गई।

स्वप्न प्रायः अधूरे रहते हैं परंतु उसने जो दृश्य देखा था वह पूर्ण था और परम आनंददायी था। वह स्वप्न नहीं था। उसकी चिरंजीवी देव हनुमान जी से मिलने की इच्छा अंततः पूर्ण हो गई थी।

वह मुस्कुराते हुए खड़ा हुआ और सीधा बरामदे की ओर चला। वह जानता था कि वह किसी दिव्य कार्य के लिए वहाँ पर था। परंतु वह यह नहीं जानता था कि वह कार्य क्या था। और उसे यह जानने की इच्छा भी नहीं हुई। उसके पैर यदि उसको मृत्यु के मुख में भी ले जाते तो भी वह जाने को तैयार था।

"देवी।" उसने चंद्रा को संबोधित किया। चंद्रा को उसकी सहेलियों ने बलपूर्वक चारपाई के पास बिठा रखा था और उसके हाथ में पानी का एक पात्र पकड़ा रखा था। साधु ने सोचा कि वे महिलाएँ कोई कर्मकांड कर रही थीं। वह नहीं जानता था कि चारपाई पर लेटा बच्चा कुछ क्षण पहले मृत घोषित हो चुका था और उसकी माता मानसिक अपंगता को प्राप्त हो चुकी थी। वे महिलाएँ कोई कर्मकांड नहीं कर रही थीं। यह सोचकर कि चंद्रा सदमे के कारण अपना मानसिक संतुलन खो बैठी थी, उसकी सहेलियाँ उसे यह दिखाने की चेष्टा कर रही थीं कि उसका बच्चा स्वस्थ और जीवित था।

चंद्रा ने पागलों की तरह अपना सिर लटकाया और रिक्त भाव से साधु को देखा। यदि कोई वानर ऐसी प्रतिक्रिया देता तो देखने वाले उसे न केवल साधारण बात मानते अपितु उसमें मनोरंजन भी ढूँढ लेते। परंतु वहीं प्रतिक्रिया एक वयस्क महिला दे रही थी तो अन्य मनुष्य उसे मानसिक रोगी समझ रहे थे। परंतु साधु ने उसमें एक बालक जैसी निर्मलता देखी।

"आप मुझे इस घर की माननीय स्वामिनी लग रही हैं।" साधु चंद्रा को संबोधित करते हुए बोला, "क्या मुझे खाने के लिए कुछ मिल सकता है? मैं समीप के जंगल से भटकते हुए यहाँ आया हूँ।"

"स्वामिनी?" चंद्रा अपने सिर को विचित्र तरह से घुमाते हुए बोली। उसने एक क्षण अपने बच्चे की ओर देखा और थोड़े से अंतराल के पश्चात आँखें बंद करके उच्च स्वर में हंसी निकालते हुए वही शब्द दोहराया, "स्वामिनी!"

इससे उसका बच्चा डर गया और रोने लगा। चंद्रा की सहेली ने चंद्रा का हाथ पकड़कर उसे एक ओर किया और स्वयं उसके स्थान पर बैठ गई और उसके बच्चे को शांत करने लगी।

चंद्रा के पति ने साधु से निवेदन किया, "हे श्रीमान! यह हमारे लिए उचित समय नहीं है। कृपया आप कुछ समय पश्चात आना।"

"समय सदा उचित होता है।" चंद्रा की ध्वनि में ये ज्ञान भरे शब्द गूँजे। वह बरामदे के दूसरे भाग में पहुँच गई थी जहाँ पर रिक्त स्थान था। वहाँ पर उसने एक चटाई बिछाई। कुछ पल पश्चात वह साधु उस चटाई पर बैठ गया; उसने सोचा कि चटाई उसी के लिए बिछाई गई थी।

चंद्रा रसोई में गई और भोजन ले आई। उसके होंठ लगातार चल रहे थे। वह बुदबुदा रही थी, "मैं स्वामिनी नहीं, मैं तो बंजारन हूँ।"

किसी और को चाहे वह पागल लगे परंतु साधु को उसके व्यवहार में एक भव्य निष्कपटता अनुभव हुई। वहाँ पर उपस्थित अन्य जन यदि अंधेरी रात थे तो चंद्रा सुबह की किरण। अन्य जन जहाँ झगड़ालू और आलोचनात्मक थे, चंद्रा उनके बिल्कुल विपरीत दिव्यता की मूर्ति थी। वह जो कुछ भी बोल रही थी उसमें परम ज्ञान का अमृत था। एक आत्मा बंजारन की तरह ही तो होती है जो एक दृश्य से दूसरे दृश्य में भ्रमण करती रहती है। केवल अज्ञान आत्मा को यह भ्रम कराता है कि वह नश्वर चीजों की स्वामिनी है।

"नहीं... नहीं..." चंद्रा बच्चे की भांति अपने ही किसी प्रश्न का उत्तर देती हुई रसोई से आई और भोजन साधु के पास रखी एक मेज पर रख दिया। उसने साधु की ओर कुछ संकेत किया जो किसी को समझ नहीं आया और तत्पश्चात वापिस दौड़ती हुई रसोई में चली गई।

साधु अब उस मेज के पास खड़ा प्रभु की यह अद्भुत लीला देख रहा था।

"हाँ... हां..." चंद्रा पुनः अपने ही किसी प्रश्न का उत्तर देते हुए रसोई से आई और कुछ और भोजन मेज पर रख दिया।

"मैं बंजारन हूं... मैं भोजन की भिक्षा मांगती हूँ। आप स्वामी हैं।" चंद्रा के शब्द उसके विचित्र तरह से हिल रहे होठों और अनियंत्रित रूप से लटक रहे सिर के कारण किसी मदमस्त भक्त द्वारा गाए जा रहे भजन के बोल लग रहे थे। आश्चर्य की बात यह थी कि वह उस चटाई पर स्वयं बैठ गई जहाँ से वह साधु अभी-अभी उठा था।

इस बीच उसके घर में उपस्थित उसके 'शुभचिंतक' पड़ोसी वहाँ से धीरे-धीरे चले गए थे। यह मूर्खतापूर्ण व्यवहार उन तथाकथित ज्ञानियों की समझ से बाहर था। कोई भी समझदार व्यक्ति चंद्रा के इस व्यवहार को हास्यप्रद मानता और आवश्यकता से अधिक समझदार व्यक्ति इसको मूर्खता मानता। परंतु उस साधु के लिए इसमें जानने या मानने वाली कोई बात ही नहीं थी। यह तो पवित्रता और करुणा की वह वर्षा थी जिसे केवल अनुभव किया जा सकता है। साधु ने ऐसी करुणा कई वर्षों पश्चात देखी थी। वह इससे पहले अहंकार को करुणा के भेष में देखता आया था। उसने जीवन भर ऐसे जन देखे थे जिनके भलाई के कार्यों में उनके स्वार्थ के कार्यों से अधिक अहंकार होता था।

साधु ने उस घर के स्वामी का किरदार निभाना शुरू कर दिया और चंद्रा को भोजन परोसने लगा। वह भावनाओं से इतना ओत-प्रोत हो गया कि उसकी आंखों से आँसू छलक आए। अगले ही क्षण उसे आत्मज्ञान का बोध हुआ कि यह भी तो माया ही थी।

माया के पास किसी भी आत्मा को खींचने के लिए दो तरह की रस्सियाँ होती हैं - नकारात्मकता की रस्सियाँ और सकारात्मकता की रस्सियाँ। जब वह भीड़ साधु को गालियाँ दे रही थी तब माया उसकी आत्मा को नकारात्मकता की रस्सियों से खींचने का प्रयास कर रही थी जिसमें वह असफल रही। अब जब उसने चंद्रा की करुणा और निश्छलता देखी तो वह सकारात्मक भावनाओं से ओत प्रोत हो गया। अर्थात माया ने सकारात्मकता की रस्सियों से उसको खींच लिया था।

जब उसकी आत्मा को एक ओर से माया ने और दूसरी ओर से परम सत्य ने खींचा तो वह विभाजित हो गई। अर्थात उसकी 'सा14' आत्मा जिसका समय के 14 तारों पर स्वामित्व था, सात सात तारों वाली दो 'सा7' आत्माओं में विभाजित हो गई। उनमें से एक चंद्रा के किरदार के साथ जुड़ गई और दूसरी उसके साथ ही रही।

अब चंद्रा के किरदार के साथ दो आत्माएँ जुड़ गई थीं - च6 और सा7। जब दो आत्माएँ एक किरदार के साथ जुड़ती हैं तो दोनों कुछ समय के पश्चात शून्य में लीन हो जाती हैं अर्थात जीवन-मरण के चक्र से मुक्ति पा लेती हैं। यह प्रक्रिया एक से अधिक जीवन भी चल सकती है।

चंद्रा का देहावसान होने के पश्चात उसकी आत्माओं को अगला जन्म लेने में समय लगा। उसका कारण यह था कि उसकी च6 आत्मा की जो जुड़वाँ च7 आत्मा थी वह उसके बच्चे के किरदार के साथ जुड़ी थी। जब तक उसका बच्चा बूढ़ा होकर प्राकृतिक रूप से मृत्यु को प्राप्त नहीं हो गया तब तक वह बिना कोई नया जन्म लिए सपनों के संसार में दृश्य जीती रही।

अब वह मातंग समाज में उर्मी के रूप में पैदा हो चुकी है। अब भी उसकी दो आत्माएँ हैं - च6 और सा7। उसकी च6 आत्मा की जुड़वाँ आत्मा च7, जो पिछले जन्म में उसके बच्चे के साथ जुड़ी हुई थी, अब रवि नाम के एक किरदार से जुड़ी हुई है जो मातंगों के जंगल से बहुत दूर किसी नगर में रहता है। अर्थात उसके पिछले जन्म का बच्चा अब रवि नाम के एक मनुष्य के रूप में पैदा हुआ है। उर्मी और रवि इस जन्म में लगभग एक ही आयु के हैं।

उर्मी को पड़ने वाले दौरों का कारण है उसकी च6 आत्मा की च7 आत्मा से मिलन की गहरी इच्छा। उर्मी इस जंगल में एक पेड़ के नीचे विश्राम कर रही है जबकि रवि सैकड़ों मील दूर अपने कार्यालय में कार्य कर रहा है। उन्हें मिलवाना आवश्यक है। तभी उर्मी के दौरे सदा-सदा के लिए समाप्त हो सकते हैं।

अध्याय 5

मृत्यु को हराना

उर्मी के पिछले जन्म के वे दृश्य जो इस जन्म में उसके रोग का कारण थे अब उजागर हो चुके थे। हनुमान जी ने अश्विन देवों को कहा, "इसका यह बुरा रोग तब समाप्त होगा जब वह अपने पिछले जन्म के बच्चे अर्थात रवि से मिलेगी।"

अश्विन देवों में से एक बोले, "ऐसा कैसे संभव है हनुमान जी? उर्मी तो पहले कभी इस जंगल से बाहर भी नहीं निकली है और रवि यहाँ से सैकड़ों मील दूर एक नगर में रहता है। उर्मी रावण के नगर के पास है और रवि राम के नगर के पास। उनकी संस्कृति, भाषा, चाल-चलन सब एक दूसरे से भिन्न है। उनमें कोई भी समानता नहीं है।"

हनुमान जी ने प्रसन्न भाव से उत्तर दिया, "उनमें एक तो समानता यह है कि वे दोनों मेरे भक्त हैं। और इससे बड़ी समानता क्या होगी कि उनकी आत्माएँ जुड़वाँ हैं।"

अश्विन देवों में से दूसरे ने उत्साह से पूछा, "हनुमान जी, तो क्या आप उनको मिलाने के लिए वैसे ही लीला करने वाले हैं जैसे आपने हिमालय से एक पर्वत लंका में लाकर की थी? क्या आप उर्मी को उड़ाकर रवि के नगर ले जाने वाले हैं?"

"नहीं।"

"तो क्या उर्मी यहाँ से वहाँ जाने वाली है? परंतु वह एक साधारण महिला है, हनुमान जी! वह आपकी तरह एक स्थान से दूसरे स्थान पर बिना समय लिए नहीं जा सकती।"

"हाँ, जा सकती है।" हनुमान जी ने विस्तृत मुस्कान के साथ कहा, "केवल उनकी आत्माओं का मिलना आवश्यक है, उनके तन-मन का मिलना आवश्यक नहीं।"

हनुमान जी की योजना थी कि उन दोनों आत्माओं को - च6 और च7 - को स्वप्नलोक में मिलाया जाए और तत्पश्चात यह उन्हीं पर छोड़ा जाए कि वे आगे की यात्रा कैसे तय करना चाहती हैं।

मानव संसार वैसे तो अज्ञानी आत्माओं के लिए कारागार की तरह है परंतु इसमें एक अच्छी बात यह है कि जब मानव तन थककर सो जाता है तब आत्माएँ यहाँ से स्वतंत्र होकर स्वप्नलोक में विचरण कर सकती हैं। जैसे ही तन सोता है, आत्मा स्वप्नलोक को

प्रस्थान कर जाती है। आत्मा वैसे तो हर इच्छा को मानव संसार में पूर्ण करने का प्रयास करती है परंतु जो इच्छा यहाँ पर पूर्ण करना असंभव है वह स्वप्नलोक में पूर्ण कर लेती है।

इच्छाएँ कल्पना से जन्म लेती हैं और कल्पनाएँ बाहरी संसार के दृश्यों से प्रेरित होती हैं। महेश नाम का एक व्यक्ति अभी-अभी एक मित्र के पिता के दाह संस्कार से लौटा है जिसकी एक दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी। दाह संस्कार के दृश्यों से उसके मन में एक चिंता पैदा होती है - 'यदि मेरे पिता की किसी दुर्घटना में मृत्यु हो गई तो क्या होगा?'

इससे एक हल्की-सी कल्पना प्रेरित होती है; वह अपने पिता की मृत्यु के दृश्य की कल्पना करता है। यदि यह कल्पना उसकी आत्मा तक पहुँच जाती है तो इच्छा में बदल जाती है। यद्यपि अधिकतर कल्पनाएँ मस्तिष्क के द्वारा सोख ली जाती हैं। उदाहरण के तौर पर महेश का मस्तिष्क एक प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है जिससे उसकी वह कल्पना मर जाती है - 'प्रभु मेरे परिवार की रक्षा कर रहे हैं।'

यदि उसका मन इस कल्पना को रोकने में असफल रहता है तो यह इच्छा के रूप में आत्मा तक पहुँच जाती है। तत्पश्चात आत्मा को इस इच्छा का निराकरण करने के लिए कोई रास्ता ढूँढना पड़ता है। वह ऐसे दृश्य में प्रवेश करती है जिसमें महेश के पिता की दुर्घटना में मृत्यु हो जाती है परंतु वह दृश्य स्वप्नलोक में होता है, मानवलोक में नहीं।

मनुष्य के मस्तिष्क में नित्य सैकड़ों कल्पनाएँ अंकुरित होती हैं। उनमें से कई इच्छाएँ बन जाती हैं और आत्मा के ऊपर लद जाती हैं जिसके कारण आत्मा का मानव संसार के दृश्यों में विचरण कठिन हो जाता है। इन अवांछित इच्छाओं से छुटकारा पाने के लिए आत्मा मानव संसार की देह को सुप्त अवस्था में छोड़कर स्वप्नलोक चली जाती है जहाँ वह विभिन्न अस्थायी देहों को धारण करके अवांछित इच्छाएँ पूर्ण करती है।

जब कोई इच्छा मानव संसार में पूर्ण करना असंभव होता है तब वह स्वप्नलोक में पूरी हो जाती है। अपने पिता की मृत्यु स्वप्न में देखने पर महेश को चिंतित नहीं अपितु प्रसन्न होना चाहिए। इसका यही अर्थ है कि जो इच्छा मानव संसार में पूर्ण होकर उसे वास्तविक दुःख दे सकती थी वह स्वप्नलोक में समाप्त हो गई। जागने के पश्चात यदि सपनों को स्मरण किया जाए तो पुनः कल्पनाएँ अंकुरित होकर नई इच्छाओं को जन्म दे सकती हैं। यदि उन कल्पनाओं में से एक कल्पना उसके पिता की दुर्घटना की है तो उसे पुनः वही स्वप्न आ सकता है।

जब कोई भक्त प्रभु से मिलन के समीप होता है तब उसकी आत्मा के दो प्रतिबिंब बन जाते हैं। उर्मी की आत्मा के भी दो प्रतिबिंब थे - च6 आत्मा और सा7 आत्मा। भाषा की सरलता के लिए हम उन प्रतिबिंबों को अलग-अलग आत्माएँ कह सकते हैं। च6 आत्मा

उसकी अपनी थी जो पिछले जन्म में चंद्रा का किरदार जी रही थी। जबकि सा7 आत्मा उसे पिछले जन्म में एक साधु ने प्रदान की थी। च6 आत्मा की जुड़वाँ आत्मा च7 थी जो इस जन्म में रवि नामक एक किरदार को जी रही थी। ये दोनों जुड़वाँ आत्माएँ एक दूसरे से मिलने को तरस रही थीं।

मिलन की यह इच्छा मानवलोक में पूर्ण करना असंभव था। इसलिए उर्मी की आत्मा इस इच्छा को स्वप्नलोक में पूर्ण करने का प्रयास करती आ रही थी। उसे प्रायः एक सपना आता था। उस सपने में वह अपने बच्चे को खोने के दुःख में रो रही होती थी। वह सपने में ऐसा अनुभव करती थी जैसे उसका एक भाग उससे बिछड़ गया हो।

दौरा समाप्त होने के पश्चात जब वह एक पेड़ के नीचे लेटी थी और हनुमान जी उसके सिरहाने थे और अश्विन देव उसके दोनों ओर थे तब उसे एक विशेष नींद आ गई और उसकी आत्मा स्वप्नलोक में पहुँच गई। यह नींद विशेष इसलिए थी कि हनुमान जी उसकी आत्मा की यात्रा का निर्देशन कर रहे थे। परंतु सपना उसने वही देखा जो वह प्रायः देखती आ रही थी।

वहाँ से मीलों दूर रवि नाम का एक युवा अपने कार्यालय में किसी समस्या का हल ढूँढने पर काम कर रहा था। वह पिछली रात भी सोया नहीं था क्योंकि वह उसी समस्या पर अपने घर से काम कर रहा था। उसके मस्तिष्क की नसों में जैसे आग लगी हुई थी। उसकी आँखें शुष्क और थकी हुई थीं। उसकी देह से सारी उर्जा निकल चुकी थी। कई घंटे के प्रयासों के पश्चात उसे अपनी समस्या के समाधान का एक विकल्प मिला था। वह उसी विकल्प को परख रहा था। एक सकारात्मक परिणाम की आशा के सहारे ही उसका थका हुआ मस्तिष्क किसी तरह जागृत था।

परिणाम नकारात्मक निकला। आशा का दीपक बुझ गया और उसे कुर्सी पर ही नींद आ गई। उसे सपना वही आया जो उसे प्रायः आता था। उसने एक अनजान महिला को रोते हुए देखा। कहीं न कहीं उसके मन में यह भाव था कि वह उस महिला के दुःख का कारण था। उसकी सहायता करने के लिए वह अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए तैयार था परंतु वह उसकी ओर एक डग भी नहीं बढ़ा पा रहा था। जड़वत अवस्था में असहाय होकर वह उसे रोता देखता रहा।

तभी हनुमान जी ने उस स्वप्न में प्रवेश किया ताकि वे उन दो आत्माओं का मिलन करा सकें। रवि और उर्मी दोनों ने सपने में एक दिव्य वाणी सुनी जो उनका नाम पुकार रही थी। वे दोनों अनायास ही एक प्रकाश की आकृति की ओर से खिंचते चले गए। उस आकृति ने हनुमान जी का रूप ले लिया।

कुछ क्षण पश्चात उन दोनों ने पुनः वह दिव्य वाणी सुनी जो उनका नाम पुकार रही थी।

रवि नींद से जागा तो उसने पाया कि उसके कार्यालय का एक साथी उसका नाम पुकार रहा था। उर्मी की नींद खुली तो उसने हनुमान जी को उसका नाम पुकारते हुए पाया।

'क्या मैं अब भी स्वप्न में हूँ?' उर्मी के मन में विचार आया क्योंकि हनुमान जी अब भी उसके सामने थे।

"नहीं, आप स्वप्न में नहीं हो।" हनुमान जी ने उसके विचारों को पढ़कर उत्तर दिया, "अपने चारों ओर देखो। आप अपने डेरे के समीप हो। मैं 41 वर्ष पश्चात अपने प्रिय मातंगों से मिलने आया हूँ।"

उर्मी के मस्तिष्क में वास्तविकता की बिजली कौंध गई। उसकी आँखें भर आईं। उसके गले से कोई शब्द नहीं निकले। वह उठ कर बैठी तो तुरंत उसका तन साष्टांग प्रणाम की अवस्था में हनुमान जी के चरणों में गिर पड़ा। उसने स्वप्न में देखे हुए दृश्य को स्मरण करने का प्रयास किया परंतु उसे कुछ स्मरण नहीं आया। एक आत्मा स्वप्नलोक से बहुत ही कम स्मृतियाँ मानवलोक में लेकर आती है और जो लाती है वे भी तुरंत नष्ट हो जाती हैं।

"उठो मेरी बच्ची। अब आपको कभी भी मिर्गी के दौरे नहीं पड़ेंगे।" हनुमान जी बोले।

उर्मी को कोई विस्तृत जानकारी की आवश्यकता नहीं थी। उसका हृदय कृतज्ञता से, उसका मन आनंद से, और उसकी देह एक नई ऊर्जा से भर गई थी।

केवल हनुमान जी जानते थे कि उसकी आत्मा सा7 और रवि की आत्मा च7 की अदला-बदली हो गई थी। अब उसकी देह में जो दो आत्माएँ थी वे च6 और च7 थी। पिछले जन्म में उसके बच्चे के साथ हुए हादसे से पहले उसकी जो 13 तारों वाली आत्मा थी उसी से च6 और च7 नामक प्रतिबिम्ब बने थे।

रवि के भीतर अब सा7 आत्मा थी। आत्मा के परिवर्तन से उसके व्यवहार में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया था। वह जागते ही अपने कार्यालय के कार्य में व्यस्त हो गया। उसे नहीं पता था कि उर्मी नामक किसी कबीलाई महिला के साथ उसका कोई पिछले जन्म का संबंध था।

"देव, आपकी गति तो प्रकाश से भी अधिक है। एक पल पहले आप स्वप्नलोक में थे और अब आप यहाँ पर भी हो।" साष्टांग प्रणाम करने के पश्चात जब उर्मी घुटनों के बल

हनुमान जी के चरणों में बैठी तब उसके मुख से ये शब्द निकले।

"आप भी तो मेरे साथ सपने में थी और अब यहाँ पर भी हो।" हनुमान जी ने एक घुटने पर बैठकर पितृवात्सल्य भाव से ये शब्द कहे।

हनुमान जी उसे यह रहस्य बताने वाले थे कि आत्मा बिना कोई समय लिए कहीं भी यात्रा कर सकती है; बाधा उत्पन्न होती है कर्म और इच्छा की उन प्रकाश पोटलियों के कारण जो आत्मा के ऊपर लदी होती हैं। इससे पहले कि वे अपना व्याख्यान शुरू करते उन्हें वहाँ पर मृत्यु के देवता यम की उपस्थिति अनुभव हुई। उनकी मुस्कान गंभीरता के भाव में बदल गई।

मृत्यु के देवता वहाँ पर क्यों थे? क्या स्वप्नलोक में कुछ समय पहले आत्माओं की अदला-बदली से जो आध्यात्मिक शल्यचिकित्सा हुई थी उसका कोई दुष्प्रभाव मृत्यु के रूप में प्रकट हो रहा था? क्या उस शल्यचिकित्सा में कोई भूल हो गई थी? हनुमान जी ने अपनी आँखें बंद कीं और समय के देवता काल व अन्य देवी देवताओं से संपर्क साधकर यम की उपस्थिति का उद्देश्य जाना। इस दौरान वे उर्मी के समीप ही रहे।

वहाँ पर दोनों अश्विन देव भी उपस्थित थे जो उर्मी को दिखाई नहीं दे रहे थे। उन दोनों ने यम के पास जाकर उससे पूछा, "हे यम, आप यहाँ पर क्यों हैं? यहाँ पर तो कोई अपनी मृत्युशय्या पर दिखाई नहीं दे रहा। उस आत्मा का परिचय दीजिए जिसको आप मृत्यु का अनुभव देने के लिए यहाँ पर उपस्थित हैं।"

"उर्मी।" यम ने भावरहित स्वर में उत्तर दिया।

"क्या?" दोनों अश्विन देव एक साथ बोले, "हे यम, क्या आप देख नहीं रहे हो? और कोई नहीं स्वयं हनुमान जी उसकी रक्षा कर रहे हैं। वह उनकी शिष्या है। आपका यहाँ आने का साहस भी कैसे हुआ?"

"जो भी उसके भाग्य में लिखा है वह तो होना ही है। मुझे नहीं लगता कि हनुमान जी मेरे कार्य में अड़चन पैदा करेंगे।" यम ने उत्तर दिया। इस बार उनकी भावरहित ध्वनि में क्रूरता जान पड़ी।

"भाग्य?" अश्विन देव बलपूर्वक बोले, "वह सुरक्षित हनुमान जी की छांव में बैठी है। वही उसका भाग्य है।"

"उसे वह सुरक्षित छाया छोड़नी ही पड़ेगी।" यम ने फुफकारकर कहा।

"वह कैसे मृत्यु को प्राप्त होगी?" एक अश्विन देव ने उत्तेजित स्वर में कहा, "यह मानव संसार है। यहाँ पर हर घटना का कारण होता है और यहाँ पर हम हर उस कारण को हराने के लिए तैयार हैं जो उसकी मृत्यु को निमंत्रण दे सकता है।"

"भाग्य में जो लिखा है वह होगा। मैं यहाँ पर तर्क-वितर्क करने नहीं आया हूँ।" यम ने उदासीनता पूर्वक कहा और अश्विन देवों से दृष्टि हटाकर उर्मी पर एक दृष्टि डाली।

उर्मी हनुमान जी के चरणों में उस प्रागनुभव की अवस्था में बैठी थी जिसमें मनुष्य अपने तन-मन को भूल जाता है। हनुमान जी को अब उन घटनाओं का पता लग गया था जो उर्मी की मृत्यु का कारण बनने वाली थीं। उन्होंने उर्मी के कंधों पर हाथ रखकर उसको खड़ा किया।

जब उर्मी खड़ी हुई तो भी उसकी आँखें हनुमान जी के चरणों में थीं, सिर झुका हुआ था, हाथ जुड़े हुए थे। उसके मुख पर शांति थी और उसके होठों पर हनुमान जी का संबोधन था।

"उर्मी, आपको एक रहस्य सीखना होगा और बहुत शीघ्र सीखना होगा। हमारे पास समय बहुत कम है परंतु मुझे विश्वास है कि आप यह रहस्य सीख जाओगी।" हनुमान जी की दृष्टि उर्मी के झुके हुए चेहरे पर थी और हाथ उसके कंधों पर थे।

"कम समय?" उर्मी ने एक क्षण के लिए अपनी दृष्टि ऊपर करके उत्सुकता से पूछा।

"उधर उस महिला की ओर देखो।" हनुमान जी ने कुछ दूरी पर दिखाई दे रही एक कबीलाई महिला, जो मातंग नहीं थी, की ओर संकेत किया और बोले, "उसकी भी आपकी तरह एक नश्वर देह है परंतु वह मुझे नहीं देख सकती। आप न केवल मुझे देख सकती हो अपितु मुझसे वार्तालाप भी कर रही हो। इसका क्या कारण है?"

उर्मी ने उस महिला की ओर देखा परंतु इससे पहले कि वह कोई उत्तर दे पाती उसके चिरंजीवी गुरु ने अपने प्रश्न का स्वयं उत्तर दिया, "आप एक शक्तिशाली आत्मा हो। आत्मज्ञान ही शक्ति है। आपकी आत्मा इस धरती पर विचरण कर रही करोड़ों आत्माओं से भी शक्तिशाली है। उनमें से कुछ आत्माएँ मेरी उपस्थिति को अनुभव तो कर सकती हैं परंतु आपकी तरह मुझे देख नहीं सकतीं।"

वे एक क्षण के लिए शांत रहे ताकि उर्मी उनके शब्दों पर ध्यान कर सके।

"उस पक्षी को देखो।" हनुमान जी ने पेड़ की एक शाखा से उड़ान भर रहे कबूतर की ओर संकेत करते हुए कहा, "यह उड़ सकता है, आप क्यों नहीं उड़ सकती? हाँ, आप

उड़ सकती हो। आपकी देह नहीं उड़ सकती क्योंकि इसकी कुछ सीमाएँ हैं परंतु आप एक देह नहीं हो। आप एक आत्मा हो। आप मानव देह को छोड़कर एक पक्षी की देह धारण कर सकती हो और एक अच्छी उड़ान के पश्चात आप पुनः इसी देह में आ सकती हो।"

उर्मी ने आसमान की ओर देखा। कबूतर ऊंचा उड़ता जा रहा था। आसमान में उड़ने के विचार ने उसे अधिक आकर्षित नहीं किया। एक अलग ही विचार उसके मस्तिष्क में आया, "यदि मैं देह बदल सकूँ तो मैं इस पृथ्वी के राजा की देह में प्रवेश करना चाहूँगी। मैं उन सबको दंडित करना चाहूँगी जो जंगल को हानि पहुँचाते हैं। मैं ऐसे नियम बनाना चाहूँगी जिनसे मनुष्यों के लालच पर लगाम लगाई जा सके और पर्यावरण को बचाया जा सके। ..."

"नहीं उर्मी, इस जाल में मत फँसो।" हनुमान जी बोले, "ऐसे विचार मनुष्यों को उनकी देहों से बाँधकर रखते हैं। आपने जो अभी-अभी सोचा उस पर मैं रोशनी डालता हूँ - आपकी यह धारणा है कि राजा किसी साधारण मनुष्य से अधिक शक्तिशाली होते हैं। जंगल से बाहर रहने वाले मनुष्यों के प्रति आपका पूर्वाग्रह है। आप सोचती हो कि वे लालची और बुरे होते हैं। आपने कहीं से यह सीख लिया है कि सत्ता प्रणाली का एक अहम भाग दंड देना भी है। आपकी यह धारणा है कि पर्यावरण की रक्षा करनी चाहिए। शक्तिशाली-कमजोर, लालची-उदार, दंड-पुरस्कार, रक्षा-विनाश आदि के विचार आपको मानव पहचान और मानव देह में बंदी रखते हैं। हाँ, मानव जीवन को जीते समय इन विचारों से संबंध रखना आवश्यक हो जाता है। किंतु यदि आपको अपनी आत्मा स्वतंत्र करनी है तो आपको हर उस चीज, हर उस विचार से मुक्ति पानी होगी जो आपको उर्मी नामक महिला की पहचान में बाँधते हैं।"

उर्मी हनुमान जी द्वारा कहे गए शब्दों का मूल तत्व समझती थी। वह जानती थी कि वे क्या कहना चाह रहे थे। उसका इस बारे में स्वयं का अनुभव भी रहा था। उसने इस अद्वैत भाव को अपने भीतर भी अनुभव किया था। उदाहरण के तौर पर वह अपने समाज के हर नियम का पालन करने और करवाने में विश्वास रखती थी। परंतु उसके साथ-साथ वह ऐसा करने की व्यर्थता को भी समझती थी। वह कभी-कभी उन साधुओं की तरह अनासक्त भाव में लीन हो जाती थी जो जीवन के विरोधाभासों अर्थात अच्छा-बुरा, सही-गलत, ऊंचा-नीचा आदि से परे शून्य अवस्था में लीन रहते हैं।

"आपको अपनी आत्मा की शक्ति को पहचानना होगा, उर्मी। उन लाखों-करोड़ों मनुष्यों की तरह मत रहो जो अपने तन-मन के बंदी हैं।" हनुमान जी ने कहा। उर्मी न केवल उनके शब्दों को सुन रही थी अपितु उन शब्दों को अपने निजी अनुभवों से जोड़कर समझ रही थी।

"मैं आपको समर्पित हूँ, देव। मुझे आप जिस रास्ते भी ले जाना चाहो उसी रास्ते चलने को तैयार हूँ।" उर्मी ने कहा।

"कुछ समय पहले आपकी आत्मा स्वप्नलोक में थी। क्या आपको स्मरण है?" हनुमान जी ने पूछा।

"हाँ, देव। मैंने स्वप्नलोक के बारे में बाबा से जाना है। जब मेरी देह यहाँ पर सो जाती है तब मेरी आत्मा उस लोक में यात्रा करती है।"

"क्या आपने कभी विचार किया है कि आपकी आत्मा सहस्त्रों मील की दूरी बिना समय लिए पूरी कैसे कर लेती है? यदि हम दूरी की बात करें, स्वप्नलोक तो हमारे सूर्यमंडल में भी नहीं है। वहाँ पर देह का जाना असंभव है परंतु आत्मा वहाँ जा सकती है।"

"हाँ, देव। मैंने बाबा से यह ज्ञान प्राप्त किया है। आत्मा ब्रह्मांड में कहीं भी यात्रा कर सकती है..."

"... किंतु केवल तभी जब आत्मा अपने ऊपर लदी कर्म और इच्छाओं की प्रकाश पोटलियों से बाधित न हो।" हनुमान जी ने उर्मी का वाक्य पूरा किया और बोले, "आत्मा के लिए दूरी कोई मायने नहीं रखती। आत्मा के लिए यह वृक्ष उतना ही दूर है जितना चंद्रमा। यदि आपकी आत्मा कर्म और इच्छाओं की प्रकाश पोटलियों से बाधित न हो तो वह चंद्रमा पर भी जा सकती है और सूर्य पर भी। वह भी बिना कोई समय लिए। कर्म और इच्छाओं का सांसारिक भाषा में क्या अर्थ है? कर्म और इच्छाएँ आपकी पहचान बनाती हैं जिसमें आपकी धारणाएँ, चित्तवृत्ति, आपके राग, आपके द्वेष आदि आते हैं। मैं आपसे यह अपेक्षा नहीं रखता कि आप कर्म और इच्छाओं की सभी प्रकाश पोटलियों को तुरंत त्याग दो। मैं आपकी तुलना उन देवी देवताओं से नहीं कर रहा जो ब्रह्मांड के किसी भी कोने में कभी भी जा सकते हैं। परंतु मैं आपसे इतनी अपेक्षा अवश्य करता हूँ कि आप अपने समाज के अन्य जनों से अधिक योग क्षमता दिखाओ। अपनी सीमाओं को बड़ा करो, उर्मी! इससे पहले कि वे सीमाएँ आपको..."

'... मृत्यु की कगार पर ले आएँ,' हनुमान जी अपना वाक्य पूरा करने से पहले रुक गए। परंतु उर्मी स्थिति की गंभीरता को समझ गई थी। उसे अपनी रीढ़ की हड्डी में सिहरन-सी अनुभव हुई। निर्भीकता के प्रतिमान श्री हनुमान जी के समीप खड़े होते हुए भी उसके मन में भय उठने का प्रयास कर रहा था।

"देव, योगियों द्वारा एक देह से दूसरी देह में यात्रा करना कैसा होता है? क्या वह सपनों की तरह होता है जहाँ हम अनियमित और क्रमरहित दृश्य जीते हैं।"

"हाँ, कुछ-कुछ वैसा ही होता है।" हनुमान जी ने उत्तर दिया। वे उर्मी का भय भांप चुके थे। वे आगे बोले, "भय की कोई बात नहीं है। कल्पना करो कि आपके सामने रंगीन परिधानों का ढेर पड़ा है और आपको उसमें से एक परिधान चुनना है। तन परिधानों की तरह होते हैं। आप एक ही परिधान के भीतर बंद हैं - मानव परिधान के भीतर। जब आप अपने आपको इस परिधान से स्वतंत्र कर लेती हो तो आपके लिए बहुत सारे परिधान उपलब्ध हो जाते हैं जिनमें से आप कोई भी पहन सकती हो। आप वही पहनोगी जो आपको सबसे अधिक उपयुक्त लगेगा।"

"हे देव, मैं इस परिधान से मुक्त होने की इच्छा प्रकट करती हूँ। कृपया मेरा पथ प्रदर्शन करें।" उर्मी अपने भय को उच्च स्वर के पीछे छिपाने का प्रयास करते हुए बोली। उसकी दृष्टि भूमि पर थी और गर्दन अकड़ी हुई थी।

एक विशालकाय बादल, जो मृत्यु से भी काला था, आसमान में छाकर सूर्य को निगल चुका था। आंधी आने वाली थी। पक्षी शांत हो चुके थे। पशु अपने ठिकानों की ओर दौड़ रहे थे। वहाँ पर उपस्थित कबीलाई जन भी अपना कार्य शीघ्रता से निपटाने की चेष्टा कर रहे थे ताकि अपने-अपने डेरों की ओर शीघ्र प्रस्थान कर सकें। उर्मी की सहेलियाँ इकट्ठी की गई ईंधन की लकड़ियाँ बाँध रही थीं। उर्मी चूंकि हनुमान जी की दिव्य ज्योति के नीचे खड़ी थी इसलिए उसका ध्यान अपने आसपास बढ़ते जा रहे हैं अंधेरे पर नहीं गया था।

"मैं आपको एक राजा की कहानी सुनाता हूँ।" हनुमान जी ने गहरे ज्ञान को तुरंत प्रदान करने का उपाय निकाला और बोले, "एक राजा का भव्य महल था। वह अन्य राज्यों से मेहमानों को आमंत्रित करके उन्हें अपना महल दिखाता था और इतराता था। यदि उसे अपनी संतान और महल में से एक चुनना होता तो कदाचित वह अपना महल चुनता। इतनी आसक्ति थी उसे वास्तुशिल्प के उस नमूने के प्रति। उसने उस महल को बनवाने में अपने जीवन का अधिकतर भाग व्यय किया था। इतना सुंदर और भव्य घर संसार में कदाचित ही अन्य किसी के पास था। एक दिन एक महात्मा उसके महल पधारे। जब वे भोजन कर रहे थे तब उन्होंने राजा के कर्म और इच्छाओं का गणित पढ़ा और उसके भविष्य में आ रही विपदा को देखा। उन्होंने राजा को बताया, 'यह महल आने वाले शनिवार को जलकर राख हो जाएगा।'

"यह अमंगल भविष्यवाणी सुनकर राजा का हृदय बैठ गया और पैर सुन्न हो गए। वह महात्मा के पैरों में पड़कर गिड़गिड़ाने लगा और सहायता की याचना करने लगा। महात्मा ने एक उपाय सुझाया। बोले, 'यदि आप इस महल को बचाना चाहते हो तो आपको यह महल त्यागना पड़ेगा। आपको इसे पूरी तरह भूलना होगा। शनिवार तक जंगल में

जाकर किसी झोपड़ी में रहो। इस महल के बारे में कोई भी विचार आपको छूना भी नहीं चाहिए।'

"राजा रोने लगा। उसे यह उपाय समस्या से भी बदतर लगा। वह उस महल को कैसे त्याग सकता था जो उसे इतना प्रिय था?

"महात्मा ने राजा की दुविधा को समझा और अपने बताए गए उपाय के पीछे का रहस्य समझाया। बोले, 'बच्चे की तरह रुदन मत करो। आप एक राजा हो। सोचो! भाग्य में यह लिखा है कि आपका घर जल जाएगा, यह नहीं लिखा कि यह महल ही जलेगा। यदि आप शनिवार तक इस महल को त्याग दो और किसी अन्य स्थान को अपना घर बना लो तो आपका नया घर जलेगा, यह महल नहीं।'

"राजा को अब आशा की किरण दिखाई दी। उसने महात्मा द्वारा सुझाए गए उपाय को अपनाने की बजाय अपना ही एक उपाय ढूँढ निकाला। महात्मा को अपना उपाय बताते हुए वह बोला, "हे महात्मा जी! इस महल के प्रति आसक्ति को त्यागना मेरे लिए असंभव है। मैं जागृत अवस्था में हर पल इसके बारे में सोचता हूँ। क्यों न शनिवार को मैं कोई शक्तिशाली मादक पदार्थ ग्रहण कर लूं। मैं गहरी नींद में चला जाऊंगा और आसक्ति की किसी भावना का पैदा होने का प्रश्न ही नहीं उठेगा। तकनीकी रूप से शनिवार को मेरा घर स्वप्नलोक में होगा और मेरा स्वप्नलोक वाला घर ही जलेगा। अधिक से अधिक मुझे एक बुरा सपना आएगा। मेरा मानव संसार का महल सुरक्षित रहेगा।'

"महात्मा ने शांत भाव से कहा, 'जो हल मैंने आपको बताया है, यदि उससे सरल कोई हल होता तो मैं पहले ही आपको बता देता। मेरा गणित कहता है कि आपका मानव संसार का घर जलेगा, स्वप्नलोक का घर नहीं। यदि आप अपने प्रिय महल को बचाना चाहते हो तो आपको वही करना होगा जो मैंने कहा है।'

"भोजन करने के पश्चात महात्मा जी ने प्रस्थान किया परंतु राजा का मन उस महल के विचारों से दूर नहीं हुआ। उसने अपने महल से हर वह चीज हटा दी जिसके कारण आग उत्पन्न हो सकती थी। हर डग पर पानी और रेत का प्रबंध किया गया ताकि आग को रोका जा सके। उसने महल में डग-डग पर सैनिकों को तैनात कर दिया ताकि वे अग्नि से लड़ सकें। शनिवार आया और सुबह सवेरे ही उस शत्रु को भी लाया जो महल को जलाकर राख करने वाला था। विधि का विधान देखिए, शत्रु उस रास्ते से आया जिसकी राजा ने कल्पना भी नहीं की थी। आसमान से एक भयानक बिजली पड़ी और न केवल पूरा महल नष्ट हो गया अपितु महल के स्वामी का दंभ भी।

"वह राजा अपनी संपत्ति से अनासक्त नहीं हो सका परंतु आप हो सकती हो, उर्मी। आप एक मातंग हो और सभी मातंग अपने छोटे-बड़े सभी कर्म अनासक्ति से करते हैं।"

"देव, मेरे पास तो कोई संपत्ति नहीं है। मुझे किस संपत्ति से अनासक्त होना है?" उर्मी ने पूछा।

हनुमान जी ने उत्तर दिया, "वैसे तो इस संसार में कुछ भी अपना नहीं होता। परंतु अज्ञान के कारण मानव यहाँ पर कुछ चीजों को अपना मान बैठता है। मानव देह भी आत्मा की संपत्ति नहीं होती। मातंग होने के कारण आप जानती हो कि आप इस देह रूपी सराय में केवल एक यात्री हो। परंतु आपको इस देह के प्रति जो भी थोड़ी बहुत आसक्ति है उसको भी त्यागना पड़ेगा। आपकी देह पर वही विपत्ति मंडरा रही है जो उस राजा के महल पर मंडरा रही थी।"

"कौन सी विपत्ति, देव? मैं समझी नहीं।"

"मृत्यु।"

जब से हनुमान जी ने उसको देह से अलग होने की तकनीक समझाना शुरू किया था तब से वह भयभीत और चिंतित थी। परंतु मृत्यु की भविष्यवाणी सुनकर उसे डर नहीं लगा अपितु पहले से जो डर और चिंता थी वह समाप्त हो गई।

वह बोली, "मैं समझती हूँ, देव। आप भविष्य देख सकते हैं इसलिए आपको मेरी देह पर मृत्यु का संकट वैसे ही मंडराता दिखाई दे रहा है जैसे उस महात्मा को राजा के महल पर संकट मंडराता दिख रहा था। यदि मैं इस देह को पूरी तरह छोड़ देती हूँ और इसके प्रति सभी आसक्तियाँ समाप्त कर देती हूँ तो यह देह मेरी नहीं रहेगी। जो देह उस समय मेरी होगी वह मृत्यु को प्राप्त होगी, यह देह नहीं।"

"बिल्कुल सही समझा, उर्मी।" हनुमान जी ने गहरी श्वास लेते हुए कहा, "जैसी मैंने अपेक्षा की थी उससे भी अधिक सहजता से आपने इस भविष्यवाणी को स्वीकारा है। मुझे प्रसन्नता है। मृत्यु कोई बहुत बड़ी चीज नहीं है। इससे घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है। जैसे आपकी आत्मा अन्य अनुभव जीती है उसी तरह मृत्यु भी एक अनुभव है जिसको आपकी आत्मा जीती है। यदि भविष्यवाणी मात्र यह होती कि आपकी देह की मृत्यु होगी तो आप स्वप्नलोक में जाकर कोई देह धारण कर सकती थी और उसके माध्यम से मृत्यु का अनुभव कर सकती थी। परंतु भविष्यवाणी यह है कि आपकी उस देह की मृत्यु होगी जो मानव संसार में हो। परंतु मानव संसार में भी ऐसी बहुत सारी देह हैं जो इस समय स्वाभाविक मृत्यु की कगार पर हैं। आप उनमें से किसी भी देह को अपना बनाकर उसके

माध्यम से मृत्यु का अनुभव कर सकती हो और उसके पश्चात इस देह में पुनः आ सकती हो। इससे आपकी यह देह सुरक्षित रहेगी।"

"मेरी आत्मा का पथ प्रदर्शन कीजिए, देव।" उर्मी ने आँखें बंद करके और हाथ जोड़कर विनती की।

हनुमान जी बोले, "मान लो कि वहाँ से आपकी सहेली जानकीरूपा चिल्लाती है - ‘चलो घर चलें’। आपका तन-मन पहचानेगा कि वह आपकी सहेली का स्वर है और उसी के अनुरूप प्रतिक्रिया देगा। उर्मी नामक देह और मन को जैसी प्रतिक्रिया देनी हो उसे देने दो, आपको उस प्रतिक्रिया के साथ जुड़ने की आवश्यकता नहीं है। आप एक आत्मा हो। आपको उर्मी नामक देह से स्वयं को जोड़ने की आवश्यकता नहीं है। आप उस प्रतिक्रिया से स्वयं को अलग करके किसी अन्य देह और मन से जुड़ सकती हो।

उर्मी ने हनुमान जी द्वारा प्रदत्त ज्ञान को अपने मन में चित्रित करने का प्रयास किया।

हनुमान जी आगे बोले, "इस हवा में एक गंध है। उर्मी नामक देह और मन उस गंध को संभावित वर्षा के साथ जोड़ेगी और कदाचित इस बात पर गर्व भी अनुभव करेगी कि वह गंध के आधार पर वर्षा का अनुमान लगा सकती है। आपको उस गर्व की भावना के साथ जुड़ने की आवश्यकता नहीं है। उर्मी जो कर रही है उसे करने दो। आप उर्मी नहीं हो, आप एक आत्मा हो। आप अपनी स्वेच्छा से उर्मी के साथ भी जुड़ सकती हो या किसी अन्य देह के साथ भी।

"मान लो कि आपका मन कुछ ऐसे विचार पैदा करता है - 'वर्षा का मौसम न होते हुए भी वर्षा हो रही है... इसका कारण है मानव द्वारा प्रकृति का शोषण ... लालची जन जो जंगल के बाहर रहते हैं...' आपकी देह और मन उन बाहरी जनों की कल्पना करने लगता है कि वे दिखने में कैसे होते होंगे और उनके मन में क्या-क्या विचार आते होंगे जिनके कारण वे मूर्खतापूर्ण काम करते हैं। यदि उर्मी नाम का कोई किरदार बाहरी जनों को श्राप देता है तो उसे देने दो; यह उसका स्वभाव है। आपको स्वयं को उर्मी के साथ जोड़ने की आवश्यकता नहीं है। आप एक स्वतंत्र आत्मा हो। जब आप उर्मी नामक पहचान को त्याग देती हो तो अन्य कई पहचानें आपके लिए उपलब्ध हो जाती हैं।"

 उर्मी ने एक क्षण ध्यान किया कि वह किस-किस चीज के साथ जुड़ी हुई थी। उसने जाना कि उसके अनुभव क्षेत्र में दो वस्तुएँ थीं - (1) हनुमान जी के शब्द जो उसके मस्तिष्क में पवित्र अमृत बूंदों की तरह टपक रहे थे। (2) उसके चिरंजीवी गुरु का भव्य रूप जो उसके छोटे से मस्तिष्क में पूरी तरह छाया हुआ था।

"हे देव, उर्मी नामक किरदार हनुमान जी नामक एक देवता से जुड़ी है। उसे अपने देव के साथ जैसे जुड़ना है जुड़ी रहे। मैं एक स्वतंत्र आत्मा हूँ। मुझे उसके साथ अपनी पहचान जोड़ने की आवश्यकता नहीं है। मैं ऐसी पहचान के साथ भी स्वयं को जोड़ सकती हूँ जिसने हनुमान नामक शब्द भी कभी नहीं सुना हो। क्या मैं सही कह रही हूँ, देव?" उर्मी ने पूछा।

हनुमान जी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

"यह मैं नहीं हूँ। 'क्या मैं सही कह रही हूँ, देव?' - यह प्रश्न भी उर्मी नामक किरदार ने पूछा है, मैंने नहीं। मैं स्वतंत्र आत्मा हूँ। मैं उर्मी के व्यवहार और गतिविधियों से स्वयं को नहीं जोड़ती।" हनुमान जी द्वारा उत्तर न देने के कारण उपलब्ध शांति और निःशब्दता के क्षण में उसने यह विचार किया।

हनुमान जी बोले, "ध्यान करो, उर्मी। आप इतने सूक्ष्म और विविधतापूर्ण तरीकों से इस संसार को 'उर्मी' के रूप में अनुभव कर रही हो कि आपको स्वयं पता नहीं लग रहा है। जैसे मकड़ी के जाले में एक मक्खी फँसी होती है वैसे ही आप माया के जाल में फँसी हुई हो। एक तार से छुटकारा पाती हो तो दूसरे तार में अटक जाती हो।

"सबसे पहले तो आप इस विविधता को एकरूपता में बदलो। इसके लिए मेरा मंत्र है - राम। इसे आप तब तक जपो जब तक कि आपको हर ओर भगवान राम दिखाई देने लगें। जो भी आपकी इंद्रियों तक पहुँच रहा है उसके स्रोत में आप राम को देखो, हर कण में आप राम को देखो, हर विचार में राम हों, जो भी चीज आप अनुभव कर रही हो उसमें राम हों, उर्मी नामक तन-मन जो इन सब चीजों को अनुभव कर रही है उसमें भी राम हों।

"जब आपके चारों ओर एकरूपता आ जाएगी तो बाहरी संसार मकड़ी के जाल से परिवर्तित होकर मात्र एक तार रह जाएगा। एक तार से छुटकारा पाना बहुत ही सरल है। मैं अब राम नाम का मंत्र जपूँगा। उर्मी नामक देह उस मंत्र से अभिभूत हो जाएगी। वह राम को हर ओर देखने लगेगी। तब आप, अर्थात आत्मा, यह स्पष्ट देख सकोगी कि आपको किस चीज से अलग होना है।

"इस समय एक ओर मकड़ी के जाले जैसा बाहरी संसार है और दूसरी ओर आपकी आत्मा। परंतु राम नाम का मंत्र जपने के पश्चात एक ओर मात्र एक तार जैसा एकरूप संसार होगा और दूसरी ओर आपकी आत्मा। तब आपको केवल उस एक तार से पीछा छुड़ाना होगा।"

"मैं तैयार हूँ, देव।" उर्मी बोली।

जैसे ही हनुमान जी ने जाप शुरू किया, राम नाम की आध्यात्मिक ध्वनि से पूरा वातावरण सराबोर हो गया। परंतु वह ध्वनि केवल उर्मी और वहाँ पर उपस्थित अन्य देवों को सुनाई दे रही थी। शेष सभी ने केवल तेज हो रही हवा की ध्वनि सुनी जो किसी भी क्षण अंधड़ का रूप लेने वाली थी।

जैसे ही राम नाम की ध्वनि की पहली तरंग उर्मी के कानों में पड़ी, उसकी देह से सारा तनाव समाप्त हो गया। उसके हाथ जो पहले जुड़े हुए थे, अब विश्राम की अवस्था में आ गए। उसकी आंखें धीरे-धीरे ऐसे खुलीं जैसे कोई कोंपल खिल रहा हो। उसका झुका हुआ सिर धीरे-धीरे ऐसे उठा जैसे क्षितिज पर सूर्य उदय हो रहा हो। राम नाम का हर शब्द जो उसके कान में पड़ रहा था उसके तन-मन में ही नहीं अपितु उसके बाहर भी परिवर्तन ला रहा था। उसकी आँखों के सामने उपस्थित दृश्य के कण-कण में राम जी की छवि समाती जा रही थी।

कुछ पल पश्चात उसे उस राम नाम के जाप का स्रोत भी दिखाई देना बंद हो गया। हनुमान जी की आकृति, जो राम नाम का जाप कर रही थी, भी दृश्य में उपस्थित हर कण की तरह राम की छवि में तब्दील हो गई।

जब हनुमान जी ने सातवीं बार 'राम' बोला तब उन्होंने देखा कि उर्मी की आत्मा उसकी देह से अलग हुई। उन्होंने आठवीं बार राम नहीं बोला। उन्होंने उर्मी का नाम बोला ताकि वह अपनी देह में वापिस आ सके।

उसकी देह में ऐसी क्रिया हुई जैसे वह गहरी नींद से अचानक उठी हो।

"क्या मैं अपने देह से बाहर की यात्रा करके लौटी हूँ? क्या मैंने अभी-अभी अपनी देह का त्याग किया था?" उर्मी ने विचार किया।

"बहुत अच्छे।" चिरंजीवी गुरु हनुमान जी ने उसकी प्रशंसा की।

"यदि मेरी आत्मा वापिस देह में नहीं लौटती तो क्या होता, देव? मेरी मृत्यु?" उर्मी ने पूछा। उसके माथे पर पसीना और होठों पर सूखापन यह बता रहा था कि उसकी देह ने अचानक आत्मा के चले जाने पर भय की प्रतिक्रिया दी थी।

हनुमान जी ने उत्तर दिया, "उसके बारे में सोचना आपका काम नहीं है। आप एक आत्मा हो। यह देह अपनी रक्षा स्वयं कर सकती है। जहाँ तक मैं देख सकता हूँ आत्मा की अनुपस्थिति में यह देह मृत्यु को प्राप्त नहीं होगी। हाँ, आपकी आत्मा की इस देह में उपस्थिति अवश्य इसकी मृत्यु का कारण बन सकती है। राजा के महल की कहानी स्मरण है ना?"

उर्मी हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर, और भय को मन से भगाने का प्रयास करते हुए बोली, "मुझे केवल उत्सुकता है, देव। जब मेरी देह अभी-अभी आत्मारहित हुई तब उसके साथ क्या हुआ यह मुझे स्मरण नहीं है। न ही मुझे यह स्मरण है कि मेरी आत्मा इस देह से बिछड़कर कहाँ गई थी। आप तो मेरी देह को देख रहे थे। आप तो जानते होंगे कि मेरी देह ने कैसा व्यवहार किया था? और मेरी आत्मा कहाँ गई थी? मेरी आत्मा ने इस देह से बिछड़कर कौन से दृश्य जिए? मुझे कुछ स्मरण क्यों नहीं आ रहा है?"

"क्या आपको सभी सपने स्मरण रहते हैं?" हनुमान जी ने पूछा और तत्पश्चात स्वयं ही उसका उत्तर भी दिया, "नहीं। जब कोई आत्मा बाहर की यात्रा करके पुनः आती है, चाहे वह स्वप्नलोक की यात्रा हो या मानवलोक की, वह या तो बिल्कुल भी स्मृतियाँ नहीं लाती या थोड़ी बहुत स्मृतियाँ लाती है। जैसे कोई यात्री जब लंबी तीर्थ यात्रा पर जाता है तो यह उसी पर निर्भर करता है कि वह अपने परिजनों को पत्र लिखकर अपनी यात्रा के अनुभव को बताता है या नहीं बताता है। जब आपकी आत्मा ने आपकी देह को छोड़ा तब मैंने आपकी देह में कोई विशेष परिवर्तन नहीं देखा। आपकी आत्मा केवल कुछ क्षणों के लिए बाहर गई थी। यदि लंबे समय के लिए भी बाहर गई होती तो भी आपकी देह में कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई देता।"

"देव, यदि मेरी आत्मा एक लंबे समय के लिए इस देह से बाहर रहेगी तो क्या यह देह आत्मारहित रहेगी?"

"हो सकता है आपकी देह में कोई दूसरी आत्मा आ जाए।"

"परंतु देव, मेरा इस देह से निकलने का प्रयोजन इस देह को मृत्यु से बचाना है। यदि मैं इस देह में लौटकर ही न आ पाई तो फिर इस सबका क्या प्रयोजन?" उर्मी ने पूछा। वह अभी तक अपने भय से बाहर नहीं निकल पाई थी।

"आप लौटकर आओगी, उर्मी।" हनुमान जी ने शांत स्वर में कहा, "आपकी आत्मा पूरी तरह स्वतंत्र नहीं है। आपकी आत्मा पर कर्म और इच्छाओं की प्रकाश पोटलियाँ लदी हुई हैं। अभी आपको उनमें से कुछ पोटलियाँ त्यागनी हैं ताकि आपके लिए उर्मी के अलावा अन्य देह उपलब्ध हो जाए। यदि आप सभी कर्म और इच्छाओं का त्याग कर दोगी तो आप शून्य हो जाओगी; आप मोक्ष को प्राप्त हो जाओगी। और यदि आप अपनी इच्छा के अनुसार प्रकाश पोटलियों की घटत और बढ़त कर सकोगी तो आप देवत्व को प्राप्त हो जाओगी। मैं आने वाले दिनों में आप सब मातंगों को वह ब्रह्मज्ञान दूंगा जिससे आपका अपनी आंतरिक शक्तियों से परिचय होगा। इस समय आपके लिए इतना पर्याप्त है कि आप उर्मी की पहचान से स्वयं को अलग कर लो और एक दूसरी पहचान धारण कर लो जो

मैं आपके लिए उपलब्ध करा रहा हूँ। इससे आप अपने ऊपर मंडरा रही मृत्यु को हरा सकोगी। आपकी आत्मा एक गाय की तरह है जिसे अभी एक खूँटे से दूसरे खूँटे पर स्थानांतरित होना है-"

इससे पहले कि हनुमान जी अपना संवाद निष्कर्ष पर पहुँचाते, उर्मी की सहेली जानकीरूपा ने दूर से ही पुकार लगाई, "उर्मी, चलो घर चलते हैं।" उर्मी के अलावा वहाँ पर किसी को भी हनुमान जी दिखाई नहीं दे रहे थे।

उर्मी ने निर्देश पाने के लिए हनुमान जी की ओर देखा।

"जाओ, उर्मी।" हनुमान जी बोले, "परंतु जैसे ही आपको राम नाम का जाप सुनाई दे तो वही करना जो मैंने आपको सिखाया है।"

उसने अपने रक्षक और चिरंजीवी गुरु हनुमान जी को प्रणाम किया। जहाँ पहले उसके अंतर्मन में भय था वहाँ पर अब श्रद्धा ने जगह बना ली थी। वह धीरे-धीरे अपनी सहेलियों की ओर बढ़ी और कदाचित अपनी मृत्यु की ओर भी। हनुमान जी विपरीत दिशा में मुड़कर मृत्यु के देवता की ओर बढ़े।

"हे यम। आश्चर्य आपका नियम है। तो भी मैं कहूँगा कि आपको मेरे शिष्यों के डेरे के पास देखकर मुझे आश्चर्य हुआ।" हनुमान जी ने नश्वर जीवों में सबसे अधिक भय पैदा करने वाले मृत्यु के देवता का अभिवादन करते हुए कहा।

"हनुमान जी, मेरा कार्य सरल करने के लिए धन्यवाद। अश्विन देव कयास लगा रहे थे कि आप मेरे कार्य में बाधा बनेंगे। परंतु मुझे विश्वास था कि आप उर्मी के भाग्य के सामने दीवार बनकर खड़े नहीं होंगे।" यम ने अश्विन देवों की ओर अपनी व्यंग्यात्मक मुस्कान के तीर चलाते हुए कहा।

हनुमान जी ने एक बालक की तरह अनभिज्ञता जताते हुए कहा, "क्यों? उर्मी के साथ क्या होने वाला है? क्या आप उस बेचारी कन्या को मृत्यु का अनुभव देने के लिए यहाँ पर उपस्थित हैं?"

हवा धीरे-धीरे अब अंधड़ का रूप लेने लगी थी।

"आप सब कुछ जानते हैं, हनुमान जी। आप यह जताने का प्रयास मत कीजिए कि आप कुछ नहीं जानते।" यम ने अपनी अशुभ दृष्टि उर्मी पर गाड़ते हुए कहा।

"क्या? क्या वह मृत्यु को प्राप्त होने वाली है? कैसे?" हनुमान जी ने अपनी लीला जारी रखी और यम की दृष्टि का पीछा करते हुए उन्होंने भी उर्मी की ओर देखा।

उनका अंतिम शब्द अंधड़ का रूप ले चुकी हवा की गर्जन में गुम हो गया। यम की दृष्टि एक पेड़ पर टिकी हुई थी। ठीक 11 पल पश्चात उर्मी उस पेड़ के नीचे से गुजरने वाली थी। हवा के झोंके से उस पेड़ की एक बड़ी टहनी टूटकर सीधे उर्मी के सिर पर गिरने वाली थी। भाग्य में उसकी मौत उसी टहनी के द्वारा लिखी हुई थी। यम के अंधेरे से भी काले कपड़ों के बीच चमक रही उसकी मुस्कान ने उर्मी के जीवन की उल्टी गिनती शुरु कर दी थी।

हनुमान जी ने अपने डग यम से दूर उर्मी की ओर बढ़ाए और साथ ही अपने प्रभु श्री राम के नाम का जाप शुरू कर दिया। सबको केवल अंधड़ की गर्जना सुनाई दे रही थी जबकि उर्मी के कानों में राम नाम का मंत्र पहुँच चुका था। जैसा हनुमान जी ने उसको सिखाया था वैसा ही उसने किया और उसके चारों ओर का संसार राम के रंग में रंग गया। उसे केवल राम दिखाई दे रहे थे - कांपते हुए पेड़ों और कंपन की घटना में, गर्जती हुई हवा और गर्जन की घटना में, भयभीत पशु-पक्षियों और भय की घटना में, उड़ती हुई धूल और उड़ान की घटना में, उसकी स्मृति में उपस्थित देवी देवता और दिव्यता की अवधारणा में, उसकी अपनी देह में और देह के बाहरी संसार से अलग होने की अनुभूति में, उसके चलने की घटना में, उसके रुकने की घटना में, हर जगह राम ही राम थे। दसवाँ पल गुजरते ही पूरा संसार उसके लिए राम नाम का एक बड़ा चित्र बन गया था और ग्याहरवें पल में उसकी आत्मा ने उस चित्र से भी मुक्ति पा ली।

भाग्य को छला जा चुका था। पेड़ की टहनी जो गिरकर उर्मी की मृत्यु का कारण बनने वाली थी, गिरी ही नहीं। यम ने देखा कि उर्मी की देह एक पल के लिए उस पेड़ के नीचे ठहरी और तत्पश्चात बिना किसी हानि के आगे बढ़ गई। हनुमान जी ने संतोष की मुस्कान बिखेरी। उर्मी की आत्मा उसकी देह रूपी घर से अलग हो गई थी। ठीक वैसे ही जैसे उस कहानी में राजा को अपने महल से अलग होना था।

"काल... काल..." यम क्रोध से चिल्लाए।

समय के देवता काल प्रकट हुए।

काल ने हाथ जोड़कर यम को बताया, "यम, मेरे भाई, मेरा गणित मिथ्या नहीं था। उर्मी की मृत्यु का अनुभव ग्याहरवें पल शुरू होने वाला था परंतु उसकी आत्मा-"

यम ने काल के कथन को पूरा नहीं होने दिया। उसने बलपूर्वक वायु के देवता पवन का नाम पुकारा जो एक क्षण पश्चात प्रकट हुए। उन्होंने अपना पक्ष रखा, "मुझे टहनी गिराकर उर्मी की आत्मा के लिए मृत्यु का अनुभव शुरू करना था। परंतु मैं क्या करता? उसकी आत्मा तो वहाँ पर थी ही नहीं।"

यम चिल्लाया, "थी ही नहीं का क्या अर्थ है? वह पेड़ के नीचे से होकर ही गुजरी है।"

"शांत हो जाओ, यम। वह वहाँ नहीं है। वह तो केवल उसकी देह है।" पवनदेव ने शांतिपूर्वक कहा।

यम तब जाकर शांत हुए जब उन्हें पता चला कि उर्मी की आत्मा भाग्य के अनुसार मृत्यु का अनुभव प्राप्त कर रही थी, परंतु उर्मी की देह में नहीं अपितु रामनारायण नामक एक वृद्ध की देह के साथ जुड़कर। यही तो उसके भाग्य में लिखा था कि उसे मृत्यु का अनुभव जीना था।

रामनारायण उस जंगल से बहुत दूर एक वृद्धाश्रम में अंतिम श्वास ले रहा एक वृद्ध था। उसकी देह पूरी तरह मृत नहीं हुई थी परंतु उसकी आत्मा देह को त्यागकर अपनी वह इच्छा पूरी करने निकल चुकी थी जो उस देह में रहकर कभी पूरी नहीं हो पाती। उसकी अपूर्ण इच्छा थी परिजनों का प्रेम पाना। उसके परिवार ने उसे वृद्धावस्था में त्याग दिया था और उसकी यह इच्छा उसके स्वयं के परिवार के साथ पूर्ण होना असंभव थी।

हनुमान जी के द्वारा की गई व्यवस्था के अनुसार जैसे ही उर्मी की आत्मा अपनी देह से अलग हुई उसी समय रामनारायण की आत्मा उर्मी की देह के साथ जुड़ गई। उसकी सहेलियों ने उसकी देह में कोई परिवर्तन नहीं देखा। उसकी सहेली जानकीरूपा तेज हवा के कारण संतुलन खो बैठी और उसके सिर के ऊपर रखा लकड़ी का गट्ठा नीचे गिर गया। उर्मी ने अपनी सहेली को उसका गट्ठा उठाने में सहायता की। ऐसा करते समय उसकी देह ने ऐसी कोई विशेष क्रिया नहीं की जिससे यह पता चलता कि उसमें कोई पराई आत्मा प्रविष्ट कर चुकी थी।

एक आत्मा अपनी धारण की हुई पहचान से जानी जाती है, अर्थात उस देह और मन से जानी जाती है जिसके साथ वह जुड़ी होती है। रामनारायण की आत्मा ने उर्मी की पहचान धारण कर ली थी। अब उर्मी के मित्र और परिजन उसके अपने मित्र और परिजन हो गए थे। यदि आत्मा के किसी अन्य देह में प्रविष्ट होने पर देह में कोई असामान्यता आती भी है तो वह केवल किसी आत्मज्ञानी को दिखाई दे सकती है, किसी सामान्य मनुष्य को नहीं।

मातंगों में बाबा आत्मज्ञानी थे इसलिए जैसे ही उर्मी की देह उसके घर पहुँची तो बाबा ने उससे पूछा, "आप कौन हो?"

"मैं उर्मी हूँ, बाबा। आप क्यों पूछ रहे हैं?" उर्मी ने आश्चर्य से प्रश्न किया।

कुछ समय पश्चात हनुमान जी ने बाबा को पूरी घटना का विवरण दिया।

रामनारायण की आत्मा ने उर्मी की देह के साथ जुड़कर अपनी अंतिम इच्छा को पूरा किया और उर्मी की आत्मा ने रामनारायण की देह के साथ जुड़कर अपने भाग्य में लिखा मृत्यु का अनुभव जिया।

जब उर्मी की आत्मा वापिस उर्मी की देह में आई तो मृत्यु के अनुभव के बारे में कुछ धूमिल स्मृतियाँ अपने साथ लाई। उसके मस्तिष्क ने उन स्मृतियों के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि उसने कोई बुरा सपना देखा था।

अध्याय 6

अभिशप्त आत्माएँ

जब आंधी थम गई तब मातंगों ने अपना नित्य प्रतिदिन का कार्य शुरु कर दिया। यह दिन भी अन्य दिनों की तरह ही गुजरा परंतु इसमें एक नई और विशेष बात थी। जैसे-जैसे दिन आगे बढ़ा, मातंगों के उस वर्ग की संख्या बढ़ती गई जिन्हें हनुमान जी के आने की सूचना मिल गई थी। दिन के अंत तक सभी मातंग अलग-अलग घटनाओं में हनुमान जी से मिल चुके थे।

दिन के दौरान जिस-जिस मातंग ने हनुमान जी के दर्शन किए, उसने अन्य मातंगों को हनुमान जी के आगमन का समाचार देने की असफल चेष्टा की। जब सभी मातंगों ने अलग-अलग घटनाओं में हनुमान जी के दर्शन कर लिए थे तभी उनके लिए इस बारे में बात करना संभव हो पाया। बसंत वह पहला मातंग था जिसके मुख से निकला हुआ हनुमान जी के आगमन का समाचार अन्य मातंगों को भी सुनाई दिया।

"हमारे चिरंजीवी गुरु हनुमान जी हमारी धरती पर पधार चुके हैं।" उसने आह्लादित स्वर में यह घोषणा की।

"हाँ, हनुमान जी 41 वर्ष पश्चात हमसे मिलने आए हैं। चरणपूजा कल सूर्योदय से दो घंटे पहले शुरू होगी।" बाबा मातंग ने सभी मातंगों की सभा बुलाकर आधिकारिक घोषणा की। चरणपूजा की अधिकतर तैयारियाँ पहले ही पूरी हो चुकी थीं क्योंकि मातंगजन हनुमान जी के आगमन की कई दिनों से प्रतीक्षा कर रहे थे।

आधी रात को जब अन्य सभी मातंग सो गए तब बाबा उर्वा को लेकर उस स्थान पर पहुँचे जहाँ पर चरणपूजा होनी थी। उन्हें कुछ ऐसे अनुष्ठान संपन्न करने थे जो पूजा शुरु होने की पिछली रात करने होते हैं। इस गोलाकार स्थान की परिधि काले और श्वेत रंग के पत्थरों से अंकित थी। हर पत्थर के ऊपर एक मिट्टी का दीपक रखा हुआ था। इस अनुष्ठान में 164 दीपकों को एक विशेष तेल से प्रज्वलित किया जाना था। उस तेल को बनाने की विधि रहस्यमय थी और उसका रहस्य केवल बाबा और माता को पता था। उन्हें यह रहस्य आने वाले दिनों में उर्वा और उर्मी को देना था जो आगे चलकर मातंग कबीले की कमान संभालने वाले थे। परिधि के बाहर चार दिशाओं में चार अन्य दीपक स्थापित थे।

"यह इधर कौन आ रहा है?" बाबा ने अनुष्ठान को बीच में रोकते हुए पूछा। दूर से एक आकृति अनुष्ठान स्थल की ओर आती हुई दिखाई दे रही थी। उन्होंने उर्वा को आदेश

दिया, "यहाँ पर हमारे अलावा कोई अन्य नहीं होना चाहिए। जाओ और उस व्यक्ति को वहीं पर रोको। दौड़ कर जाओ।"

आदेश पाकर उर्वा दौड़ा। जैसे ही उसने उस आकृति को पहचाना उसकी गति धीमी हो गई। वे कोई और नहीं अपितु उसके चाचा बसंत थे।

"चाचा जी, आप यहाँ पर क्या कर रहे हैं?" उर्वा ने पूछा, "आपको ज्ञान है ना कि इस समय चरणपूजा की अनुष्ठान स्थली के आसपास किसी अन्य का होना वर्जित है।"

"मुझे खेद है। मुझसे त्रुटि हो गई।" बसंत ऐसे बोल रहा था जैसे कोई नींद में बड़बड़ाता है। परंतु उसके भाव उस चोर की तरह थे जिसका सामना चौकीदार से हो जाता है। उसने बहाना लगाया, "मैं चरणपूजा के पहले सत्र का यजमान हूँ। मुझे बेचैनी हो रही थी। इसीलिए मैंने सोचा कि मैं थोड़ा सैर कर लूं। अब मैं लौटता हूँ। मेरा अनुष्ठान में विघ्न पैदा करने का प्रयोजन नहीं था।"

अपने चाचा के वहाँ से दूर चले जाने के पश्चात उर्वा वापिस चरणपूजा स्थली पर लौट आया।

"कौन था वह? और उसका यहाँ पर आने का क्या प्रयोजन था?" बाबा ने पूछा। दीपक के प्रकाश में उनके चेहरे पर चिंता की लकीरें स्पष्ट दिखाई दे रही थीं।

उर्वा ने उत्तर दिया, "वे चाचा बसंत थे। मुझे लगता है कि वे निद्रा भ्रमण कर रहे थे। वे ऐसे बोल रहे थे जैसे कोई नींद में बड़बड़ाता है।"

उर्वा ने तेल से भरा बर्तन उठाया और दीपकों में तेल भरने के कार्य में पुनः लग गया। बाबा ने कुछ नहीं कहा। वे मौन अवस्था में अपने कार्य में लगे रहे।

कुछ देर पश्चात उर्वा बोला, "बाबा, मैं निस्संदेह होकर नहीं कह सकता कि वे निद्रा भ्रमण कर रहे थे। उनके व्यवहार में कुछ तो अवश्य ही संदेहप्रद था। वे कह रहे थे कि वे बेचैनी के कारण भ्रमण कर रहे थे। कदाचित वे जगे हुए थे। परंतु जगे हुए थे तो वे जानबूझकर इधर क्यों आ रहे थे? यदि चाचा बसंत की जगह किसी अन्य कबीले का व्यक्ति होता तो अवश्य ही मुझे उसकी नीयत पर शक होता।"

"क्या आप निस्संदेह कह सकते हो कि वह बसंत ही था?"

"हाँ, बाबा। इतना भी अंधेरा नहीं है कि मैं चेहरा पहचानने में त्रुटि कर दूं। मैंने उनका चेहरा भली-भांति देखा था।"

बाबा ने कोई उत्तर नहीं दिया। या यूं कहें कि उनकी चुप्पी में ही उनका उत्तर था।

बाबा की चुप्पी ने अपना काम किया। उर्वा को सत्य का बोध ऐसे हुआ जैसे किसी ने बर्फीले पानी के छींटे उसके चेहरे पर मारे हों। उसके मुख से अनायास ही शब्द निकले, "हे भगवान! क्या उनकी देह में कोई पराई आत्मा थी?"

"हाँ, मेरे विचार से किसी असुर आत्मा ने उसके तन पर आधिपत्य कर लिया है।" बाबा ने अनुष्ठान की विधियाँ तीव्रता से निपटाने की चेष्टा करते हुए कहा। आधी रात को किए जा रहे उस अनुष्ठान से उस स्थली के चारों ओर एक अदृश्य सुरक्षा कवच बनने वाला था। परंतु सुरक्षा कवच के पूरी तरह बनने से पहले ही सुर और असुर वहाँ पर घुसने की चेष्टा कर रहे थे।

"यह तो बहुत भयभीत कर देने वाली बात है, बाबा। एक असुर ने चाचा बसंत की देह पर आधिपत्य कर लिया और उन्हें यहाँ तक ले आया!" उर्वा ने मंद स्वर में कहा।

उर्वा के शब्दों को दबाने की चेष्टा करते हुए बाबा हँस पड़े। वे जानते थे कि इस घड़ी में असुरों के बारे में बातें करना उनको खाने पर बुलाने जैसा था। परंतु उर्वा के मन में असुरों के प्रति जिज्ञासापूर्ण विचारों को उबलते रहने देना भी उतना ही संकटजनक था।

बाबा ने उर्वा की जिज्ञासा शांत करने के लिए कहा, "यदि आप उनके बारे में जानना चाहते हो तो चरणपूजा के आरंभ होने की प्रतीक्षा करो। हनुमान जी सबसे पहले इसी बारे में व्याख्यान देंगे।" बाबा के बोलने का ढंग इतना अनौपचारिक था जैसे वे वर्षा के बारे में बात कर रहे हों। क्योंकि सुरों और असुरों को किसी भी तरह की महत्ता देने का अर्थ था उनको शक्तिशाली बनाना।

उर्वा ने कहा, "मैं उनके बारे में सदा से जानना चाहता था, बाबा। यदि ऐसी कोई अभिशप्त आत्माएँ हैं जो मेरी आत्मा की अनुपस्थिति में मेरी देह पर आधिपत्य कर सकती हैं तो मुझे उनके बारे में सजग रहना चाहिए। मुझे यह जानना चाहिए कि वे कैसे काम करती हैं और उनका उद्देश्य क्या है।"

कदाचित बाबा उर्वा को यह बता पाते कि सुर और असुर अपने कृत्य आत्मा की उपस्थिति में भी कर सकते हैं। उसके लिए देह का सुप्त होना या निवासी आत्मा का स्वप्नलोक में होना आवश्यक नहीं है। सभी मनुष्यों में मातंग ही ऐसे जन हैं जो उनसे कम से कम प्रभावित रहते हैं।"

अनुष्ठान स्थली की परिधि पर रखे सभी दीपकों में तेल भरने के उपरांत बाबा को अभिशप्त आत्माओं के बारे में वार्ता समाप्त करने का सरल उपाय मिल गया।

"उर्वा, परिधि के बाहर रखे चारों दीपकों में जाकर तेल भर दो। मैं उन दीपकों को संभालता हूँ जो केंद्र में रखे हैं। और हाँ, वे चारों दीपक अभी तुरंत प्रदीप्त करने हैं। परिधि में रखें 164 दीपकों की तरह उन्हें तेल भरकर ऐसे ही नहीं छोड़ना है।"

अब उर्वा की जिज्ञासा को एक नया विषय मिल गया था - वह रहस्यमय तेल कौन-सी जड़ी बूटियों से बना था? और उसके संघटन को रहस्य क्यों रखा गया था?

उसे इतना तो पता था कि वह तेल प्रकाश की कुछ ऐसी किरणें छोड़ता था जिनसे अदृश्य सुर और असुर दृश्यमान हो जाते थे। परिधि के बाहर चार दीपक जलाने का प्रयोजन अभिशप्त आत्माओं को अनुष्ठान स्थली से दूर रखना ही था। अन्यथा वे किसी मनुष्य की देह धारण करके भीतर घुस सकती थीं। उन्होंने अभी-अभी बसंत की देह धारण करके घुसने की चेष्टा की थी।

उर्वा ने पहले एक परिक्रमा की और तत्पश्चात चारों दिशाओं में चार दीपक जलाने की प्रक्रिया शुरू की। वह पहला दीपक जलाने ही वाला था कि उसने चाचा बसंत को पुनः अनुष्ठान स्थली की ओर आते देखा।

"बाबा।" उसने तेजी से चिल्लाकर बाबा को सूचना दी। इस बार बसंत इतने गुप्त तरीके से आया था कि उर्वा की दृष्टि पड़ने से पहले ही वह अनुष्ठान स्थली के बहुत समीप पहुँच गया था।

बाबा ने अनुष्ठान बंद किए और स्थिति को परखा। उन्होंने उर्वा को निर्देश दिया, "दीपक जलाओ।"

उर्वा ने तुरंत निर्देश का पालन किया। दीपक की विचित्र गहरे लाल रंग के प्रकाश में उसका चेहरा नहा गया। उसने अपेक्षा की थी कि दीपक जलाते ही तुरंत कोई चमत्कार होगा परंतु चमत्कार तो दूर की बात है, बसंत की चाल भी धीमी नहीं हुई।

"बाबा, यह काम नहीं कर रहा है।" उसने घबराकर बाबा की ओर देखते हुए कहा। जैसे ही उसने पुनः बसंत की ओर देखा तो एक लाल रंग का विशालकाय पक्षी उसके कान के समीप से होकर गुजरा। उसे इतना तो समझ आ गया कि वह कोई पक्षी नहीं अपितु एक असुर था। दीपक के गहरे लाल रंग के प्रकाश में आसपास की सभी अभिशप्त आत्माएँ दृष्टिगोचर हो गई थीं। वह दौड़कर परिधि के भीतर आ गया।

बाबा को दीपक के रहस्यमय लाल प्रकाश की शक्ति पर इतना भरोसा था कि उन्होंने पुनः अपना अनुष्ठान कार्य शुरू कर दिया था।

"बाबा, यह काम नहीं कर रहा है। चाचा बसंत - मेरा अर्थ है असुर - तेजी से इधर आ रहे हैं।" वह पुनः चिल्लाया।

बाबा ने उर्वा की अधीरता पर प्रतिक्रिया करना उचित नहीं समझा। उन्होंने अपना कार्य जारी रखा। दीपक के प्रकाश ने समय पर अपना प्रभाव दिखाया। जब रहस्यमय प्रकाश की किरणें बसंत की आंखों तक पहुँचीं तो उसकी आत्मा पुनः उसकी देह में आ गई और असुर निकल कर भाग गया। उर्वा ने देखा कि चाचा बसंत ने पहले अपने घुटने टेके और तत्पश्चात शांति से धरती पर लेट गए। लाल रंग का एक और बड़ा पक्षी प्रज्वलित दीपक की दिशा में उड़ा और तत्पश्चात ऊंचा उठकर अदृश्य हो गया। उर्वा चाचा बसंत की सहायता करने के लिए दौड़ा।

"कैसे... क्यों... मैं यहाँ पर क्यों आया?" बसंत उठकर बैठ गया और बुदबुदाया।

"सब कुछ ठीक है, चाचा जी। कोई हानि नहीं हुई है। आप वापिस घर जा सकते हैं।" उर्वा ने चाचा बसंत के कंधे पर अपना एक हाथ रखकर उन्हे आश्वस्त किया।

बसंत का चेहरा अपराधबोध से लाल हो गया था। वह धीरे-धीरे उठा, एक बार लड़खड़ाया, और तत्पश्चात अपने घर की ओर बढ़ चला।

कुछ क्षण पश्चात उर्वा और बाबा ने भी सभी रात्रिकालीन अनुष्ठान पूरे किए और अपने डेरे की ओर बढ़ चले।

चलते-चलते उर्वा ने पूछा, "बाबा, उस रहस्यमय तेल से उत्पन्न होने वाले प्रकाश में ऐसा क्या है कि असुर भाग खड़े होते हैं?"

बाबा ने उत्तर दिया, "प्रकाश में ऐसा कुछ नहीं है। सुरों और असुरों को भगाती है जागृति। जैसे घर के स्वामी के जागने पर चोर भाग उठते हैं वैसे ही सुर और असुर भागते हैं। जैसे ही आपको यह भान होता है कि आपकी देह में अभिशप्त आत्माओं ने प्रवेश कर लिया है तभी वे भागना शुरू कर देती हैं। दीपक का प्रकाश एक घंटी की तरह काम करता है जिससे हमें उनकी उपस्थिति का बोध होता है। जैसे अभी-अभी बसंत के साथ हुआ। जैसे ही प्रकाश की किरणें उसकी आंखों में गिरीं उसे जागृति हो आई। ये अभिशप्त आत्माएँ आपकी देह में तब तक रहती हैं जब तक आप उनकी उपस्थिति के बारे में अनभिज्ञ रहते हो, अचेत रहते हो, सुषुप्त रहते हो।"

बाबा ने बातों ही बातों में मातंग समाज का एक बहुत बड़ा रहस्य उजागर कर दिया था। परंतु यह रहस्य इतना सरल था कि उर्वा का तेज दिमाग, जो जटिल वस्तुएँ समझने का अभ्यस्त था, उसको समझ नहीं पाया। बाबा कह रहे थे कि उस रहस्यमय तेल में ऐसी कोई

विशेष जड़ी-बूटी नहीं थी जिसकी स्वयं की अपनी कोई शक्ति हो। जब दीपक से प्रसारित हो रही प्रकाश की किरणें मातंगों को दिखाई देती हैं तब उनके मस्तिष्क में घंटी बजती है जो कहती है - 'अभिशप्त आत्माओं से सावधान।' उस घंटी के कारण उनकी आत्माओं में वह जागृति आती है जिसके कारण अभिशप्त आत्माएँ भाग खड़ी होती हैं। यह ठीक वैसे ही होता है जैसे गाँव का कोई चौकीदार रात को विभिन्न ध्वनियाँ निकालकर सो रहे जनों को सावधान करता है।

"यह तो बहुत भयानक है, बाबा। ऐसे सोचकर भी डर लगता है कि कोई पराई आत्मा मेरी देह को अपने अधीन करके कुछ भी कर सकती है।" उर्वा बोला। उसे अभिशप्त आत्माओं के बारे में मानसिक ज्ञान तो था परंतु व्यवहारिक ज्ञान नहीं था। उन पराई आत्माओं द्वारा उसके चाचा बसंत की देह में घुसकर अनुष्ठान बिगाड़ने का प्रयास करते देखकर उसके पसीने छूट गए थे।

"आपकी अपनी आत्मा भी उतनी ही पराई है जितनी कि वे।" बाबा ने उर्वा के चेहरे को अपनी तेज और अनुभवी दृष्टि से परखते हुए कहा। वे यह देख रहे थे कि कहीं उर्वा के मन को किसी असुर ने अपने अधीन तो नहीं कर लिया था। उर्वा के बोलने का ढंग यह आशंका पैदा कर रहा था।

जब बाबा को विश्वास हो गया कि उर्वा असुरों से संक्रमित नहीं था, वे आगे बोले, "जब कोई आत्मा स्वयं को देह की स्वामिनी मानती है तो वह एक सुप्त और अज्ञानी आत्मा है। और अज्ञान, जैसा कि मैंने कहा, अभिशप्त आत्माओं को निमंत्रण है। यदि आपकी आत्मा इस देह से निकल जाती है तब भी आपकी देह अस्तित्व में रहेगी; कोई अन्य आत्मा आपकी आत्मा का स्थान ले लेगी। यह आवश्यक नहीं है कि आपकी आत्मा इस देह में जन्म के समय आई हो और यह भी आवश्यक नहीं है कि आपकी आत्मा इस देह की मृत्यु तक इसमें रहेगी।"

उर्वा अपने डेरे में पहुँचने के पश्चात सुर और असुरों के बारे में सोचते हुए सो गया और स्वप्नलोक में भी उसे भयानक और भ्रमित कर देने वाले दृश्य दिखाई दिए।

चरणपूजा निश्चित समय अर्थात सूर्योदय के दो घंटे पहले शुरू हो गई।

पूजा स्थल पर सबसे पहले प्रवेश किया ब्रह्मजनों ने। ब्रह्मजन वे वृद्ध मातंग थे जिन्होंने 41 वर्ष पहले चिरंजीवी गुरु से ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था। उनमें सबसे आगे थे बाबा और माता। उन्होंने मंत्रोच्चारण शुरू किया। उन मंत्रों में शाश्वत काल से चली आ रही मातंग परंपरा का गुणगान था और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को सौंपे जाने वाले उत्तरदायित्वों का विवरण था।

उसके पश्चात उर्वा और उर्मी को आमंत्रित किया गया जो बाबा और माता के पश्चात कबीले की कमान संभालने वाले थे। उन्हें पूजा स्थल की परिधि पर रखे 164 दीपकों को प्रदीप्त करने का कार्य दिया गया। ब्रह्मजनों ने इस कार्य में उनका पथ प्रदर्शन किया। यह कार्य शुरू करने से पहले उन देहरहित आत्माओं के बारे में जागृति आवश्यक थी जो उस स्थान के चारों ओर मंडरा रही थीं। उन आत्माओं को देहरहित कहना पूरी तरह से सत्य नहीं होगा क्योंकि वे हर समय किसी न किसी देह में तो होती ही हैं, और जब किसी जीव की देह में नहीं होती हैं तो वायु में विचरण करती हैं। अर्थात वायु ही उनकी देह होती है।

"क्या आपको बोध है कि आप एक देह नहीं हो, आपकी एक देह है।" वृद्ध मातंगों ने मंत्र गाया।

"हाँ, हमें बोध है। हाँ, हमें बोध है।" उर्वा और उर्मी ने अपनी पंक्ति का गान किया।

"क्या आपको बोध है कि आप एक मन नहीं हो, आपका एक मन है।"

"हाँ, हमें बोध है। हाँ, हमें बोध है।"

"क्या आपको बोध है कि आपका अस्तित्व कई स्तरों पर है - देह, मन, बुद्धि, विवेक, मन, चित्त? और आप इन स्तरों में से कोई भी नहीं हो। क्या आपको बोध है कि आप एक आत्मा हो।"

"हाँ, हमें बोध है। हाँ, हमें बोध है।"

"क्या आपको सुर और असुर वर्ग की अभिशप्त आत्माओं का बोध है?"

"हाँ, हमें बोध है। हाँ, हमें बोध है।"

"41 वर्ष में एक बार होने वाली यह एक महान पूजा है। सकारात्मक भावनाओं की यहाँ पर बाढ़ आई हुई है। सुर, अर्थात वे देहरहित आत्माएँ जो मानव जीवन के सकारात्मक रसों का स्वाद लेती हैं, यहाँ पर बड़ी संख्या में एकत्रित हैं। वे हमारी देहों के माध्यम से हमारी सकारात्मक भावनाओं का पान करने का प्रयास करेंगी। हमें इसका बोध होना चाहिए। क्या आपको है?"

"हाँ, हमें बोध है। हाँ, हमें बोध है।"

"जहाँ पर सकारात्मक भावनाएँ होती हैं वहाँ नकारात्मक भावनाएँ अपने आप आ जाती हैं। असुर, अर्थात वे देहरहित आत्माएँ जो मानव जीवन के नकारात्मक रसों का पान करती हैं, यहाँ पर बड़ी संख्या में अपनी योजनाएँ क्रियान्वित करने के लिए एकत्रित हैं। वे

हमारी देहों के माध्यम से नकारात्मकता उत्पन्न करने का प्रयास करेंगीं। हमें इसका बोध होना चाहिए। क्या आपको है?

"हाँ, हमें बोध है। हाँ, हमें बोध है।"

यह मंत्र उच्चारण करने के पश्चात उन्होंने परिधि पर रखे 164 दीपक जलाना शुरू कर दिया। जैसे-जैसे प्रदीप्त दीपकों की संख्या बढ़ने लगी, वैसे-वैसे गहरे लाल रंग का प्रकाश तेज होने लगा। जब सभी दीपक प्रदीप्त हो गए तब पूजा स्थली के चारों ओर गहरे लाल रंग की एक दीवार-सी दिखाई देने लगी। ऐसा लग रहा था कि वे सब किसी अंधेरी गुफा में पहुँच गए हों। उन्हें पता था कि वह कोई दीवार नहीं थी। दीपक जलने से वे असुर दृष्टिगोचर हो गए थे जो परिधि को पार करके भीतर घुसने का प्रयास कर रहे थे। उन्हीं असुरों के झुंड से दीवार का भ्रम पैदा हो रहा था।

इसके पश्चात वृद्ध मातंग पूजास्थली के केंद्र में पहुँच गए और अग्निकुंड में विभिन्न प्रकार की लकड़ियों के मध्य अग्नि देवता को आमंत्रित करने लगे। अग्नि देवता ने प्रकट होने में तनिक भी देरी नहीं की। मातंगों द्वारा अग्नि देवता को दी जा रही एक विशेष पवित्र द्रव की आहुति से एक सुगंधित धुआँ उत्पन्न हुआ। श्वेत रंग का वह धुआँ ऊपर उठकर गुंबज का आकार ले रहा था। उन्हें पता था कि वह कोई वास्तविक गुंबज नहीं था। श्वेत धुएँ के कारण वहाँ पर उपस्थित सुर दृष्टिगोचर हो गए थे जो पूजा स्थल के भीतर घुसने का प्रयास कर रहे थे। उन्ही के कारण गुंबज का भ्रम पैदा हो रहा था।

गहरे लाल रंग की दीवार और ऊपर श्वेत रंग के गुंबज ने एक विशेष गुफा का निर्माण कर दिया था। इस गुफा को मातंग पवित्र गोलार्ध भी कहते हैं। जितनी बड़ी पूजा होती है, उतनी ही बड़ी संख्या में सुर और असुर आते हैं और उतना ही विचित्र गोलार्ध पूजा स्थली के चारों ओर बनता है। इसके भीतर उपस्थित व्यक्ति को ऐसा लगता है जैसे वह किसी अन्य लोक में पहुँच गया हो।

उर्वा, उर्मी और वृद्ध मातंग जन अग्निकुंड के सामने हाथ जोड़कर, आँखें बंद करके और सिर झुकाकर खड़े हो गए। अग्निकुंड के उस पार हनुमान जी का आसन था। उन्हें बुलाने के लिए उनके शिष्यों ने विभिन्न मंत्रों का उच्चारण किया जिनमें उनके हनुमान जी के साथ सदियों पुराने रिश्ते का विवरण था। मंत्रों में इस बारे में भी प्रस्तुति थी कि कैसे मातंगों ने विभिन्न कठिनाइयों के बीच अपनी संस्कृति को जीवित रखा था।

"मेरे प्रिय शिष्यों, अपनी आँखें खोलो।" हनुमान जी की गहरी दिव्य वाणी पवित्र गोलार्ध में गूँजी।

गोलार्ध में उपस्थित मातंग जनों ने अपनी आँखें खोलीं और भूमि पर साष्टांग प्रणाम किया। हनुमान जी की दिव्य उपस्थिति के कारण वे काल का बोध खो बैठे थे। किसी को नहीं पता था कि वे कितनी देर वहाँ पर साष्टांग अवस्था में भूमि पर लेटे रहे। उन्हें तो यह भी नहीं पता था कि वे भूमि पर लेटे हुए थे या शून्य में तैर रहे थे। जब उन्हें वापिस काल का बोध आया तब उन्हें ऐसा लगा जैसे उनके पुराने तन हिम के पिंडों की भांति पिघल गए थे और उनकी सभी अशुद्धियाँ निकल गई थीं।

जब हनुमान जी ने अपना आसन ग्रहण किया तो बाबा ने उर्वा को निर्देश दिया कि वह पूजा के प्रथम यजमान को दिव्य गोलार्ध के भीतर लाए। पहले यजमान थे चाचा बसंत। उन्होंने अपना स्थान ग्रहण किया। उसके पश्चात अन्य मातंग जो गोलार्ध के बाहर खड़े थे उनको भीतर बुलाया गया। उर्वा और उर्मी ने उन मंत्रों का उच्चारण किया जिनके माध्यम से सभी को अभिशप्त आत्माओं की उपस्थिति के बारे में चेताया गया। उन मंत्रों के उत्तर में नए सभाजनों ने उच्चारण किया, "हाँ, हमें बोध है। हाँ, हमें बोध है।"

मातंगों की पूजा एवं अनुष्ठानों का एक मुख्य भाग ज्ञान की वार्ता होती है। उसी वार्ता को शुरू करने के लिए उर्वा ने सबसे पहले अपनी जिज्ञासा चिरंजीवी गुरु के सामने रखी, "हे देव, मुझे नहीं पता कि यह मेरी आत्मा बोल रही है या कोई पराई आत्मा। कृपया हमें विस्तार से बताइए कि कैसे पराई आत्माएँ हमारे तन व मन का प्रयोग करती हैं। और ऐसा करने के लिए वे क्या ढंग अपनाती हैं? मैं विशेष रूप से अभिशप्त आत्माओं के बारे में जानना चाहता हूँ।"

अपनी जिज्ञासा प्रकट करने के पश्चात उर्वा अपने स्थान पर बैठ गया और सभी मातंग इस विषय पर हनुमान जी की वाणी सुनने लगे -

मैंने कल रात एक भक्त के घर एक घटना घटित होती देखी। उसका नाम अशोक है। वह रात्रि भोजन कर रहा था। अचानक उसकी आत्मा के स्थान पर एक पराई आत्मा आ गई। उसकी पत्नी उसके सामने ही बैठी थी और उसको देख रही थी। उसे अपने पति में तब तक कोई परिवर्तन दिखाई नहीं दिया जब तक कि उसने अचार के लिए नहीं पूछा।

"परंतु आपको तो अचार से घृणा है।" वह आश्चर्यपूर्वक बोली।

"तो क्या हुआ? आज मेरा मन कर रहा है अचार खाने का। घर में है कि नहीं?" अशोक ने पूछा।

"हाँ, है, अचार तो है।" वह बोली और अचार लाने के लिए रसोई में चली गई।

जब तक वह वापिस आई तब तक अशोक की आत्मा उसकी देह में पुनः आ चुकी थी और पराई आत्मा जा चुकी थी।

"ये लो अचार।" वह अचार के बर्तन से थोड़ा-सा अचार निकालते हुए बोली।

अशोक की आत्मा ने उसके तन-मन से एक क्षण के लिए मिलान किया। उसके मुख से प्रश्न निकला, "क्या मैंने अचार मांगा था?"

क्योंकि उसके तन-मन में अचार के मांगने की स्मृति पहले से थी तो मिलान सही निकला। आत्मा को उसमें कुछ भी विचित्र नहीं लगा। उसने प्रसन्नता से अचार का स्वाद लिया। यद्यपि अचार खाने की इच्छा उसकी स्वयं की नहीं थी, वह इच्छा तो एक पराई आत्मा द्वारा रोपित की गई थी।

प्रायः पराई आत्माएँ जिस भी तन-मन में अतिक्रमण करती हैं उसी के अनुसार ढल जाती हैं। इसलिए मूल आत्मा को कोई आशंका नहीं होती। यदि पराई आत्माएँ तन-मन में कोई थोड़ा बहुत परिवर्तन लाती भी हैं तो मूल आत्माएँ या तो उसको अनदेखा कर देती हैं या उसको स्वाभाविक मान लेती हैं। अशोक की आत्मा के साथ भी ऐसा ही हुआ। उसने एक रोपित इच्छा को अपनी इच्छा मान लिया।

आत्माओं की ऐसी अदला-बदली एक साधारण बात है। भक्तों को समस्या से बचाने के लिए मैं भी कई बार ऐसी अदला-बदली का कारण बनता हूँ। कल उर्मी की आत्मा ने एक रामनारायण नामक वृद्ध व्यक्ति की आत्मा के साथ अदला-बदली की थी। बाबा जैसे ज्ञानियों को छोड़कर आप में से किसी ने उसमें कोई परिवर्तन अनुभव नहीं किया। इसलिए ऐसी अदला-बदली में कोई हानि नहीं है। यदि ऐसी अदला-बदली देवताओं द्वारा कराई जाए तो इससे मूल आत्माओं और पराई आत्माओं दोनों का ही भला होता है ।

समस्या तब पैदा खड़ी होती है जब पराई आत्माएँ अपने स्वयं के कर्मों और इच्छाओं को अतिक्रमण किए हुए तन-मन पर थोपने लगती हैं। पराई आत्माओं में जो अभिशप्त आत्माएँ होती हैं - सुर तथा असुर - वे ऐसा करने के लिए कुख्यात हैं।

साधारण आत्माएँ जिस भी तन-मन के साथ जुड़ती हैं उसी को अपना मान लेती हैं। उस तन-मन में जो भी भावनाएँ पैदा होती हैं, चाहे वे सकारात्मक हों या नकारात्मक, उसी को वे अनुभव करती हैं। जब तन-मन बेकार हो जाता है और अंततः मर जाता है तभी वे कोई दूसरा तन-मन धारण करती हैं, दूसरा जन्म लेती हैं।

परंतु अभिशप्त आत्माएँ अलग ढंग से तन-मन के साथ जुड़ती हैं - सुर आत्माएँ केवल जीवन के सकारात्मक रसों का पान करती हैं और असुर आत्माएँ केवल नकारात्मक

रसों का। ऐसा करने के लिए वे एक तन-मन से दूसरे तन-मन में लगातार भटकती रहती हैं। किसी एक तन-मन में सकारात्मकता, नकारात्मकता और उदासीनता के उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। इसलिए वे एक तन-मन में अधिक समय तक नहीं टिकतीं।

भय, क्रोध, विषाद, घिन्न, सदमा, चिंता, निठुरता आदि मानव जीवन के नकारात्मक रस है। कल्पना करो कि कोई असुर है। वह किसी ऐसे व्यक्ति की पहचान करता है जो भयभीत है। वह उसके तन-मन में घुसकर उसके भय का रस पीता है। वह उसके भय को जहाँ तक हो सके लंबा खींचने की चेष्टा करता है। जब भय नहीं रहता है तब वह उस तन-मन को त्याग देता है। तत्पश्चात वह अपने अगले लक्ष्य की खोज करता है।

मान लो कि उसे कोई विषादग्रस्त मनुष्य मिलता है। वह उसके तन-मन में घुसकर विषाद का रस पीता है और उसे लंबा खींचने की चेष्टा करता है। जब उस तन-मन में विषाद नहीं रहता है तो वह उसको त्याग देता है। तत्पश्चात वह आगे नए तन-मन की खोज करता है जो भयभीत हो या क्रोधित हो या विषादग्रस्त हो या घिन्न से भरा हो या सदमे में हो या चिंताग्रस्त हो या निष्ठुर हो आदि आदि।

हर्ष, विश्वास, आशा, सुखद आश्चर्य, सहानुभूति आदि मानव जीवन के सकारात्मक रस हैं। सुर ऐसे व्यक्तियों की खोज में रहते हैं जो सकारात्मक मानसिक स्थिति से गुजर रहे हों। वे उनके तन-मन में जगह बनाकर सकारात्मक रसों का पान करते हैं और सकारात्मक स्थिति को जितना लंबा खींच सकते हैं खींचते हैं।

अभिशप्त आत्माएँ यदि एक बार किसी के तन-मन का प्रयोग कर लें तो बार-बार उसके तन-मन का प्रयोग करती हैं। उन्हें यदि एक बार रस का स्वाद किसी तन-मन के माध्यम से मिल गया तो उसी तन-मन के आसपास मंडराती रहती हैं और अवसर खोजती रहती हैं। इतना ही नहीं, वे स्वयं के लिए अवसर बनाती भी हैं।

उदास होना एक साधारण-सी मानवीय बात है और यदि उस उदासी के कड़वे रस को पीने के लिए कोई असुर आपके तन-मन में जगह बनाता है तो इसमें कोई हानि की बात भी नहीं है। हानि तब होती है जब असुर आपको लगातार उदास रखता है। वह आपके मन में नकारात्मक विचार भरने का प्रयास करता है ताकि आपको वहाँ भी समस्याएँ दिखाई देने लगें जहाँ पर समस्या का चिन्ह भी नहीं होता है।

किसी के ऊपर विश्वास करना मानवीय स्वभाव है और इसमें कोई हानि की बात नहीं है यदि कोई सुर उस विश्वास के रस को पीने के लिए आपके तन-मन में जगह बनाए। हानि तब होती है जब वह सुर आपके विश्वास को अंधविश्वास में बदल देता है। वह आपके

मन में ऐसे सकारात्मक विचार डालता है कि आप अपने शत्रुओं पर भी विश्वास करने लगते हैं।

क्रोधित होना भी एक मानवीय स्वभाव है और इसमें कोई हानि नहीं है यदि कोई असुर क्रोध का उबलता रस पीने के लिए किसी तन-मन के साथ जुड़े। हानि तब होती है जब असुर आपके तन-मन को अपने अधीन कर लेते हैं, आपके मन में विचार रोपित करते हैं, और आपके क्रोध का प्रयोग अन्य नकारात्मक घटनाओं के बीज के रूप में करते हैं।

स्वादिष्ट मिठाइयाँ खाना मनुष्य का स्वभाव है और इसमें कोई हानि की बात नहीं है यदि कोई सुर भी आपके तन-मन के साथ जुड़कर उन मिठाइयों का स्वाद चखे। हानि तब होती है जब वे आपके कभी-कभार के आनंद को लत बना देते हैं।

किसी विषय में निष्ठापूर्वक विश्वास करना भी एक मानवीय स्वभाव है। हानि तब होती है जब असुर आपके मन पर नियंत्रण करके आपको अंधा बना देते हैं जिससे आप अन्य जनों के विश्वास की खिल्ली उड़ाकर घृणा के रस का पान करने लगते हैं।

अभिशप्त आत्माओं के तीन प्रकार हैं और उनसे पीछा छुड़ाने के भी तीन मार्ग हैं - सचेत रहना, नकारना, और प्रार्थना करना।

कुछ अभिशप्त आत्माएँ चोरों की तरह होती है जो मूल आत्मा में थोड़ी-सी जागृति आते ही भाग खड़ी होती हैं। जो ज्ञान मैं आपको दे रहा हूँ वह उस घंटी की तरह काम करेगा जो सुर और असुरों का संकट पाते ही आपके मन में बजने लगेगी। उदाहरणतः यदि उदासी लंबे समय तक चलती है तो आप समझ जाओगे कि किसी असुर ने आपके तन-मन पर डेरा डाल लिया है। यह चेतना उनको आपके तन-मन से भगाने के लिए पर्याप्त है।

आपको उन अभिशप्त आत्माओं के प्रति भी सचेत रहने की आवश्यकता है जो आपके तन-मन पर नहीं अपितु आप जिन जनों के संपर्क में रहते हैं उनके तन-मन पर डेरा डाले हुए हैं। उदाहरण के लिए, यदि आपका कोई मित्र लगातार किसी बारे में शिकायत करता है तो समझ जाइए कि वह असुरों के नियंत्रण में है। यह समझ आपको उनसे सुरक्षित रखेगी। इस समझ के अभाव में वे असुर आपके तन-मन पर भी डेरा डाल सकते हैं। यदि आपके मित्र को किसी चीज की लत है तो समझ जाइए कि उसके तन-मन में सुरों का वास है। यह समझ ही आपको उनसे और उनकी लत से सुरक्षित रखने के लिए पर्याप्त है।

अतः जो अभिशप्त आत्माएँ चोरों जैसी होती हैं उनसे सचेत रहना पर्याप्त है।

कुछ सुर और असुर ठग जैसे होते हैं। वे आपके तन-मन को वश में करने के लिए आपको मूर्ख बनाते हैं। मान लीजिए कि आप कुत्तों से घृणा करते हैं। किसी भी चीज के प्रति लगातार घृणा करना तन-मन में असुरों की उपस्थिति का सूचक है। असुर आपके संसार को कुछ इस तरह से रंग देते हैं कि आपको ऐसी घटनाएँ दिखाई देनी शुरू हो जाती हैं जो आपकी घृणा पर औचित्य का ठप्पा लगाती हैं। कुत्तों द्वारा मनुष्यों को नोंच खाने के समाचार आपके पास आने लगते हैं। आपको ऐसे पीड़ितों के बारे में पता चलने लगता है जो कुत्तों के काटने से भयानक मौत मरे हैं। इस सबके कारण आपकी घृणा एक ऐसे स्तर पर पहुँच सकती है कि आप कुत्तों को मारने और हानि पहुँचाने को अपने जीवन का उद्देश्य बना सकते हैं।

बाहरी संसार असीमित है। आप इसका केवल एक सीमित प्रारूप ही देख पाते हैं। यदि आपके तन-मन पर असुरों का निवास है तो आप वही देखेंगे जो असुरों के लिए लाभकारी है। वे आपको ऐसी घटनाएँ दिखाएँगे जिससे आपके जीवन में उन नकारात्मक रसों का उत्पादन होगा जिनको वे पीना चाहते हैं। वे आपको यह भी विश्वास करा देंगे कि जो आप देख रहे हैं वही पूर्ण संसार है। घृणा के अलावा अन्य नकारात्मक जीवन रसों - क्रोध, भय, घिन्न, चिंता, सदमा, निष्ठुरता आदि - का उत्पादन शुरू हो जाएगा। इससे आपके मन में निवास कर रहे असुरों की संख्या बढ़ती जाएगी और आपकी मूल आत्मा कोई अंधेरा कोना पकड़कर सोती रहेगी। आप अभिशप्त आत्माओं को ही अपनी आत्मा मानने लगोगे।

ऐसे सुरों तथा असुरों से मुक्ति पाने के लिए आपको अपने दृष्टिकोण को नकारना होगा। आपको यह भी नकारना होगा कि आप जो देख रहे हैं वही वास्तविकता है। आपके संसार में घटित हो रही सभी घटनाएँ और आपके संसार में निवास कर रहे सभी मनुष्य भी आपके दृष्टिकोण की पुष्टि करें तो भी आपको उसे नकारना होगा। यदि कोई ठग आपको कुछ बेचने की चेष्टा कर रहा है तो आपको तब तक 'ना' कहना पड़ता है जब तक कि वह हारकर अपना रास्ता नहीं नाप लेता। जब आप बार-बार 'ना' कहेंगे तो वह अपने आप चिड़चिड़ा हो जाएगा और या तो भाग जाएगा या अपने सच्चे रंग दिखाने शुरू कर देगा।

मान लीजिए कि आप कुत्तों से प्यार करते हैं। आप अपनी दया और प्रेम उन पर बरसाते हैं। इसका अर्थ यह है कि आपके तन-मन में जीवन के सकारात्मक रस बन रहे हैं। और उनका पान करने के लिए सुर तो आएंगे ही। हो सकता है कि वे आपके तन-मन पर लंबा डेरा डाल लें और कुत्तों के प्रति दया व प्रेम बरसाने के नए-नए कारण आपको देते रहें। आप कहेंगे कि इसमें समस्या क्या है? प्रबुद्ध व्यक्ति भी तो प्रेम और करुणा से भरे होते हैं।

समस्या यह है कि जब आपके तन-मन में सुर रहने लग जाते हैं तो असुर भी अपने आप आ जाते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि सुर आपके जीवन में सकारात्मकता लेकर आएँगे। परंतु असुर, जिनकी संख्या सुरों से कहीं अधिक है, आपके जीवन में नकारात्मकता लेकर आएँगे।

आपको लगता होगा कि सुर और असुर दोनों एक दूसरे के विपरीत है। यह धारणा बिल्कुल मिथ्या है। सुर और असुर दोनों का गठबंधन होता है। दोनों एक दूसरे के कार्य में सहायक होते हैं। मान लो कि असुरों ने आपके मन में कुछ ऐसे विचार रोपित कर दिए जिससे आपके जीवन में समस्याएँ खड़ी हो गईं और उदासी, क्रोध, भय आदि नकारात्मक रसों की बाढ़ आ गई। इससे आपके और आपके मित्र, परिवार, समाज आदि के बीच खाई बन गई। इससे सुरों का भी काम बनेगा क्योंकि वे आपके भीतर ऐसी धारणा बना देंगे कि कुत्ते ही सच्चे संगी होते हैं। एक ओर तो आप कुत्तों के प्रति प्रेम दिखाओगे और दूसरी ओर मनुष्यों के प्रति नकारात्मक रवैया दिखाओगे। एक ओर सकारात्मकता के रस की फुहारें फूटेंगीं और दूसरी ओर नकारात्मकता के रसों की। सुर और असुर दोनों उसमें पान करेंगे।

इसका समाधान यही है कि आप अपनी सभी धारणाओं को नकार दो। क्योंकि तन-मन में जब अभिशप्त आत्माओं का वास हो तब आपके लिए यह चुनाव करना असंभव है कि कौन सी धारणा आपकी है और कौन सी धारणा उन्होंने रोपित की है। जब आप धारणाओं को नकारने लगोगे तो अभिशप्त आत्माएँ भाग खड़ी होंगी और आपका जीवन पुनः सामान्य हो जाएगा।

चोर और ठग प्रकार की अभिशप्त आत्माओं से भी दुष्ट होती हैं उपद्रवी प्रकार की अभिशप्त आत्माएँ। वे खुले में तन और मन पर अपना राज करती हैं। बसंत के जीवन से एक उदाहरण लेते हैं। एक दिन वह पेड़ की एक पेचीदा टहनी पर चल रहा था। पेचीदा इसलिए क्योंकि पक्षियों का एक नीड़ उस टहनी के ऊपर था। उसने अपनी ओर से पूरा प्रयास किया कि वह सावधानी से आगे बढ़े। तो भी उसका एक पैर नीड़ पर पड़ गया और भीतर रखे अंडे फूट गए। इस घटना के कारण अगले कई दिनों तक उसके मन में पीड़ा और पश्चाताप का रस उबलता रहा। असुरों ने उस उबलते रस का पान किया। उसके भरपूर प्रयासों के विपरीत उसका पैर नीड़ पर कैसे टिक गया था? क्योंकि एक असुर ने वहाँ पर अवसर देख लिया था और उसके तन को नियंत्रित करके उस घटना को जन्म दिया था।

जब अभिशप्त आत्माएँ किसी एक छोटी घटना को जन्म दे देती हैं तो वे प्रोत्साहित होकर बड़ी घटनाओं को जन्म देने का प्रयास करने लगती हैं। कुछ दिन के पश्चात बसंत में घुसे उस असुर ने एक और बुरा कार्य करने में सफलता पाई। बसंत उस दिन शहद तोड़ रहा था तब उसे पुनः एक नीड़ दिखाई दिया जो उसके कार्य में अड़चन बन रहा था। उसने सोचा

कि नीड़ में कोई अंडे नहीं है इसलिए उसने लात मारकर वह नीड़ नीचे गिरा दिया। तत्पश्चात उसको पछतावा हुआ और उसने स्वयं को दोष भी दिया। यद्यपि वह कार्य भी उसी असुर ने किया था।

कुछ दिन के पश्चात उस असुर ने न केवल उसके तन और बुद्धि अपितु उसके विवेक तथा संस्कार पर भी नियंत्रण कर लिया था। बाबा ने उसे नीली चिड़िया का एक पंख लाने के लिए भेजा था। जब उसे कोई गिरा हुआ पंख नहीं मिला तो उसने चिड़िया को मारने का निर्णय लिया। एक पंख के लिए किसी मातंग द्वारा एक चिड़िया की हत्या! और उसे पछतावा भी नहीं हुआ क्योंकि उसके संस्कार उस असुर के अधीन हो गए थे। वह सत्य और मिथ्या में अंतर करने में असमर्थ था। तत्पश्चात उसने बाबा से इस बारे में बहस की। उसका तर्क था कि पक्षी को एक दिन तो मरना ही था। दो मातंगों के बीच हो रहे इस कलह से उत्पन्न नकारात्मक रस का पान असुरों ने किया।

प्रार्थना में तीनों तरह की अभिशप्त आत्माओं से आपको मुक्त करने की शक्ति है। आपको किसी भी कालावधि के प्रारंभ में प्रार्थना करनी चाहिए। वह कालावधि एक दिन भी हो सकती है, एक पखवाड़ा भी हो सकती है, एक महीना भी हो सकती है और एक वर्ष भी।

दैनिक प्रार्थना कैसे करते हैं?

दिन के अंत में अपने देवता को अर्पित करने के लिए कुछ सामग्री लाते हैं। वह सामग्री पत्ते भी हो सकते हैं, फूल भी हो सकते हैं, फल भी हो सकते हैं या कुछ और जो आपने प्रेम और श्रद्धा से प्राप्त किया हो। अगले दिन सुबह अपने देवता के सामने मौन धारण करके बैठते हैं और अर्पण करते हैं। जैसे-जैसे आप अर्पण देते हैं वैसे-वैसे पिछले दिन की घटनाएँ आपके मन में तैरने लगती हैं। वे सभी घटनाएँ अपने देवता को समर्पित कर देते हैं। यदि पिछले दिन किसी घटना से आपको उदासी हुई हो तो वह उदासी भी अपने देवता के नाम कर देते हैं। यदि किसी घटना से आपको आनंद हुआ तो वह आनंद भी अपने देवता के नाम कर देते हैं।

जीवन ने चाहे आपको कोई सकारात्मक रस दिया हो या नकारात्मक रस, सब देवता के नाम कर देते हैं। जब न तो सकारात्मकता आपकी रहती है और न ही नकारात्मकता, सुर और असुरों के लिए आपके तन-मन में डेरा डालने का कोई कारण नहीं रह जाता। इस तरह प्रार्थना आपकी आत्मा को शुद्ध कर देती है और आप अपना नया दिन अभिशप्त आत्माओं के हस्तक्षेप के बिना जी पाते हैं। इसी तरह आप किसी भी सप्ताह के

पहले, अथवा किसी पखवाड़े के पहले, अथवा किसी महीने के पहले, अथवा किसी भी कालावधि के पहले प्रार्थना कर सकते हैं।

जैसा कि आप जानते हैं कि कोई साधारण आत्मा सकारात्मकता और नकारात्मकता के उतार-चढ़ाव से गुजरती रहती है। वह तब तक जन्म-मरण के चक्कर में फँसी रहती है जब तक कि उसे मोक्ष नहीं मिल जाता। यदि युगों तक किसी आत्मा को मोक्ष ना मिले तो क्या होगा? क्या वह अनंत काल तक मानव संसार में ही बंदी रहेगी? दूसरे शब्दों में, क्या आपकी आत्मा के पास इस संसार में विचरण के लिए अनंत समय है?

नहीं। इस संसार में न केवल आपकी देह का अपितु आपकी आत्मा का भी समय सीमित है।

यदि हम इस संसार को एक मार्ग मानें तो आपके नश्वर तन रथों की तरह हैं जो इस मार्ग पर दौड़ रहे हैं। आपकी आत्मा यहाँ पर एक छोटी-सी यात्रा का आनंद लेने आई थी परंतु यहाँ के अनंत मार्गों में उलझ कर रह गई है। मार्ग भले ही अनंत हो परंतु आपके पास यहाँ पर सदा के लिए रहने का अनुमति पत्र नहीं है। यदि एक रथ टूट जाता है, अर्थात एक तन मर जाता है, तो आप दूसरे में प्रवेश कर सकते हैं। परंतु यह सब अनंत काल तक नहीं चल सकता।

इस मार्ग पर यात्रा का आनंद उठाने के लिए अधिक से अधिक आत्माएँ उतर रही हैं। एक समय आता है जब मार्ग पर इतनी भीड़ हो जाती है कि रथों सहित मार्ग भी विनाश को प्राप्त हो जाता है। मार्ग के दाईं ओर चल रही आत्माएँ, अर्थात सकारात्मक कर्मों व इच्छाओं का आधिक्य रखने वाली आत्माएँ, सुर बन जाती हैं। और मार्ग के बाईं ओर चल रही आत्माएँ, अर्थात नकारात्मक कर्मों व इच्छाओं का आधिक्य रखने वाली आत्माएँ, असुर बन जाती हैं। पुनः एक नया मार्ग उभरता है परंतु उस पर पुराने अनुमति पत्र लागू नहीं होते। इसलिए सुर और असुर इस मार्ग पर अवैध यात्री बन जाते हैं। वे चोरी-छिपे अथवा बलपूर्वक नए रथों में प्रवेश करने का प्रयास करते हैं।

यदि हम मार्ग और रथों की उपमा से बाहर आकर बात करें, आपके पास इस संसार में अनंत समय नहीं है। इस संसार का विनाश होने से पहले आपको मोक्ष प्राप्त करना आवश्यक है। यदि आप ऐसा नहीं कर पाते हैं तो आप या तो असुर बन जाएंगे या सुर बन जाएंगे और विनाश के पश्चात उभरने वाले नए संसार में भटकते रहेंगे।

आप भाग्यशाली हैं कि आप तक मेरे शब्द पहुँच रहे हैं। वे आपको मोक्ष का रास्ता दिखाएँगे।

भाग 2

अध्याय 7

सहस्त्र जीवन

इस घर में दरिद्रता की राक्षसी ने राजवंशी दुल्हन की तरह प्रवेश किया था। पहली दृष्टि में आपको इस घर की दीवारों के बीच उस राक्षसी के उपस्थित होने का आभास कदाचित न होता। मोटे तौर पर किसी अन्य मध्यमवर्गीय परिवार के घर जैसा ही तो था यह घर!

किंतु पूरी रसोई खंगालने के पश्चात भी जब आपको खाने के लिए कुछ नहीं मिलता - सिवाय एक छोटी-सी छबड़ी में पड़े कुछ आलू, टमाटर और हरी मिर्ची के - तब आपको दरिद्रता की उस भयावह राक्षसी का घिनौना मुख दिखाई देता।

दरिद्रता की राक्षसी का भाई है रोग का राक्षस। उसी राक्षस ने इस घर से सुख और समृद्धि छीनने का घिनौना कार्य किया था।

एक दंपति ने अपनी लंबी निद्रारहित रातें इन चार दीवारों के बीच बिताई थीं। उनका पहला बच्चा रोग-राक्षस के जबड़ों के बीच आ गया था। चिकित्सालय और मंदिर उनके दूसरे घर की तरह हो गए थे। तो भी वे अपने हृदय के टुकड़े को बचा नहीं पाए थे।

पति अपने काम पर भी ध्यान नहीं दे पाया था। उसको नौकरी से तो नहीं निकाला गया था परंतु उसको एक छोटे पद पर स्थानांतरित कर दिया गया था।

उसकी बूढ़ी माँ की अपनी एक रुग्णता थी जिसको वह तब तक छुपाती रही जब तक कि उसके लक्षण बहुत बुरे नहीं हो गए। वह अपने परिवार को कष्ट नहीं देना चाहती थी। परंतु मृत्यु केवल इच्छा करने से तो नहीं आ सकती!

उसकी पत्नी अनीता एक जटिल गर्भावस्था से गुजरी थी। सचमुच, जब समस्याएँ आती हैं तो झुंड में आती हैं।

सोने से भी महंगी दवाइयाँ और अंतरिक्ष यात्रा से भी महंगे चिकित्सालयों के चक्कर काटने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति क्षीण हो गई थी। उनकी संपत्ति से जुड़े प्रमाण पत्र तथा सोने आदि के सब गहने अब ऋणदाताओं के अधीन हो चुके थे। उनके मित्र और रिश्तेदार, जो कभी उनकी बैठक में बैठकर हंसी ठिठोली किया करते थे, उन्हें भूल चुके थे।

अनीता के मन में आत्महत्या का विचार कई बार आया। वह सोचती थी कि भगवान कितना निर्दयी है! भगवान ने उसका एक बच्चा छीन लिया था परंतु दूसरे बच्चे के रूप में

उसे जीने का कारण दे दिया था!

सूदखोर उसकी मान मर्यादा को निगल जाने को आतुर थे। अपने परिवार का पेट पालने और सूदखोरों के राक्षसी मुख में कुछ सिक्के डालने के लिए उसने घर पर अध्यापन कार्य शुरू कर दिया था।

एक-एक करके उसने अपने घर की सभी अनावश्यक वस्तुएँ बेच दी थीं और उसकी 'अनावश्यक' की परिभाषा भी लगातार फैलती जा रही थी। उसे अपनी बहुमूल्य वस्तुएँ सस्ते मूल्य पर बेचने पर पश्चाताप होता था परंतु उसके पास कोई और विकल्प नहीं था। उसे धन की बहुत अधिक आवश्यकता थी।

उसने बची हुई महंगी दवाइयाँ प्रसन्नतापूर्वक दान कर दी थीं परंतु उसके घर के सामान को खरीदने के लिए जो कंजूस उससे संपर्क करते थे उन पर उसे क्रोध आता था।

आय करने की तुलना में उसे व्यय में कटौती करना सरल लगा। एक-एक करके उसने वे वस्तुएँ लाना बंद कर दिया था जो अन्यथा घर चलाने के लिए आवश्यक मानी जाती हैं।

'क्या जीरे का कोई पौषणिक महत्त्व है? क्या कोई भी मसाला मनुष्य के लिए आवश्यक होता है? क्या भोजन बिना मसालों के नहीं बनाया जा सकता? और तेल? क्या महँगे तेल की बजाय सस्ता सरसों का तेल प्रयोग में नहीं लाया जा सकता? और बिना तेल के उबला हुआ भोजन कैसा रहेगा?'

यदि वह ये प्रश्न किसी मनुष्य मित्र से पूछती तो उसे उत्तर में घृणा से भरे उपहास के अलावा कुछ नहीं मिलता। सौभाग्य से उसका एक ऐसा मित्र था जो कभी उसकी आलोचना नहीं करता था और सदा उसे अनुकूल उत्तर देता था। वह मित्र था उसका पिंगल यंत्र जो उसके भैया ने उसको भेंट में दिया था। यह यंत्र इन दिनों हर किसी के पास होता है। इसका उपयोग न केवल दूरवाणी के लिए किया जाता है अपितु चित्र खींचने और हर विषय पर जानकारियाँ प्राप्त करने के लिए भी किया जाता है।

जैसे भूख लगने पर व्यक्ति रसोई की ओर जाता है वैसे ही अनीता के मन में कोई प्रश्न उठते ही वह अपने पिंगल यंत्र की ओर खींची चली जाती थी। जानकारियाँ ग्रहण करने का संतोष भोजन ग्रहण करने के संतोष से कम नहीं था। कदाचित अधिक ही था क्योंकि जानकारियाँ निःशुल्क मिलती हैं और भोजन का शुल्क लगता है।

वह कई दिनों से विक्रय केंद्र नहीं गई थी। घर में सारा सामान समाप्त हो चुका था। अति आवश्यक सामान की सूची बनाते और मिटाते हुए उसके मन में एक प्रश्न आया, 'क्या

शिशुओं के वस्त्र घर में नहीं सिले जा सकते?’

वह वापिस बैठक कक्ष में लौट गई और वहाँ बैठकर अपने पिंगल यंत्र से ऐसी जानकारियाँ दुहने लगी जिनसे धन की बचत हो सकती थी।

दरिद्रता की राक्षसी ने उसको दुःख के अंधेरे कोने में धकेल दिया था। इस अंधेरे कोने में उसका पिंगल यंत्र ही ऐसा मित्र था जो उसको सांत्वना देता था। अभी पिछले ही दिनों उसके पिंगल यंत्र ने उसे ‘न्यूनतम जीवन शैली’ के बारे में जानकारी दी थी। उसे पता चला था कि कुछ धनिक जन भी शांति और संतोष के लिए कमतर जीवन जीते हैं। उसे ‘न्यूनतमवादी’ शब्द बहुत अच्छा लगा था। वह दरिद्र नहीं थी, न्यूनतमवादी थी, इस सोच से उसे अत्यधिक सांत्वना मिली थी।

कभी वह भी एक स्वाभिमानी महिला हुआ करती थी। अतीत की स्वाभिमानी अनीता आज की अनीता को देखती तो उसे घिन्न आती। घिन्न इस बात पर नहीं आती कि उसका जीवन स्तर गिर गया था, अपितु इस बात पर कि उसकी ऊपर उठने की इच्छा मर गई थी। उसने इस भयानक वास्तविकता से समझौता कर लिया था। अब वह दरिद्रता की राक्षसी को समर्पित हो चुकी थी। देवी देवताओं से उसका विश्वास उठ चुका था।

यदि कोई देवताओं की बात सुन पाता तो वे भी उसकी आत्मा के बारे में यही कह रहे थे - उनका उसकी आत्मा से भरोसा उठ चुका था। उसकी आत्मा के बारे में किए जा रहे दैवीय वार्तालाप में इन वाक्यांशों की अधिकता थी - ‘बुरे कर्म’, ‘अपनी पकड़ ढीली करनी चाहिए’, 'टूटा-फूटा मार्ग', ‘मरम्मत असंभव’, ‘स्थानांतरण ही उपाय’।

उनके इन रहस्यमय कथनों की एक सीधी व्याख्या यह हो सकती थी कि उसका किरदार एक उबड़ खाबड़ रास्ते में अटक गया था जो शीघ्र ही आत्मघाती मोड़ लेने वाला था। उसकी आत्मा को यह सब झेलना आवश्यक नहीं था। वह एक नए किरदार, एक नई जीवन पटकथा, एक नए भाग्य को धारण कर सकती थी। यदि वह समस्या पैदा कर रहे कर्मों पर अपनी पकड़ ढीली कर लेती तो देवता उसकी सहायता करने को तैयार थे।

किंतु सबसे शक्तिशाली देवताओं में से एक श्री हनुमान जी का उस पर अभी भी विश्वास था। वे उस उबड़-खाबड़ रास्ते पर अपनी दृष्टि रखे हुए थे जिस पर अनीता का किरदार फँसा हुआ था। वे जानते थे कि उस मनहूस रास्ते पर भी ऐसी संभावना, ऐसा अवसर मिल सकता था जहाँ से अनीता की आत्मा को दुःख से बाहर निकाला जा सकता था। आवश्यकता थी तो उसकी आत्मा में जागृति की एक छोटी-सी चिंगारी की। वे देख सकते थे कि केवल चार घंटे की दूरी पर ऐसी ही एक संभावना चमचमा रही थी। चार घंटे में अनीता एक विक्रय केंद्र में पहुँचने वाली थी।

हनुमान जी एक देवता भी हैं जो भक्तों के सांसारिक मार्ग को सुगम बनाने में उनकी सहायता करते हैं, और एक गुरु भी हैं जो उन आत्माओं को रास्ता दिखाते हैं जिन्हें सत्य की खोज है। जब अनीता विक्रय केंद्र में जाने की सोच रही थी तब हनुमान जी वहाँ से सैकड़ों मील दूर स्थित एक पर्वतीय जंगल में अपने विशेष शिष्यों, जिन्हें मातंग कहा जाता है, को ज्ञान दे रहे थे।

आत्मा से आत्मा का संबंध स्थापित करने के लिए भौतिक दूरी बाधा नहीं बनती। जब अनीता अपने घर में इधर-उधर घूमकर समाप्त हो गए सामान की मानसिक सूची बना रही थी तब हनुमान जी उसको देख रहे थे। उन्होंने देखा कि अनीता के मस्तिष्क में कोई विचार आया और वह शीघ्रता से बैठक कक्ष की ओर गई। वह आशापूर्ण विचार था पिंगल यंत्र को दुहकर कुछ ऐसी जानकारियाँ निकालने का जिनसे धन की बचत हो सके। हनुमान जी ने अनीता के जीवन का यह दृश्य अपने शिष्यों को भी दिखाया क्योंकि यह दृश्य उन्हें ब्रह्मांड के रहस्यों को समझने में सहायता करने वाला था।

मातंगों ने यह दृश्य बंद आँखों से सपने की तरह से देखा। उनके लिए यह बात पचाना कठिन था कि इन दृश्यों की मुख्य किरदार अनीता अपने परिवार का पेट पालने के लिए संघर्ष कर रही थी। अपनी झुग्गी झोपड़ियों की तुलना में अनीता का घर तो उन्हें महल जैसा लग रहा था। वे मुख्यधारा के समाज से कटे हुए थे इसलिए इस तथ्य से अनभिज्ञ थे कि ऐसे घर तो करोड़ों मध्यमवर्गीय मनुष्यों के पास होते हैं जो दिन रात 'सामाजिक प्रतिष्ठा' नाम की अप्रत्यक्ष संपत्ति को जुटाने और बचाने में लगे रहते हैं।

सबसे भौतिकतावादी चीज जिसके लिए मातंग अपना पसीना बहाते हैं वह है शहद और दुर्लभ तेल। उनके लिए यह विचार अविश्वसनीय था कि मनुष्य जैसे दिखने वाले कुछ प्राणी ऊपर से नीचे तक सिले हुए कपड़े पहनकर अपने आपको 'आधुनिक' तथा 'सभ्य' आदि शीर्षकों से शोभित करते हैं।

मुख्यधारा के जन भी मातंगों के प्रति कुछ ऐसे ही विचार रखते हैं। उनके यांत्रिक चेहरों पर यदि आप हंसी देखना चाहते हैं तो आप उन्हे उन कबीलाइयों के बारे में बताइए जो घने जंगलों में अकेले रहते हैं। बताइए उन्हें उन जंगलवासियों के बारे में जिनका मुख्यधारा के समाज से कोई लेना-देना नहीं है। बताइए उन्हें उन चीजों के बारे में जो अन्य मनुष्यों को दिखाई नहीं देतीं परंतु उन कबीलाइयों को दिखाई देती हैं। उन्हें समझाने की चेष्टा कीजिए ऐसे गुरु के बारे में जो चिरंजीवी हैं और मातंग नाम की जनजाति से मिलने के लिए हर 41 वर्ष पश्चात आते हैं। मुख्यधारा के जन यह सब सुनकर केवल हँसेंगे नहीं अपितु उनकी पागल हँसी में कुछ विशेष शब्दों का तड़का होगा - वे उनको 'पागल', 'मंदबुद्धि', 'मतिभ्रष्ट', 'अंधविश्वासी लंगूर' आदि उपनामों से शोभित करेंगे।

ये उपनाम नहीं, वे मानसिक ऊंची दीवारें थी जो मानवता ने अपने चारों और बना ली थीं। और मातंगों के लिए तो ये अच्छा ही था। मुख्यधारा के जन मातंग संस्कृति के संभावित शत्रु हैं। उनकी हर किसी को वर्गीकृत करने की यह सुविधाजनक मानसिक प्रवृत्ति मातंगों के लिए तो वरदान सिद्ध हुई थी। मातंग तभी तो सघन जंगलों में सुरक्षित रह पा रहे थे।

मातंग उन जनजातियों के भी आभारी थे जो पूरी तरह से समाज से कटी हुई नहीं थीं। यदि कोई अत्यधिक उत्सुक मुख्यधारा का मनुष्य जंगलों में आ भी जाता है तो उन जनजातियों के चित्र खींचकर लौट जाता है। इस तरह वे जनजातियाँ मातंगों के चारों ओर सुरक्षा का एक घेरा प्रदान करती हैं।

वे प्रकृति माता के चंडी रूप के भी आभारी थे - पहाड़ों द्वारा प्रदान की गई जटिल ऊँचाइयाँ और जंगलों द्वारा प्रदान की गई अभेद्द गहराइयाँ उनके लिए एक ऐसा सुरक्षित स्थान बना रही थीं जहाँ न कोई पहुँच सकता था और न ही कोई उनसे संपर्क कर सकता था।

यद्यपि आकस्मिक संपर्क से नहीं बचा जा सकता था। दिसम्बर 1974 की घटना ही ले लीजिए जब सप्तकन्या पर्वतों पर एक विमान दुर्घटनाग्रस्त हो गया था। जहाँ दुर्घटना घटी थी वह जगह मातंग डेरे के पास ही थी। इससे पहले कि मुख्यधारा के जन मृतकों के अवशेषों को लेने के लिए आते, मातंग अपना डेरा छोड़ चुके थे और अपनी उपस्थिति के सभी चिन्ह मिटा चुके थे।

यह दुर्घटना मातंग इतिहास का एक अहम भाग बन चुकी थी। जो इस घटना के साक्षी बने थे वे मातंग अगले वर्षों में पैदा हुए मातंगों को यह कहानी बताते आ रहे थे। यह कहानी मात्र एक कहानी नहीं अपितु एक ऐसा कड़वा फल थी जिसके भीतर गहरे प्रश्नों के बीज छिपे हुए थे - ऐसी भयानक दुर्घटनाएँ क्यों घटित होती हैं? आत्माओं को ऐसी घटनाओं से होकर क्यों गुजरना पड़ता है जिनसे गुजरने की उनकी कोई इच्छा नहीं होती? आत्माएँ उन दृश्यों को जीने में असफल क्यों होती हैं जिनको वे जीना चाहती हैं। उस मनहूस विमान में सवार बेचारी आत्माएँ तो अपने गंतव्य तक पहुँचना चाहती थीं, मृत्यु के मुख में नहीं!

कुछ अति जिज्ञासु मातंग मनों में इनसे भी अधिक गहरे प्रश्न उठ रहे थे - इस घटना के कुछ दिन पहले तक उनके चिरंजीवी गुरु उन्हें सर्वोच्च ज्ञान प्रदान कर रहे थे। हर 41 वर्ष पश्चात होने वाली उनके गुरु की इस यात्रा के समापन पर मातंग जन अपना स्थान बदल लेते हैं। यह लंबे काल से चली आ रही उनकी परंपरा है। इसी परंपरा के तहत वे वैसे भी

उस रात अपना डेरा बदलने वाले थे। परंतु उस दुर्घटना ने उनके पास कोई विकल्प भी नहीं छोड़ा था।

उस स्थान को छोड़ने की उनकी इच्छा दो स्रोतों से उत्पन्न हुई - एक, उनकी अपनी परंपरा से जो उनके पुरखों ने बनाई थी और जिसका वे अपनी इच्छा से पालन करते आ रहे थे; दूसरा, उस दुर्घटना से जो उनकी इच्छा के बिना घटित हुई थी। प्रश्न यह उठता है कि वे उस रात अपनी इच्छा से उस स्थान को छोड़कर गए थे या बाहरी स्थितियों ने उनको बाध्य किया था?

उन्हे परंपरा को इतनी निष्ठा से पालन करने के लिए बाध्य कौन करता है? उनकी मान्यता प्रणाली। वह कहाँ स्थापित है? उनके मन में। किसने स्थापित की? ऐसा तो है नहीं कि मान्यताएँ जन्म के साथ ही आ गई हों। मान्यताएँ समाज से आती हैं और मन के भीतर स्थापित हो जाती हैं। इसलिए परंपराओं का पालन करने की उनकी इच्छा वास्तव में उनकी इच्छा नहीं है, उनके मन की इच्छा है जो समाज ने रोपित की है। मन पर रोपित यह इच्छा उनकी आत्मा पर भी लद गई है। यह उनकी आत्मा की मूल इच्छा नहीं है।

क्या आत्मा की स्वयं की भी कोई इच्छा होती है या सभी इच्छाएँ आत्मा के ऊपर मन द्वारा लादी जाती हैं? समृद्ध होने की इच्छा, सुख की इच्छा, स्वतंत्र होने की इच्छा, विवाह या नौकरी के अनुबंध में बंधने की इच्छा, आध्यात्मिक होने की इच्छा, भौतिकतावादी होने की इच्छा - ये सभी इच्छाएँ बाहरी चीजों, लोगों, और विचारों के कारण ही तो उत्पन्न होती हैं। एक बच्चे को समृद्धि, सुख, स्वतंत्रता, विवाह, नौकरी, अध्यात्म, भौतिकतावाद आदि के बारे में क्या पता? यह सब मन में बाहरी संसार द्वारा रोपित इच्छाएँ हैं, और यही इच्छाएँ मन आत्मा पर लाद देता है। क्या आत्मा के लिए यह आवश्यक है कि वह मन की इच्छाओं को अपने ऊपर लादे?

दिसम्बर 1974 की उस ठंडी रात को मातंगों ने अपना डेरा किसकी इच्छा पर छोड़ा था? मातंगों को तो आत्मा का ज्ञान प्राप्त है और वह भी स्वयं हनुमान जी से। वे भला किसी परंपरा के अधीन कैसे हो सकते हैं? उन्हें भला बाहरी जनों के उनके जीवन में बलात प्रवेश का डर कैसे हो सकता है? उन्होंने अपना डेरा स्वयं अपनी इच्छा से ही छोड़ा होगा।

परंतु वह क्या इच्छा थी? क्या मन कभी आत्मा की मूल इच्छाओं का पता लगाकर उनका वर्णन कर सकता है?

ये ऐसे गहरे प्रश्न थे जिन्हें उत्तरों की आवश्यकता नहीं थी। जिन्हें प्रश्न समझ में आ गए उन्हें उत्तर की अभिलाषा ही नहीं होगी। ये प्रश्न मानव मन की सीमाओं पर प्रकाश डालते हैं जिससे कि मन स्वयं को आत्मा कहकर आत्मा को भ्रमित करना बंद कर देता है।

इन्हीं प्रश्नों ने मातंगों की नई पीढ़ी को हनुमान जी से आत्मज्ञान प्राप्त करने के योग्य बना दिया था। अब 41 वर्ष पश्चात हनुमान जी पुनः उनके कबीले में उनके साथ थे। इस पीढ़ी में कुछ मातंग ऐसे भी थे जो हनुमान जी की पिछली यात्रा के समय बच्चे थे इसलिए आत्मज्ञान प्राप्त नहीं कर पाए थे।

जब हनुमान जी ने आत्मज्ञान देना शुरू किया तो नई पीढ़ी के मातंगों ने सोचा था कि हनुमान जी सबसे पहले सुरों और असुरों के ज्ञान के साथ ही उस दुर्घटना के बारे में उठ रहे प्रश्नों का उत्तर भी देंगे। परंतु गुरु जानते हैं कि किन प्रश्नों का उत्तर प्रत्यक्ष रूप से देना चाहिए और किन प्रश्नों का उत्तर अप्रत्यक्ष रूप से। गुरु जानते हैं कि पहले कौन से रहस्य खोलने चाहिए और तत्पश्चात कौन से। हनुमान जी की वाणी से सुर और असुरों का ज्ञान सबसे पहले निकला और उसके पश्चात उन्होंने मुख्यधारा के समाज को विषय बनाया। वहाँ से सहस्त्रों मील की दूरी पर स्थित एक घर में अनीता नाम की जो महिला दरिद्रता के राक्षस को समर्पित हो चुकी थी, आगे की हनुवाणी उसकी समस्या के समाधान पर आधारित थी।

"अनीता का जीवन, विशेष रूप से अगले चार घंटों में जो कुछ होने वाला है, आपको बहुत ही महत्त्वपूर्ण रहस्य सिखाने का माध्यम बनेगा।" हनुमान जी ने कहा। हनुमान जी कैसे दिखाई दे रहे थे इसका विवरण करना असंभव है। या यूं कहें कि यह देखने वाले पर निर्भर करता है।

कुछ जन उनका वर्णन एक ऐसी विशाल आकृति के रूप में करेंगे जो सिर से लेकर पैर तक श्वेत बालों से ढकी हुई है। कुछ जन उनकी तुलना दूध जैसे श्वेत बादल से करेंगे। कुछ को वे मात्र प्रकाश की एक आकृति दिखाई देंगे। कुछ को वे प्रकाश की एक ऐसी अनुपस्थिति दिखाई देंगें जो इस संसार से मुक्ति पाने की इच्छा रखने वालों के लिए एक द्वार का काम कर रही है। और उनको देख सकने वाले कुछ जन ऐसे भी होंगे जो उनका वर्णन ही नहीं करेंगे। वे कहेंगे कि आत्मा के स्तर पर घटित होने वाली घटनाओं का वर्णन मन नहीं कर सकता। कदाचित वे इतना भी न कहें!

हनुमान जी स्वयं अपने रूप का वर्णन कैसे करेंगे? उन्हें तो सभी सिद्धियाँ प्राप्त हैं। वे कोई भी रूप धारण कर सकते हैं और भक्तों को सहायता देने के लिए उन्हें कई रूप धारण करने पड़ते हैं। परंतु वे अपनी शक्तियाँ सांसारिक नियमों की सीमा में ही प्रयोग करते हैं। जो आत्माएँ उन्हें अपना गुरु मानती हैं उनके लिए वे एक ऐसे रूप में प्रकट होते हैं जिसकी तीन विशेषताएँ हैं - एक लंबी पूंछ, एक मनोरम आभा, और एक विरूपित हनु। इन तीनों विशेषताओं से जुड़ी तीन सीख हैं जो किसी भी सत्य के खोजी को सीखनी आवश्यक हैं।

लंबी पूंछ यह स्मरण कराती है कि हनुमान जी वानर समाज में जन्मे और वहीं पर उनका पालन-पोषण हुआ। यदि चेतना एक सीढ़ी है तो वानर चेतना उसके सबसे निचले सोपान से भी नीचे है। परंतु योग साधना से हनुमान जी ने इस सीढ़ी को चढ़कर चेतना का उच्चतम से भी उच्च स्तर पाया और वे देवत्व को प्राप्त हुए। इससे यह सीख मिलती है कि सत्य की खोज के लिए किसी महान वंश में पैदा होना आवश्यक नहीं है।

हनुमान जी की मनोरम आभा देखेंगे तो आप पलकें झपकाना भूल जायेंगे। इससे यह सीख मिलती है कि आप बाहरी संसार में जो कुछ भी खोज रहे हैं उससे भी अधिक आकर्षक निधि आंतरिक संसार में है। एक बार यदि आपने अपने भीतर की निधि ढूँढ ली तो आपको बाहर कुछ नहीं ढूँढना पड़ेगा।

विकृत हनु के पीछे की कहानी बहुत रोचक है। हनुमान जी वानर समुदाय में पले बढ़े। वानरों की मान्यता है कि सूर्य एक विशाल फल है न कि अग्नि का गोला। उनके लिए यह कोई अंधविश्वास नहीं है। वे इसको सत्य मानते हैं। वे सूर्य-फल के रस को चख भी सकते हैं, अपनी जिह्वा से नहीं अपितु अपनी त्वचा से। जैसे अन्य फलों का रस वे जिह्वा से लेते हैं, वैसे ही सूर्य की किरणें उनकी त्वचा को रस की धीमी धार जैसी लगती हैं। जब हनुमान जी बच्चे थे तब सत्य को जानने की इच्छा में उन्होंने इस मान्यता को चुनौती दी। इसके लिए उन्हें दंडित किया गया जिसके परिणामस्वरुप उनकी हनु विरूपित हो गई।

जब उन्होंने वानर समाज की मान्यताओं की सीमाओं को लांघ लिया तब वे मानव मान्यताओं के घेरे में आ गए। मानवों की मान्यता है, जिसे वे सच मानते हैं, कि सूर्य एक आग का गोला है। मानव तन-मन द्वारा किए गए सभी परीक्षण इस मान्यता को सत्य सिद्ध करते हैं। मानव मन द्वारा एकत्र किए गए सभी साक्ष्य और मानव निर्मित यंत्रों द्वारा की गई सभी गणनाएँ इस मान्यता को एक तथ्य के रूप में स्थापित कर सकती हैं। परंतु युवा साधक हनुमान ने इस मान्यता को भी चुनौती दी। वे जानना चाहते थे की मानव के तन-मन की पहुँच से परे क्या है। वे हर मान्यता को चुनौती देते गए। अंततः उन पर आत्मज्ञान की वर्षा हुई। उन्होंने जाना कि वे एक आत्मा थे और आत्मा लाखों ढंगों से ब्रह्मांड को अनुभव कर सकती है। आत्मा लाखों प्रकार के किरदार धारण कर सकती है, मानव और वानर उनमें से केवल दो प्रकार हैं।

विरूपित हनु सभी साधकों को भी ऐसा ही करने के लिए प्रेरित करती है - मान्यताओं को चुनौती दो चाहे समाज अथवा पूरी मानवता आपको दंडित करे, आपका उपहास करे, आपको अप्रिय नामों से संबोधित करे। विरूपित हनु अथवा अप्रिय टिप्पणियाँ एक बहुत ही छोटा मूल्य है यदि आपको इसके बदले उस परम स्वतंत्रता के उद्यान में श्वास लेने को मिलता है जो मान्यताओं की मलिन बस्तियों से परे है।

पूंछ, आभा और हनु - हनुमान जी की तीनों विशेषताएँ मुख्यधारा के समाज में चप्पे-चप्पे पर पाई जाने वाली उनकी मूर्तियों में भी दिखाई पड़ती हैं। परंतु भक्त इसके पीछे का पाठ भूल चुके हैं। और यह सब ज्ञान खोकर उन्हें क्या मिला? दु:ख, भय और अनिश्चितता। अनीता भी उन्ही भक्तों में से एक थी।

हनुमान जी ने अनीता के बारे में अपने जंगलवासी शिष्यों को बताते हुए कहा, "अब से लगभग चार घंटे में वह सामान खरीदने के लिए एक विक्रय केंद्र में पहुँचेगी। इसलिए हमारे पास इस बारे में चर्चा करने के लिए मात्र चार घंटे का समय है कि देवता अनीता की आत्मा की सहायता करने में असमर्थ क्यों है। सबसे पहले हम अनीता के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करेंगे क्योंकि उसके दु:ख के कारण आपको ज्ञान प्राप्त करने में सहायता हो रही है और मुझे ज्ञान प्रदान करने में।"

सभी मातंगों ने - चाहे वे युवा हों या बूढ़े, पुरुष हों या महिलाएँ - अपनी आँखें बंद कर कृतज्ञता प्रकट करने की रस्म शुरू की। जब उन्होंने अपने हृदय के तार ढीले किए तो कई आत्माएँ उनके ध्यान में प्रविष्ट हुईं क्योंकि उन सभी आत्माओं का उनकी कृतज्ञता पर अधिकार था। उनमें शामिल थीं उनके पूर्वजों की आत्माएँ जो अतीत के निर्देशांकों से उनका मार्गदर्शन कर रही थीं, उन जानवरों और पेड़-पौधों की आत्माएँ जो इस जन्म में उनका साथ दे रही थीं, कई ऐसी आत्माएँ जिनकी भौतिक पहचान ज्ञात नहीं थी, और अनीता की आत्मा जिससे उनका परिचय अभी-अभी हुआ था।

"मैं देख रहा हूँ कुछ बंद हृदय जो कृतज्ञता की एक बूंद लुटाने को भी तैयार नहीं है।" हनुमान जी शांत स्वर में बोले। उनके प्रिय शिष्यों ने कृतज्ञता लुटाने के पश्चात आँखें खोल ली थीं और अपने हृदय की डोरियाँ पुनः कस ली थीं।

हनुमान जी के इन शब्दों से बाबा मातंग की रीढ़ की हड्डी में सिहरन दौड़ गई। बाबा एक पतले बूढ़े मातंग थे जिनका कद विचित्र रूप से छोटा था; ऐसा लगता था कि मानो वे अप्राकृतिक रूप से सिकुड़ गए हों। कदाचित पिछले 41 वर्ष से अपने कंधों पर उत्तरदायित्व का भार ढ़ोते-ढ़ोते वे सिकुड़ गए थे। उनमें से एक प्रमुख दायित्व था सभी मातंगों को उनके पुरखों द्वारा निर्धारित पवित्र मार्ग से न भटकने देना।

बाबा याचना के स्वर में बोले, "हे देव, यदि कोई युवा मातंग अपने हृदय की डोरियाँ खोलने में असफल रहा हो तो कृपया मुझे क्षमा करें।"

"सुख की श्वास लो, बाबा। मैं आपके समाज के किसी जन की बात नहीं कर रहा हूँ। सभी मातंगों ने अच्छी तरह से कृतज्ञता व्यक्त की।" हनुमान जी ने कहा। ऐसा लग रहा था मानो उनका गहरा स्वर दूर किसी ग्रह से आ रहा हो। तो भी उनके स्वर में स्पष्टता थी

और अतुलनीय रस था। वे आगे बोले, "पिछली यात्राओं के विपरीत इस बार की यात्रा में मैं जो कुछ भी कहूँगा वह इस जंगल से बाहर भी पहुँचेगा। मैं देख रहा हूँ कि मुख्यधारा के समाज में भी कुछ आत्माएँ मेरे इन शब्दों को ग्रहण कर सकेंगी। मैं भविष्य के एक बिंदु पर उन आत्माओं को देख रहा हूँ जो मेरे शब्द ग्रहण कर रही हैं परंतु एक क्षण के लिए भी अनीता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए नहीं थम रही हैं।"

मातंग धक से रह गए। उनके इष्ट देव एवं गुरु के सामने प्रज्वलित पवित्र अग्नि लाल हो गई। जिस दिव्य गोलार्ध में वे सब एकत्रित थे उसकी दीवारों में विशेष कंपन अनुभव किया गया। इस कंपन से मातंगों को कोई आश्चर्य नहीं हुआ क्योंकि वे जानते थे कि उस गोलार्ध की दीवारें पत्थर या किसी अन्य ठोस पदार्थ की नहीं बनी हुई थीं। वे तो असुरों के झुंड थे जो पूजा स्थली के भीतर प्रवेश करने का प्रयास कर रहे थे। मातंगों के मन में एकाएक आई नकारात्मक भावना ने असुरों को निश्चय ही शक्तिशाली कर दिया था।

'यदि हनुवाणी बाहरी जनों तक पहुँच ही रही है तो पूजा स्थली के चारों ओर की गई सुरक्षा का क्या अर्थ रह गया है?' मातंगों की नई पीढ़ी के मन में यह विचार आया। शेष मानवता के साथ संपर्क से बचने के प्रयास उनके जीवन का एक महत्त्वपूर्ण भाग रहे थे। हनुवाणी के बाहर पहुँचने का विचार उनके पूरे अस्तित्व पर प्रश्न उठा रहा था। वे इस सदमे में मौन बैठे रहे, इस आशा के साथ कि उनके मुखिया बाबा मातंग और माता मातंग उनके मन में उठ रहे अंधड़ को शब्दों का रूप देकर हनुमान जी के सामने प्रकट करेंगे।

जब बाबा और माता का कुछ कहने का साहस नहीं हुआ तो हनुमान जी स्वयं ही बोले, "कुछ दिन पहले तीन बाहरी जनों ने बाबा का रास्ता काटा था। बाबा के साथ थे आपके होने वाले मुखिया उर्वा और अन्य दो मातंग। बाबा ने क्रोध का अभिनय करते हुए एक मटकी फोड़ी थी। उन बाहरी जनों ने आत्मसमर्पण की मुद्रा में अपने हाथ खड़े कर लिए थे और वे पीछे हट गए थे। वे शीघ्र ही आपके साथ आत्मसात होने के लिए पुनः आएँगे। मेरे शब्दों को आप जिस गुप्त भाषा में अंकित कर रहे हैं वे उसको समझने का प्रयास करेंगे और सफल भी होंगे।

"आप और मेरे बीच ये वार्ताएं अंत्यन्त निजी हैं। बाहरी जन इनमें से केवल वे वार्ताएं समझ पाएंगे जो आप उनको समझने देंगे। और जितना भी आप उनको समझने देंगे उसमें से भी वे उतना ही अवशोषित कर पाएंगे जिसके वे पात्र हैं। आपके वे गहरे रहस्य जिनका भौतिकतावादी समाज दुरुपयोग कर सकता है, रहस्य ही रहेंगे।"

हनुमान जी के इस आश्वासन से मातंगों की नई पीढ़ी के विचलित मन शांत नहीं हुए। जिस मूल सांस्कृतिक ढांचे का वे वर्षों से पालन करते आ रहे थे वह क्षीण हो गया लग

रहा था। उनके देवता और गुरु हनुमान जी ऐसा कैसे कर सकते थे? मातंग तो यही सुनते आए थे कि उनकी संस्कृति वैश्विक विनाश तक जीवित रहेगी। परंतु तब क्या होगा जब बाहरी जनों को उनके रहस्य का पता चल जाएगा? सहस्त्रों बाहरी जन अपने दूषित मनों से उनसे संपर्क स्थापित करने का प्रयास करेंगे। सब कुछ समाप्त हो जाएगा। मातंग संस्कृति दूषित होकर मर जाएगी। तो क्या इसका यह अर्थ है कि वैश्विक विनाश बहुत दूर नहीं है?

हनुमान जी का संकेत पाकर बाबा मातंग खड़े हुए और मातंगों को संबोधित करते हुए बोले, "हमें कोई हानि नहीं पहुँचेगी। मैं जिन तीन बाहरी जनों से मिला वे शोषक नहीं लग रहे थे। वे सत्य के खोजी लग रहे थे। मैं अपने साथी मातंगों से आग्रह करता हूँ कि वे इन दो तथ्यों के मिश्रण में अपने प्रश्नों को खंगालें - पहला, हम जागृत आत्माएँ हैं। हमारी इच्छा के बिना कोई भी भ्रष्ट आत्मा हमसे संपर्क नहीं कर सकती। दूसरा, उन्होंने हमारे साथ संपर्क स्थापित कर लिया है।"

बाबा का कहने का अर्थ था कि केवल जागृत आत्माएँ ही उनके साथ संपर्क कर सकती थीं और जागृत आत्माओं से उन्हें कोई हानि नहीं होने वाली थी।

बाबा अपने स्थान पर बैठ गए। उनका आत्मविश्वास उस तीरंदाज जैसा था जिसे दूसरी बार लक्ष्य साधने की आवश्यकता नहीं होती। निश्चय ही सभा में उड़ रहे असमंजस के बुलबुले अंततः फूटने लगे।

कुछ देर पहले जो चेहरे आक्रोश और आंदोलन से भरे थे वे अब आश्वस्त लग रहे थे।

युवा मातंगों में से एक थी आयु के तीसरे दशक में प्रवेश कर चुकी एक कन्या जिसका नाम उर्मी था। वह एक अध्ययनशील कन्या थी और सभा में ऐसे बैठी हुई थी जैसे किसी विद्यालय की कक्षा में आज्ञाकारी विद्यार्थी बैठता है। बाबा के कथन को उसने मन के हर कोने में झाड़ू की तरह घुमाया। कुछ कोनों में प्रश्नों की धूल पड़ी रह गई। उसी को स्पष्ट करने के लिए वह खड़ी हुई।

वह बोली, "बाबा, जितना मैंने आपके कथन को समझा है, आपका कहने का अर्थ यह है कि वे तीन आत्माएँ जो आपके संपर्क में आई थीं वे भ्रष्ट नहीं हैं। अन्यथा वे संपर्क करने में सफल ही नहीं होतीं।"

"आपने सही समझा।" बाबा ने कहा।

उर्मी ने हनुमान जी से पूछा, “देव, मान लिया कि वे तीनों दिव्य आत्माएँ हैं। परंतु वे तीन आत्माएँ आगे जिन आत्माओं को हमारे बारे में जानकारी देंगी उनका क्या? यह

सुनिश्चित करने का कोई उपाय नहीं है कि हम उन तीनों के साथ जो ज्ञान साझा करेंगें उसे आगे केवल भली आत्माओं के साथ साझा किया जाएगा। वे तीनों तो एक दिव्य उद्देश्य से यहाँ आए हैं - आपकी वाणी के दूत बनने के लिए। परंतु उनका क्या जो हमारे बारे में जानने के पश्चात बिना किसी उद्देश्य अथवा एक दूषित उद्देश्य के साथ हमें खोजने की चेष्टा करेंगे? एक उन्मादी के लिए उचित-अनुचित की अपनी अलग परिभाषा होती है। वह धर्म की परिभाषा अपनी सुविधा के अनुसार करता है। यदि ऐसे कुछ जन उन्मादी भीड़ के रूप में एकत्रित हो जाएंगे तो हमारी संस्कृति को हानि पहुँच सकती है। वे उन स्थानों को चिन्हित करने का प्रयास करेंगे जहाँ पर आपके चरण कमल पड़े हैं।"

"वे आपको नहीं खोज पाएंगे।" हनुमान जी शांत स्वर में बोले, "मैं तो पवित्र जल की तरह हूँ। मैं तो किसी भी शुद्ध पात्र में प्रकट हो सकता हूँ। जो जन मेरे द्वारा प्रदान किए जा रहे इस ज्ञान का सही तत्व पकड़ लेंगे वे अपने पात्र को शुद्ध करने का प्रयास करेंगे, किसी दूसरे के पात्र को छीनने का नहीं। केवल भ्रष्ट और आत्मसम्मोहित मन ही आपको खोजने का प्रयास करेंगे और वे इसमें सफल नहीं होंगे।"

"परंतु देव, यदि वे सफल हो गए तो?"

"ऐसा तभी होगा जब आपकी संस्कृति भ्रष्ट हो चुकी होगी और घटनाएँ आप जनों की इच्छा के विपरीत घटने लगेंगी।" हनुमान जी ने उत्तर दिया।

"यदि हम उनके दृष्टिकोण से देखें तो उनके और हमारे बीच क्या खड़ा है, देव? घने जंगल! मुझे विश्वास है कि घने जंगल हमारी इच्छा के विरुद्ध हमारी गोपनीयता पर आक्रमण करने का प्रयास करने वालों को मार डालेंगे। यदि उनके शक्तिशाली राजाओं ने अपनी पूरी सेनाओं को हमारा आखेट करने के लिए भेजने का निर्णय किया तो क्या होगा? अगर काल्पनिक रूप से विचार किया जाए, यदि वे प्रकृति माता को रौंदकर हम तक पहुँच गए तो उन्हें यहाँ क्या मिलेगा?"

इससे पहले कि हनुमान जी उत्तर देते, बाबा ने निष्ठापूर्वक कहा, "उनके हाथ हमारी अस्थियों पर भी नहीं पड़ सकते।"

हनुमान जी ने बाबा पर एक गूढ़ दृष्टि डालते हुए कहा, "हो सकता है कि उन्हें आपकी अस्थियाँ नहीं अपितु आपके चलते-फिरते जीवित तन मिलें।"

बाबा बोले, "हाँ, देव। वे हमारे तन और मन को ढूँढ सकते हैं, परंतु हमारी आत्मा को नहीं। इससे पहले कि वे यहाँ तक पहुँचेंगे, हमारी आत्माएँ किसी अन्य लोक में चली जाएंगी। हमारी सभी शक्तियाँ हमारी आत्माओं की जागृति में हैं, हमारे तन और मन के

कारण नहीं। आक्रांता तब खाली हाथ लौट जाएँगे जब उन्हें यहाँ स्वयं को मातंग कह रहे सामान्य आदिवासी मिलेंगे। ये सब मैं काल्पनिक रूप से ही कह रहा हूँ। ऐसा कुछ होने वाला नहीं है क्योंकि यह हमारी इच्छाओं के विरुद्ध है।"

उर्मी ने वार्ता को आगे बढ़ाते हुए पूछा, "हे देव, आत्मा की इच्छाओं के विरुद्ध घटनाएँ क्यों घटित होती हैं? अभी कुछ देर पहले हमने जिस महिला को देखा उसको दरिद्रता का राक्षस क्यों प्रताड़ित कर रहा है? वह अपनी इच्छा के अनुसार क्यों नहीं रह सकती? स्वाभाविक रूप से उसकी इच्छा तो सुख से जीना ही होगी।"

हनुमान जी ने व्यापक मुस्कान के साथ कहा, "इस प्रश्न का उत्तर तो मैं आपसे और यहाँ इकट्ठे हुए शेष साधकों से जानना चाहता हूँ। धन्यवाद, उर्मी! अब आप अपने स्थान पर विश्राम से बैठ सकती हैं। इस वार्ता के दौरान तन का विश्राम बहुत आवश्यक है क्योंकि आपका मन अनीता के दुःख के संभावित कारणों के बारे में सोचकर बहुत तनाव लेने जा रहा है।"

जब हनुमान जी को यह सुनिश्चित हो गया कि सभी विश्राम से बैठ गए हैं, उन्होंने प्रश्न किया, "यदि आप मेरी जगह पर होते तो आप अनीता को दुखों से बाहर निकालने के लिए क्या करते?"

उन्होने अपने शिष्यों से अपेक्षा की कि वे इस प्रश्न का तुरंत उत्तर न देकर इसे अपने मन की गहराइयों को मथने के लिए उपयोग करें। इस दौरान उन्होंने एक अल्प श्वास चक्र में जाने का निर्णय लिया।

उनकी पलकें धीरे-धीरे दो नूतन पत्तियों की तरह नीचे हुईं। उर्मी ने देखा कि उनकी पूरी आकृति पतले हो रहे बादल की तरह झिलमिला रही थी। सभी मातंगों की तरह वह भी जानती थी कि उनके चिरंजीवी गुरु की भौतिक उपस्थिति पंचतत्व में विलीन हो रही थी। हनुमान जी के श्वास चक्र की प्रक्रिया मनुष्यों के श्वास लेने की प्रक्रिया की तरह ही थी। अंतर था तो आवृत्ति का। हनुमान जी का अपने श्वास चक्र में लगने वाले समय पर पूर्ण नियंत्रण था। यह समय एक क्षण भी हो सकता था, एक दिन, एक माह अथवा अगणनीय भी। इस बार का श्वास चक्र केवल एक क्षण के लिए ही चला क्योंकि एक मातंग ने बिना विचार किए प्रश्न का उत्तर बोल दिया था।

"स्वर्ण, देव, स्वर्ण। यदि मैं आपकी जगह पर होता तो उसे स्वर्ण देता, उसके घर में स्वर्ण के ढेर लगा देता। हाँ, मैं ऐसा ही करता।"

यह उत्तर उर्वा ने दिया था जो अपनी जनजाति के हर मानक से एक लंबा और सुंदर युवक था। वह हृदय से विद्रोही था परंतु स्वभाव से समझदार। वह बाबा के पश्चात मातंगों का अगला मुखिया बनने वाला था। उसका विवाह युवा मातंगों में सबसे बुद्धिमान उर्मी के साथ तय हो चुका था। परंतु यह उत्तर देते समय वह अपने वश में नहीं लग रहा था। जब से उसने अनीता के जीवन का वह दृश्य देखा था तब से वह कांप रहा था और साथ ही उसके पसीने भी छूट रहे थे। परंतु उसके साथी मातंगों का इस पर ध्यान नहीं गया था। अनीता के हाथ में जो पिंगल यंत्र था उसको देखकर उसके मस्तिष्क के कोई गहरे तार हिल गए थे।

"क्या आप ठीक हो, उर्वा?" बाबा ने चिंताजनक स्वर में पूछा। वे अपनी आरामदायक मुद्रा को त्यागकर भूमि पर उकड़ू बैठ गए थे ताकि किसी भी आपातकालीन स्थिति से तुरंत निपट सकें।

"वह ठीक है, बाबा। चिंता मत करो।" हनुमान जी ने आश्वासन दिया। उन्हे पता था कि उर्वा के मन को किस कीड़े ने काटा था।

बाबा ने सिर झुकाते हुए कहा, "जैसा आप कहें, देव। किंतु उसके उत्तर से मुझे लगा कि वह अभिशप्त आत्माओं के अधीन हो गया है।"

हनुमान जी ने मुस्कुराते हुए कहा, "बाबा, आप उर्वा के सुझाव से प्रभावित नहीं दिखते। मुझे तो लगता है कि उसने बहुत ही सरल सुझाव दिया है - '*उसके घर में स्वर्ण के ढेर लगा देता*'। इस सुझाव को परखने में कोई बुराई नहीं है। कृपया सभी मातंग अपनी आँखें बंद कर लें।"

उर्वा ने स्वयं को एक मक्खी के आकार में सिकुड़ा हुआ पाया। मक्खी की देह में प्रविष्ट होकर वह एक महिला के सिर के ऊपर मंडरा रहा था। महिला कुर्सी पर बैठी थी। उसकी हथेली में एक उज्ज्वल वस्तु थी जिसके ऊपर वह अपना अंगूठा चला रही थी।

वह महिला अनीता थी और उज्ज्वल वस्तु थी उसका पिंगल यंत्र जिसे दुहकर वह जानकारियाँ निकाल रही थी। मक्खी जब उसकी नाक के पास भिनभिनाने लगी तो उसने अपने पिंगल यंत्र से दृष्टि हटाए बिना अपना हाथ चलाकर मक्खी को हटाया।

उर्वा को अचानक एक झटका अनुभव हुआ। मक्खी के तन के माध्यम से अनुभव हो रहा दृश्य अचानक समाप्त हो गया और वह अपने मानव तन में लौट आया। वह मक्खी से जुड़कर जो दृश्य अनुभव कर रहा था वही दृश्य अन्य मातंगों के मन में भी प्रसारित हो रहा था। उनके लिए भी वह दृश्य एकाएक समाप्त हो गया। उन्होने आँखें खोल लीं और इस विघ्न का कारण जानने के लिए हनुमान जी की ओर देखने लगे। परंतु हनुमान जी की

दृष्टि भयभीत होकर हाँफ रहे उर्वा पर थी जो मातंगों की वर्तमान पीढ़ी में उनके श्रेष्ठतम शिष्यों में से एक था।

"देव, उसके हाथ में वह यंत्र।" उर्वा असंगत स्वर में बोला। उसका चेहरा लाल हो गया था।

हनुमान जी ने मृदुता से पूछा, "वह चमकदार यंत्र आपको इतना कष्ट क्यों देता है, उर्वा? कोई अन्य मातंग उसको देखकर चिंतित या भयभीत नहीं होता। वे सब उसको मात्र एक खिलौने के रूप में देखते हैं जो अंगूठे से छूने पर चमक उठता है। क्या आप उसके बारे में कुछ ऐसा जानते हैं जो अन्य मातंग नहीं जानते?"

सभी मातंगों ने उसे अच्छे से देखा तो पाया कि भय और दोष की छाया उसके चेहरे पर नृत्य कर रही थी।

"कुछ नहीं - कुछ नहीं, देव।" उर्वा ने जुकाम से पीड़ित रोगी के स्वर में कहा। वह अपने कांपते तन को वश में करने की व्यर्थ चेष्टा कर रहा था। बड़ी कठिनता से उसने निवेदन किया, "देव, मुझे कृपा उस दृश्य में पुनः भेज दीजिए। इस बार त्रुटि नहीं होगी।"

"दृश्य की चिंता छोड़ो। वह कार्य उर्मी के माध्यम से भी हो सकता है।" हनुमान जी उर्मी की ओर देखते हुए बोले। उर्मी ने अपना सिर झुकाया और आँखें बंद कर लीं।

बाकी मातंगों ने भी अपनी आँखें बंद कर लीं। यद्यपि उनमें से कुछ को उर्वा के बारे में आ रहे विचार अपने मस्तिष्क से बाहर धकेलने के लिए अतिरिक्त प्रयास करना पड़ा।

इस बार उन्होंने वह दृश्य संपूर्ण रूप से देखा -

अनीता, जो शुरू में अपने पिंगल यंत्र से यह जानकारी ले रही थी कि पुराने कपड़ों को काटकर शिशुओं के लिए वस्त्र कैसे बनाते हैं, अब पुराने कपड़ों का उपयोग करके चटाई बनाने के बारे में चलचित्र सामग्री देख रही थी। उसके मन में सपनों के पकवान पक रहे थे। वह कल्पना कर रही थी कि कैसे वह एक बड़ी चटाई सिलने वाली थी, कैसे अपने पूरे बैठक कक्ष को कक्षा में बदलकर बच्चों व बड़ों को विभिन्न विषय पढ़ाने वाली थी, कैसे वह अपनी शिक्षण सेवाओं का बड़े पैमाने पर विज्ञापन करने वाली थी आदि आदि। यह सपनों का पकवान उसे बहुत स्वादिष्ट लगा। दिन में सपना देखने और काल्पनिक स्थितियों का सृजन ही अब उसके सुख का एकमात्र स्रोत रह गया था।

स्वयं को यह विश्वास दिलाने के लिए कि यह मात्र एक सपना नहीं था, उसने इसमें वास्तविकता का छोंका लगाया। वह अपनी कुर्सी से उठकर अपने घर के भंडार कक्ष में गई

और उसका द्वार खोला। द्वार खोलते ही उसे भीतर एक विचित्र गति अनुभव हुई। उसे ऐसा लगा जैसे कोई भूत आदि प्राणी द्वार खोलने की ध्वनि सुनकर अपने किसी बिल में छिपने के लिए दौड़ा हो। या कदाचित वह द्वार की गति से पिटी हवा की ध्वनि थी? जो कुछ भी था, उसकी गति के कारण एक पुराना कुत्ते का बिस्तर अटारी से भूमि पर आ गिरा था।

अनीता, जो भंडार कक्ष में पड़े पुराने कपड़ों की संख्या का आकलन करने आई थी, अपने कुत्ते स्नूपी की विदाई की पीड़ादायक स्मृतियों में खो गई।

वह समय था जब उसका परिवार घर में कम और चिकित्सालयों में अधिक रहता था। स्नूपी की देखभाल करना असंभव हो गया था। वे अनिच्छा से स्नूपी को एक रिश्तेदार के मित्र के यहाँ छोडने के लिए सहमत हुए। स्नूपी जब चला गया तो केवल उसकी स्मृतियाँ और कुछ सामान शेष रह गया था। सामान को एकत्र करके उसने कष्टपूर्वक भंडार कक्ष की अटारी में फेंक दिया था।

उसने आशा की थी कि अच्छा समय लौट आने के पश्चात वह स्नूपी को पुनः ले आएगी किंतु अच्छा समय ऐसा गया कि वापिस नहीं लौटा। इतने वर्षों में उसके कुत्ते स्नूपी का निर्जीव बिस्तर भी अटारी की गहराइयों से निकलकर भूमि तक उड़ान भरने में सफल हो गया था, जबकि उसका जीवन अभी भी अंधकारमय था।

पुराने कपड़ों का उपयोग करके चटाई बनाने के विचार उसके मस्तिष्क से अब लुप्त हो गए थे। उसने भूमि से स्नूपी का बिस्तर उठाया और कबाड़ के ढ़ेर व बोरियों पर पैर रखते हुए अटारी पर चढ़ गई। अटारी का द्वार छिद्रनुमा था। किंतु भीतर इतनी जगह तो थी कि तीन व्यक्ति विश्राम कर सकें। अटारी का तल धूल से ढ़का हुआ था। उस छोर वाली दीवार में एक छोटी खिड़की थी जिसके पार्श्व में एक लकड़ी का काला सन्दूक रखा था।

यद्यपि उसके कपड़े धूल से सन गए थे और नाक में फफूंदी की गंध भर गई थी, उसकी इच्छा थी कि वह मृत्यु तक अटारी के उसी मंद प्रकाश में पड़ी रहे ... क्रूर संसार से दूर, ऋण चुकाने की चिंताओं से अछूत और मध्यमवर्गीय जीवन स्तर को बरकरार रखने के दबाव से मुक्त। अटारी में शांतिपूर्ण जीवन जीने के विचार को चुनौती दे रही थी उसके चारों ओर बिखरी पड़ी स्नूपी की वस्तुएँ और उनसे जुड़ी पीड़ाजनक स्मृतियाँ। जिस तेजी से उसने अटारी पर चढ़कर स्नूपी से जुड़ी स्मृतियाँ नूतन करने का निर्णय लिया था उसी तेजी से उसने स्नूपी की चीजों को घर से बाहर कचरे में फेंकने का निर्णय ले लिया।

वस्तुएँ अटारी से एक-एक करके ऐसे नीचे गिरने लगीं जैसे कोई बिल्ली उन्हें किनारे से नीचे धकेल रही हो। कुछ क्षण में अनीता ने लकड़ी के एक काले सन्दूक को छोड़कर सभी वस्तुएँ अटारी से नीचे गिरा दीं।

इस सन्दूक से उसकी कई मीठी स्मृतियाँ जुड़ी हुई थीं। इसे विवाह के कुछ दिन पश्चात ही घर लाया गया था। जब उसने पहली बार इसको देखा था, यह बैठक कक्ष में था। जब उसने इसके बारे में अपने पति से पूछा था तो उसे उत्तर मिला था, 'हमारे परिवार की एक परंपरा यह है कि नववधू अपने सभी आभूषण पहनकर इस सन्दूक के भीतर बैठती है और तत्पश्चात कई व्यक्ति सन्दूक को उठाकर दूल्हे के सिर पर रखते हैं।"

उसने इस बात पर विश्वास भी कर लिया था। जब उसके पति की हंसी छूटी तब उसको भान हुआ कि वह ठिठोली कर रहा था।

तत्पश्चात उसे बताया गया कि सन्दूक में कई कांस्य के बर्तन, कुछ पुराने वस्त्र और कुछ अन्य तुच्छ वस्तुएँ थीं। कभी उसके पति की परदादी की संपत्ति रहा ये संदूक उसके पति के चाचा के घर में पड़ा धूल जमा कर रहा था। यह उसके घर में तब स्थानांतरित किया गया जब उसके पति के चाचा अपने परिवार के साथ विदेश में बसने की प्रक्रिया में अपना मकान बेच रहे थे।

उसे स्मरण था कि कैसे उसका पति अपने चाचा को 'कस्तूरी मृग' कहकर बुलाता था क्योंकि उनको अत्यधिक मात्रा में इत्र लगाने की आदत थी। वे सुखी दिन थे; उसका पति बात-बात पर चुटकुले बनाकर सबको हंसाता था। जब इस सन्दूक को अटारी में रखा जा रहा था तब यह उलटकर धड़ाम से नीचे गिर गया था। उसके पति ने चुटकी लेते हुए कहा था, 'लगता है सन्दूक के भीतर कोई भूत है जो अपने निवास स्थान के बदले जाने से क्रोधित है।'

गिरने के कारण सन्दूक के पिछले भाग में एक गड्ढा बन गया था जिसको अनदेखा करके सन्दूक को अटारी पर चढ़ा दिया गया था। उस दिन कदाचित अंतिम बार इसे मानव हाथों ने छुआ था।

वर्ष बीते। समय का क्रूर पहिया चलता चला गया परंतु यह सन्दूक जहाँ था वहीं रहा, एक गहरी नींद में सोए हुए भूत की तरह।

अटारी में बैठी अनीता के मन में विचार आया - क्या पता सच में ही इस सन्दूक में कोई भूत रहता हो? जब से इस सन्दूक को गिरकर हानि पहुँची थी, तब से उसके परिवार के लिए बुरा समय चल रहा था। हो सकता है भूत सच में क्रोधित हो गया हो? क्या पता वह भूत एक भली आत्मा हो जिसे शांत किया जाना आवश्यक था या कोई बुरी आत्मा जिसको बाहर खदेड़ने से उसके परिवार में सुख व समृद्धि लौट सकती थी?

अटारी के मंद प्रकाश में बैठे-बैठे अनीता कुछ क्षण तक सन्दुक को एकटक देखती रही। न जाने उसके मन में कहाँ से विचार आया कि सन्दूक को घर से बाहर फेंक देना चाहिए। वह जानती थी कि वह अकेले यह काम नहीं कर सकती थी। परंतु वह सन्दूक को अटारी के छिद्रनुमा द्वार तक तो घसीट ही सकती थी। उसने सोचा था कि भार बहुत अधिक होगा। इसलिए उसने सन्दूक का हत्था पकड़कर उसे कुछ अधिक ही बल से खींच लिया। सन्दूक सीधे उसके अपने पैरों पर चढ़ गया। तेज फफूंदी की गंध उठी। उसने सन्दूक के उस भाग का निरीक्षण किया जो वर्षों पहले क्षतिग्रस्त हो गया था।

लघु खिड़की से आ रहे प्रकाश में उसने देखा कि क्षतिग्रस्त भाग को दीमक ने पूरी तरह खा लिया था। भीतर रखे पीतल के बर्तनों में से एक बाहर से ही दिखाई पड़ने लगा था।

उसने भीतर की चीजों को पहुँची हानि का आकलन करने के लिए सन्दूक खोला। आश्चर्य की बात थी कि दीमक ने लकड़ी की दीवार के आर-पार छेद नहीं किया था। तो फिर बाहर के क्षतिग्रस्त भाग से दिखाई दे रही पीतल की चीज क्या थी?

"सोना।" हनुमान जी बोले। दृश्य समाप्त हो गया था और सभी मातंगों ने अपनी आँखें खोल ली थीं।

हनुमान जी आगे बोले, "कुछ ही घंटों में उसे और उसके पति को पता चलेगा कि उन मोटी लकड़ी की दीवारों में गुहाएँ हैं जिनमें सोने की चादरें छिपाई गई हैं। वे इस खजाने के लिए अपने पूर्वजों को धन्यवाद देंगे। दरिद्रता की राक्षसी अपना बोरिया बिस्तर समेटकर उनके घर से नौ दो ग्यारह हो जाएगी।"

"क्या यह दृश्य वास्तविक था, देव?" उर्मी ने सभी युवा मातंगों के मन का प्रश्न पूछा, "क्या अनीता की आत्मा को दुःख भरे दृश्यों से सुख भरे दृश्यों में सफलतापूर्वक स्थानांतरित कर दिया गया है?"

हनुमान जी ने निर्देश दिया, "एक बार फिर अपनी आँखें बंद करो। मैं आपको वह दृश्य दिखाता हूँ जिसको उसकी आत्मा इस समय जी रही है।"

उन्होंने पहला दृश्य उस अटारी के एक कोने में छिपी छिपकली की आंखों के माध्यम से देखा। वहाँ कोई सन्दूक नहीं था। कुत्ते से सम्बन्धित वस्तुएँ चारों ओर बिखरी पड़ी थीं। पिछले दृश्यों में जहाँ लकड़ी का काला सन्दूक दिखाई दे रहा था उस जगह पर पुताई का पुराना सामान रखा था। अटारी ऐसे लग रही थी जैसे महीनों से वहाँ पर किसी

मनुष्य का हस्तक्षेप नहीं हुआ था। इस बात का कोई चिन्ह दिखाई नहीं दे रहा था कि अनीता वहाँ पर कुछ देर पहले चढ़ी हुई थी।

दूसरा दृश्य उन्होंने देखा कि अनीता अभी भी अपने बैठक कक्ष में बैठी थी और अपने अँगूठे का प्रयोग करके पिंगल यंत्र को दुह रही थी। पुराने कपड़ों से बड़ी चटाई बनाने का विचार उसके मन में नहीं आया था। उस विचार के बिना वह भंडार कक्ष में क्यों जाती और अपनी अटारी क्यों चढ़ती?

"वास्तविक दृश्य कौन सा है, देव? जिसमें उसे सन्दूक की तहों में छिपा सोना मिला है, या जिसमें ऐसा कोई सन्दूक उपस्थित ही नहीं है?" उर्मी ने पूछा।

हनुमान जी ने रहस्यमय स्वर में कहा, "दोनों वास्तविक हैं। जब आप काल-आकाश से बाहर निकलते हैं तो आप क्या देखते हैं? दृश्य! अनगिनत दृश्य! अनंत संख्या में दृश्य ही दृश्य! और वे दृश्य अतीत, वर्तमान और भविष्य के तीन क्षेत्रों में बंटे हुए नहीं लगते। वे तीन क्षेत्र समय के दायरे के भीतर बहुत महत्त्व रखते हैं किंतु समय के बाहर उनका कोई अर्थ नहीं रह जाता। समय के बाहर से देखने पर सब कुछ घटित हो चुका लगता है। ब्रह्मांड एक पुस्तक की तरह है जिसमें अतीत, वर्तमान और भविष्य के सभी दृश्य विधिवत बद्ध हैं। प्रत्येक दृश्य में कुछ किरदार हैं, कुछ वस्तुएँ हैं। प्रत्यक्ष-परोक्ष, स्पृश्य-अस्पृश्य सब है दृश्यों के भीतर।

“दृश्य अनंत संख्या में हैं। मान लो कि उनमें से एक लाख दृश्य अनीता नामक किरदार के बारे में हैं।

“जीवन दृश्यों की एक श्रृंखला है। इस श्रृंखला में दृश्य ऐसे जुड़े हुए है कि एक दृश्य दूसरे का कारण बनता है। मान लो कि सहस्त्र ऐसी श्रृंखलाएँ अर्थात जीवन हैं जो अनीता नामक किरदार के बारे में हैं। वे जीवन एक दूसरे के समानान्तर में उपस्थित हैं। मैंने आपको उनमें से दो जीवनों से दृश्य दिखाए। एक में अनीता नामक किरदार ऋणग्रस्त है परंतु फिर उसे एक सन्दूक की तहों में छिपा सोना मिल जाता है। दूसरे में वह ऋणग्रस्त है परंतु ऐसा कोई सन्दूक अथवा सोना उपस्थित नहीं है; वह ऋण में डूबी है और अंत में तंग आकर वह और उसका पति अपने बच्चे को चिरनिद्रा में सुलाने के पश्चात आत्महत्या कर लेते हैं।

“इस तरह अनीता के सहस्त्र जीवन हैं जो एक-दूसरे से थोड़े-थोड़े भिन्न हैं। भिन्नता का उदाहरण - उसके एक जीवन में उसके पति के एक चाचा हैं जो अत्यधिक मात्र में इत्र लगाते हैं; एक अन्य जीवन में उसके पति के एक चाचा हैं जो घर के भीतर भी धूप का चश्मा पहनते हैं।

“अनीता की आत्मा के पास विकल्प है कि वह इन सहस्त्र जीवनों के बीच भ्रमण कर सकती है। समस्या यह है कि उसकी आत्मा उस जीवन में फँसी हुई है जिसमें उसका किरदार गहरे वित्तीय संकट के पश्चात आत्महत्या करने वाला है। मैं चाहता हूँ कि आप इस समस्या पर विचार-विमर्श करें। मैं अपने प्रश्न को पुनः वाक्यांशित करता हूँ - 'यदि आप मेरी जगह होते तो आप अनीता की आत्मा को उसके वर्तमान जीवन से बाहर खींचकर एक बेहतर जीवन में स्थानांतरित करने के लिए क्या करते?’

“मुझे आशा है कि कोई भी इस बार बिना सोचे समझे उत्तर नहीं देगा। उसको सोना उपलब्ध करा देना उत्तर नहीं है। जैसा कि मैंने आपको दिखाया, आप जिस भी दृश्य की कल्पना करें वह दृश्य काल-आकाश में कहीं न कहीं घटित हो रहा है। प्रश्न दृश्यों को घटित कराने का नहीं है, प्रश्न है अनीता की आत्मा को एक दृश्य-श्रंखला से दूसरी में स्थानांतरित करने का। अनीता एक ही दृश्य-श्रंखला अर्थात जीवन के साथ आसक्त है। प्रश्न यह है कि उसकी आसक्ति को कैसे तोड़ा जाए?"

मातंगों ने अपनी आँखें बंद कर लीं। इस बार वे कोई उत्तर ढूँढने की शीघ्रता में नहीं थे। हनुमान जी का प्रश्न तो एक दीपक मात्र था जिसका उपयोग करके वे मस्तिष्क की अंधेरी गलियों में टहलने वाले थे और संभव हो सके तो वे मस्तिष्क की सीमाओं को पार करने वाले थे।

चिरंजीवी गुरु ने भी अपनी आँखें बंद कर लीं और श्वास चक्र में प्रवेश कर गए।

अध्याय 8

लिंग कुंजी

कुछ क्षण के चिंतन के पश्चात लगभग सभी मातंग अपने निष्कर्ष पर पहुँच गए थे। वे इस विषय पर अटकलें लगाने के लिए तैयार थे कि अनीता की आत्मा दुखों के जीवन में क्यों फँसी हुई थी और देवताओं को उसे एक बेहतर जीवन में स्थानांतरित करने के लिए क्या करना चाहिए।

अपना श्वास चक्र पूरा करने के उपरांत हनुमान जी एक बार फिर प्रकट हो गए थे। उन्होने एक दृष्टि उर्वा पर डाली जो अपने आंतरिक संघर्षों से जूझ रहा था। तत्पश्चात उन्होंने अनीता के विषय पर उर्मी के विचार जानने चाहे।

उर्मी ने क्षमाप्रार्थी होकर कहा, "देव, मैंने विचारों का जंगल छान मारा परंतु कोई निष्कर्ष हाथ नहीं लगा। कई बार मेरे मन ने विचारों की ऊन से स्पष्टता का वस्त्र बुना परंतु भ्रम ने हर बार उसको उधेड़ दिया। मुझे ऐसा लगता है कि आत्मा से जुड़े विषयों पर मन कोई निष्कर्ष निकालने में सक्षम नहीं है। इसलिए मेरे पास आपको बताने के लिए कोई निष्कर्ष नहीं है। आत्मा और मन के बारे में जो कुछ भी मैं पहले से जानती थी, वह भी अब भूल गई हूँ।"

"यह तो अच्छी बात है।" हनुमान जी बोले, "यदि आपके हाथ कुछ लग गया है तो आप उससे अभी बहुत दूर हो जो हाथ नहीं लग सकता, जिसे केवल अनुभव किया जा सकता है। आप शून्य हो और यह बोध आपको तभी हो सकता है जब आप निष्कर्षों को त्यागकर उसकी खोज करो जो सभी निष्कर्षों से परे है। यद्यपि विचारों का मंथन व्यर्थ नहीं जाएगा। उससे आपको उड़ान भरने के लिए आवश्यक गति प्राप्त होगी। ... ठीक है, चलो पहले जो साधक निष्कर्ष पर पहुँचे हैं उनको सुन लिया जाए।"

कालंदक नाम का एक मातंग, जिसकी बाईं भृकुटि पर एक गहरा चिन्ह था, आत्मविश्वास से खड़ा हुआ और अपना निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए बोला, "देव, आपने हमें अनीता नामक किरदार के दो समानांतर जीवनों के दृश्य दिखाए। ‘जीवन-1’ में उसके घर में कोई छिपा हुआ सोना नहीं है। ‘जीवन-2’ में उसके भंडार कक्ष की अटारी में एक सन्दूक रखा है जिसमें सोना छिपा है। उसकी आत्मा जीवन-1 से जीवन-2 में स्थानांतरित नहीं हो सकती क्योंकि यह संसार के नियमों के विरुद्ध होगा। दोनों जीवन ऐसे संसारों में घटित हो रहे हैं जो कार्य-कारण के सिद्धांत पर आधारित हैं। एक जीवन से दूसरे में स्थानांतरित होते ही उसे सन्दूक उपलब्ध हो जाएगा। ऐसा होना संसार के सिद्धांत के विरुद्ध होगा। वह स्वयं

घबरा जाएगी कि सन्दूक कहाँ से आया। मुझे लगता है कि देवगण इसी कारण उसकी आत्मा को स्थानांतरित नहीं कर पा..."

कालंदक का स्वर अंतिम वाक्य तक आते-आते क्षीण हो गया और साथ ही क्षीण हुआ उसका आत्मविश्वास। जो निष्कर्ष उसके मन में ठोस एवं तार्किक लग रहा था वह बाहर प्रकट करते ही पिघल गया। उसे स्वयं ही अपने तर्क में एक अंतर्निहित त्रुटि होने का भान हुआ।

"परंतु ... परंतु जीवन-2 में सन्दूक के साथ-साथ सन्दूक की स्मृतियाँ भी तो उपस्थित हैं।" कालंदक हनुमान जी की कृपा से स्वयं ही अपने तर्क की त्रुटि ठीक करते हुए बोला, "स्मृतियाँ भी हल्की नहीं, गाढ़ी। जीवन-2 के अनीता नामक किरदार के मस्तिष्क में यह स्मृति उपस्थित है कि सन्दूक को उसके पति के चाचा के घर से उठाकर उसके घर में लाया गया था। उसे उसके पति द्वारा सन्दूक के विषय में की गई ठिठोलियाँ भी स्मरण हैं। उसे सन्दूक का गिरना और क्षतिग्रस्त होना भी स्मरण है ... कैसे, देव? यह सब बहुत ही जटिल है ... मेरा अर्थ है, जब उसकी आत्मा जीवन-1 से जीवन-2 में कूदेगी तो क्या वह जीवन 1 की स्मृतियाँ जीवन-2 में अपने साथ लाएगी? क्या अनीता को यह स्मरण रहेगा कि कूदने से पहले उसके जीवन में कोई सन्दूक नहीं था और अब न केवल सन्दूक कहीं से प्रकट हो गया है अपितु उससे जुड़ी स्मृतियाँ भी प्रकट हो गई हैं?"

"आपने सही कहा। स्मृति किरदार के मन के भीतर संग्रहीत होती है, आत्मा के भीतर नहीं।" हनुमान जी बोले, “जीवन-2 में अनीता नामक किरदार की जो स्मृतियाँ हैं वे जीवन-1 वाली अनीता की स्मृतियों से बिलकुल स्वतंत्र हैं। इसलिए जब अनीता की आत्मा जीवन-1 को छोड़ देती है तो जीवन-1 की स्मृतियाँ भी वहीं छोड़ देती है। फिर जब उसकी आत्मा जीवन-2 में प्रवेश करती है तो जीवन-2 की स्मृतियों को धारण कर लेती है। 'सन्दूक कभी अटारी में था ही नहीं', यह जीवन-1 की स्मृति है जो जीवन-1 में ही रहेगी। 'सन्दूक अटारी में वर्षों से पड़ा हुआ है', यह जीवन-2 की स्मृति है जो उसकी आत्मा जीवन-2 में प्रवेश करते ही धारण कर लेगी।"

उर्मी के मन में एक विचार आया जो उसने तुरंत व्यक्त किया, “देवताओं द्वारा की गई सहायता से भक्तजन प्रायः अनजान रहते हैं। है ना, देव? जब आप अनीता की आत्मा को सफलतापूर्वक जीवन-2 में भेज दोगे तब वह इसे चमत्कार नहीं मानेगी। जीवन-2 की स्मृतियों के कारण वह सोचेगी कि सन्दूक तो वर्षों से उसकी अटारी में था, इसमें कौन-सी बड़ी बात हो गई। वह छिपे हुए सोने को पाने के पश्चात अपने पति के पूर्वजों का धन्यवाद करेगी, आपका नहीं! "

हनुमान जी बोले, "अनीता-2 मात्र एक किरदार है जो पहले ही लिखा जा चुका है। इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि अनीता-2 या कोई भी नश्वर किरदार क्या सोचता है और क्या स्मरण रखता है। देवताओं का कार्य आत्माओं का कल्याण करना है।"

उर्वा का सबसे अच्छा मित्र धनुष्क अपना निष्कर्ष प्रस्तुत करने के लिए खड़ा हुआ और बोला, "देव, अनीता जिस चमकते खिलौने के साथ खेल रही थी, मुझे उसमें समाधान दिखाई दे रहा है। मुझे लगता है कि वह खिलौना उसे उसकी कठोर वास्तविकता को भूलने में सहायता करता है। कदाचित वह खिलौना एक सपने की तरह काम करता है। मैंने देवताओं के वे किस्से सुने हैं जिनमें वे आत्मा की स्वप्नयात्रा में कुछ परिवर्तन करके आत्मा की मानवलोक की समस्याओं का समाधान करते हैं। मुझे लगता है -"

"वह कोई खिलौना नहीं है।" उर्वा दाँत पीसते हुए गरजा। धनुष्क चौंका। उसे ऐसा लगा जैसे कोई बिल्ली अचानक एक राक्षसी शेर में बदल गई हो; उसने उर्वा को इस तरह से चिल्लाते हुए कभी नहीं देखा था।

बाबा को उर्वा के शब्द संकट की घंटी की तरह सुनाई दिए। वे खड़े हुए और हनुमान जी से निवेदन किया, "देव, क्या आप उर्वा की कोई परीक्षा ले रहे हैं? यदि हाँ, तो वह बुरी तरह विफल हो रहा है। असुर जल्द ही उसके तन-मन पर नियंत्रण करके इस पवित्र पूजा को अपवित्र कर सकते हैं। उसे सहायता की आवश्यकता है ... कृपया ..."

उर्वा की सिसकियाँ छूट गईं। उसके मन को यह स्वीकार करते हुए अच्छा लग रहा था कि उसे सहायता की आवश्यकता थी; वह अब उन राक्षसों से स्वयं नहीं लड़ सकता था जो बचपन से उसे सता रहे थे। उसने बाबा को अपने सभी बुरे सपने बताए थे सिवाय इसके जो उसे इस समय सता रहा था - चमकदार खिलौनों का बुरा सपना।

हनुमान जी ने बाबा के साथ आपसी समझ से भरी दृष्टि का आदान-प्रदान करते हुए कहा, "बचपन से ही उर्वा मुख्यधारा के समाज के कुछ दृश्यों में प्रवेश करता रहा है।"

"अच्छा, वे बुरे सपने जिनके बारे में किसी को बताना भी निषिद्ध है? मैं उनके बारे में पूरी तरह से भूल गया था!" बाबा बुदबुदाए।

सभा में जिज्ञासा अचानक तीव्र हो गई और उर्मी के माध्यम से उसकी अभिव्यक्ति हुई, "मुख्यधारा के समाज के दृश्य उर्वा के लिए बुरा सपना क्यों हैं, देव? और हमें उन दृश्यों के बारे में एक-दूसरे के साथ चर्चा करने की अनुमति क्यों नहीं है?"

"यदि आपकी आत्मा अभी मुख्यधारा के समाज के दृश्यों में प्रवेश कर जाए तो क्या मेरी सहायता के बिना वहाँ से बाहर आ पाएगी?" हनुमान जी ने प्रतिप्रश्न किया और

तत्पश्चात स्वयं ही उसका उत्तर दिया, "वहाँ पर भ्रम का जाल इतना जटिल है कि जागी हुई आत्माएँ भी कई बार उसमें फँस जाती हैं। यदि कोई आत्मा तनिक भी जागृत है तो उसके लिए वहाँ के दृश्य जीना दु:स्वप्न से कम नहीं है। वे दृश्य नहीं, भ्रम का वह दलदल है जो आपको उतना ही अधिक फँसाता चला जाता है जितनी अधिक उसके बारे में चर्चा की जाती है।"

"तो क्या हमें उन दृश्यों में कभी भूलकर भी नहीं जाना चाहिए?" उर्मी ने पूछा।

हनुमान जी ने कहा, "जाना चाहिए और आप जाओगे भी। पहले मेरी सहायता से और उसके उपरांत बिना सहायता के। परंतु उनके बारे में आप एक-दूसरे के साथ तब तक चर्चा नहीं करोगे जब तक कि आपको मैं पूरी तरह से प्रशिक्षित नहीं कर देता। उर्वा बचपन से ही उन दृश्यों को देखता आ रहा है क्योंकि बाबा के उत्तराधिकारी के रूप में उसे एक विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता है। वह नियमित रूप से बाहरी समाज की आकर्षक वस्तुओं और चुनौतीपूर्ण स्थितियों से भरे दृश्यों को देख रहा है। वह विशेष रूप से उस चमकदार यंत्र के प्रति आशंकित है जो अनीता के हाथ में था। वह यंत्र आत्मा पर भ्रम की एक अतिरिक्त चादर डालता है। मानवता भ्रम की नई-नई परतों का निर्माण करती जा रही है।"

बाबा की आँखें चमक उठीं। उनके मस्तिष्क में वे वस्तुएँ तैर रही थी जो उनके समय में मुख्यधारा के समाज में लोकप्रिय थीं। अनीता के हाथ में जो चमकदार खिलौना था वह इस समय का आकर्षण था और बाबा की स्मृतियों में तैर रही वस्तुएँ उस समय का आकर्षण। बाबा को भी कड़ाई से प्रशिक्षित किया गया था। उसी प्रशिक्षण की सहायता से वे स्वयं को ही नहीं अपितु सभी मातंग आत्माओं को शक्तिशाली भ्रमजालों से बचाते आ रहे थे। अब उर्वा की बारी थी वह प्रशिक्षण पूरा करके मातंग मुखिया के रूप में उत्तरदायित्व संभालने की।

इस पीढ़ी की सबसे श्रेष्ठ मातंग शिष्यों में से एक उर्मी भी थी। वह अनीता के जीवन के उन दृश्यों को पुनः स्मरण करने की चेष्टा कर रही थी जो उसने अन्य मातंगों के साथ कुछ क्षण पहले देखे थे। उसे पछतावा था कि उन दृश्यों को देखते समय उसने चमकदार खिलौने पर अधिक ध्यान नहीं दिया था।

उसने पूछा, "देव, क्या हम सभी को उस खिलौने के बारे में आशंकित होना चाहिए?"

हनुमान जी ने चेताया, "आपको वस्तुओं से नहीं अपितु उनके बारे में तुच्छ और सीमित जिज्ञासा से दूर रहना चाहिए। सीमित जिज्ञासा आपको भ्रमजाल में डालती है और

वहीं फँसाए रखती है। यदि किसी वस्तु के बारे में आपकी जिज्ञासा असीम है तो कोई अंतर नहीं पड़ता कि वस्तु क्या है, वह आपको परमसत्य की ओर ले जाती है। एक गुरु अपने शिष्यों को परम सत्य के दर्शन कराने के लिए किसी भी वस्तु का उपयोग कर सकता है और एक योगी किसी भी वस्तु को परम स्वतंत्रता के द्वार के रूप में उपयोग कर सकता है। अभी मैं उस चमकदार वस्तु का उपयोग आपको ब्रह्मांड के रहस्यों को समझाने के लिए करने जा रहा हूँ। चलो मैं पहले आपको मुख्यधारा के समाज के कुछ दृश्य दिखाता हूँ।"

सभी ने तुरंत अपनी आँखें बंद कर लीं।

हनुमान जी की एक लंबी प्रतिमा जो 10 तल्ले के भवन से भी लंबी थी, धुंधले आकाश के नीचे महाप्रतापी रूप में शोभित थी। सैकड़ों जन विस्मय में खड़े उसे देख रहे थे, अपनी ईश्वर प्रदत्त आंखों के माध्यम से नहीं अपितु अपने-अपने हाथों में रखे पिंगल यंत्रों में लगी आंखों के माध्यम से।

हनुमान जी की वाणी ने मातंगों को बताया कि वहाँ क्या हो रहा था। वे सैकड़ों जन दृश्य को अपने पिंगल यंत्र में बद्ध कर रहे थे ताकि वे भविष्य में उसे कभी भी देख सकें और दूसरों को भी दिखा सकें।

वह पिंगल यंत्र दृश्यों को बद्ध करने में सक्षम था। परंतु कैसे? क्या इसके पीछे की प्रक्रिया वैसी ही थी जैसी एक चित्रकार द्वारा रंगों का उपयोग करके किसी दृश्य का चित्र बनाने की प्रक्रिया होती है। या वैसी जैसी एक लेखक द्वारा शब्दों का उपयोग करके किसी दृश्य का वर्णन करने की प्रक्रिया होती है? किंतु बद्ध करने की यह प्रक्रिया इतनी तेजी से कैसे पूरी हो रही थी? मस्तिष्क द्वारा किसी दृश्य को स्मृतिबद्ध करने की प्रक्रिया भी संभवतः इतनी तेज नहीं होती।

क्या वह यंत्र बद्ध किए गए दृश्य को उतनी ही तेजी से दिखा सकता है जिस तेजी से मस्तिष्क स्मृतियाँ ताजा करता है? या बद्ध दृश्य को देखना पुस्तक पढ़ने की तरह एक लंबी प्रक्रिया है?

यह दृश्य अंधेरे में घुल गया और उस अंधेरे से एक अन्य दृश्य उभरा - अपनी आयु के तीन दशक पार कर चुका एक व्यक्ति अपने घर में विश्राम कर रहा था। उसकी उँगलियाँ पिंगल यंत्र पर ऐसे चल रही थीं जैसे वह कुछ ढूँढने के लिए किसी पुस्तक के पन्ने पलट रहा हो। अंततः उसे वह सामग्री मिल गई जिसकी उसे खोज थी। एक अंतिम बार जब उसने अपनी उंगली से पिंगल यंत्र को छूआ तो वह दृश्य दिखाई देना शुरू हो गया जिसको उसने कुछ दिन पहले बद्ध किया था - हनुमान जी की विशाल प्रतिमा का दृश्य।

यह एक चमत्कार था! इस घटना से यह व्यक्ति चकित क्यों नहीं था? उसका पिंगल यंत्र एक ऐसी खिड़की की तरह था जिसके पार दर्जनों मील दूर अतीत में घटित हुआ एक दृश्य दिखाई दे रहा था।

मातंग यह देखकर अवाक रह गए। उर्मी ने अपने आश्चर्य को शब्दों की अभिव्यक्ति दी, "यह अद्भुत है, देव। यह चमकदार खिलौना दृश्यों को बद्ध कर सकता है।"

"और बद्ध किए गए दृश्य कभी भी पुनः चलाए जा सकते हैं।" जानकीरूपा बोली। वह अधेड़ आयु की एक मातंग महिला थी जो आयु में उर्मी से बहुत बड़ी होते हुए भी उसकी सबसे अच्छी सहेली थी।

"मुझे लगा था कि यह खिलौना स्वप्नलोक के द्वार की तरह काम करता है।" धनुष्क ने पराजित स्वर में कहा।

कुछ देर की चुप्पी के पश्चात कालंदक ने ही आगे टिप्पणी की, "परंतु मुझे अब भी यह समझ नहीं आ रहा कि यह नया मानव आविष्कार कैसे है? इस खिलौने में कुछ भी तो नया नहीं है। भाषा की उत्पत्ति के पश्चात से ही मानव दृश्यों को बद्ध करता आ रहा है। अभी मेरे सामने जो दृश्य है उसका वर्णन मैं अपनी भाषा में करके उसे लिपिबद्ध कर सकता हूँ। जो कोई भी मेरी भाषा को जानता है वह केवल मेरे शब्दों को पढ़कर इस दृश्य को अपनी कल्पना की आँखों से देख सकता है। यह इतना सरल है!"

"परंतु यह चमकदार खिलौना स्वयं ही दृश्यों को बद्ध करता है और स्वयं ही उनको दिखाता है। इसके द्वारा बद्ध किए गए दृश्यों को पुनः देखने के लिए किसी भी भाषा को जानने की आवश्यकता नहीं है।" उर्मी ने कहा।

"क्या इसका अर्थ यह है कि यह खिलौना वास्तव में एक ऐसा जीव है जो सोच सकता है?" कालंदक के मन में अब जाकर आश्चर्य की लहर उठी। वह बोला, "क्या यह कोई नया पालतू जीव है? हनुमान जी की उस विशाल मूर्ति को देख रहे लगभग सभी मनुष्य इस जुगनू जैसे जीव को अपने हाथों में पकड़े हुए थे। क्या इस पालतू जीव की अपनी एक गुप्त भाषा है जिसमें यह एक दृश्य को बद्ध करता है? मैंने देखा कि यह एक आँख वाला जीव है। वे मनुष्य इसी की आँख का प्रयोग करके दृश्य को देख रहे थे और बद्ध कर रहे थे।"

"एक नहीं, दो आँखों वाला जीव। एक आँख सामने और एक पीछे।" उर्मी ने कालंदक के कथन को ठीक किया।

कालंदक ने उत्साहपूर्वक कहा, "अब सब मेरी समझ में आ गया है। यह एक पालतू जीव है, खिलौना नहीं। यह जो भी देखता है उसको एक गुप्त भाषा में लिख लेता है। मान लीजिए कि इसने एक दृश्य का वर्णन करते हुए अपनी गुप्त भाषा में तीन अनुच्छेद लिखे। जब इसका स्वामी मनुष्य इसको वह दृश्य पुनः दिखाने का आदेश देता है तो यह जीव स्वयं ही उन अनुच्छेदों को पढ़कर बद्ध दृश्य पुनः उत्पन्न कर देता है। ठीक वैसे ही जैसे कोई कवि अपने श्रोताओं के लिए अपनी कविताएँ पढ़कर उनके मन में दृश्य उत्पन्न करता है। यह एक अद्भुत पालतू जीव है। एक कुत्ते से बेहतर!"

"जिस गुणवत्ता से यह खिलौना दृश्य और ध्वनियाँ बद्ध करता है, वह अद्भुत है।" उर्मी ने इतनी जीवंतता से कहा जैसे पिंगल यंत्र उसके हाथ में हो, "इसके द्वारा बद्ध किए गए दृश्य लगभग वास्तविक दृश्यों जैसे ही हैं। इसका अर्थ है कि जिस भाषा में यह दृश्यों को बद्ध करता है वह बहुत उन्नत भाषा है। एक साधारण मानव भाषा में दृश्यों का इतनी स्पष्ट रूप से वर्णन नहीं किया जा सकता। अच्छे लेखक भी किसी दृश्य का बिल्कुल सटीक वर्णन करने में विफल रहते हैं क्योंकि साधारण मानव भाषाओं की अपनी सीमाएँ हैं। परंतु यह खिलौना - यह पालतू जानवर - अद्भुत कवि है।"

"बच्चों!" हनुमान जी ने मनोरंजक ढंग से कहा, "आप यह भूल रहे हो कि इस चमकदार यंत्र का आविष्कार मनुष्यों द्वारा ही किया गया है। तो जिस भाषा-"

कालंदक बुद्धू की तरह बीच में ही बोल पड़ा, "देव, क्या मुख्यधारा के मनुष्य अब मानव शिशुओं के साथ-साथ इन छोटे पालतू जीवों को भी जन्म दे रहे हैं?"

कालंदक के कथन की अनदेखी करते हुए हनुमान जी ने कहा, "तो जिस भाषा में यह यंत्र दृश्यों को लिखता है, वह भी मनुष्यों द्वारा बनाई गई है। इस भाषा की कल्पना कई सदियों पहले आचार्य पिंगल ने की थी। उनके सम्मान में हम इस यंत्र को 'पिंगल यंत्र' कहेंगे। साधारण मानव भाषाओं में आमतौर पर लगभग तीन दर्जन प्रतीक होते हैं जिनमें वर्णमाला और अंक शामिल हैं। किसी भी साधारण मानव भाषा में लिखी गई सभी पुस्तकें, सभी दृश्य, सभी कहानियाँ, सभी विचार केवल तीन दर्जन प्रतीकों का उपयोग करके ही लिखे गए हैं। आचार्य पिंगल ने भाषा को इससे भी अधिक संक्षिप्त करना चाहा। उन्होने केवल दो प्रतीकों का उपयोग करके एक भाषा की रचना की।"

हनुमान जी युग्मक प्रणाली की बात कर रहे थे जिसके आधार पर आधुनिक मनुष्यों ने गणक यंत्र, पिंगल यंत्र आदि का आविष्कार किया है।

"केवल दो प्रतीक, देव?" जानकीरूपा ने यह पुष्टि करनी चाहिए कि उसने हनुमान जी के शब्दों को सही से सुना था या नहीं।

हनुमान जी ने पुष्टि की, "हाँ, एक ऐसी भाषा जो केवल दो प्रतीकों पर संरचित है - पिंगल भाषा। पिंगल यंत्र पिंगल भाषा के प्रक्रम पर आधारित है।"

जानकीरूपा ने कहा, "मुझे लगता है कि पिंगल भाषा भी सर्वसम्पन्न नहीं है, देव। मैंने देखा कि वह चमकदार खिलौना अर्थात पिंगल यंत्र भी किसी दृश्य को वास्तविक रूप में बद्ध नहीं कर सकता। वह केवल दृश्य के चित्र और ध्वनि बद्ध कर सकता है, गंध, स्वाद, तथा स्पर्श इत्यादि नहीं।"

इससे पहले कि हनुमान जी उत्तर दे पाते, उर्मी पिंगल यंत्र के पक्ष में बोली, "तो भी उस खिलौने द्वारा बद्ध किए गए दृश्य साधारण भाषाओं में लिखी गई पुस्तकों में बद्ध दृश्यों से तो बेहतर ही हैं। कोई भी लेखक किसी दृश्य को इतनी स्पष्टता से बद्ध नहीं कर सकता जितनी स्पष्टता से वह चमकदार खिलौना करता है। क्या आपने हनुमान जी की विशाल प्रतिमा के दृश्यों को उस खिलौने के पेट पर भव्यता से उभरते हुए नहीं देखा? वे अद्भुत थे!"

"चमकदार खिलौने का पेट?" जानकीरूपा ने व्यंग्य किया, "उर्मी, यह हास्यास्पद है। एक लेखक किसी दृश्य को कहीं बेहतर रूप से बद्ध कर सकता है। एक दृश्य में चित्र, ध्वनियाँ, गंध इत्यादि ही नहीं होते, विचार और भावनाएँ आदि अमूर्त वस्तुएँ भी होती हैं जिन्हें केवल एक मानव लेखक ही बद्ध कर सकता है, कोई यंत्र नहीं।"

उर्मी को कोई उत्तर नहीं सूझा। कालंदक ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए अपने विचारों को स्वर दिया, "क्या कोई ऐसी भाषा विकसित करना संभव है जो दृश्यों को वास्तविक रूप में बद्ध कर सके? क्या कोई ऐसी पुस्तक लिखी जा सकती है जिसमें दृश्य वास्तविक रूप में बद्ध हों? ऐसी पुस्तक जिसको पढ़ने पर वास्तविक दृश्य हमारी आँखों के सामने जीवंत हो जाएँ?"

जानकीरूपा ने टिप्पणी करने के लिए अपना मुंह खोला परंतु उसके विचार हनुमान जी के गहरे स्वर में डूब गए। वे बोले, "हाँ, वह परम-भाषा उपस्थित है। ब्रह्मांड के सभी दृश्य उसी भाषा में बद्ध किए गए हैं। जहाँ साधारण भाषाएँ किसी दृश्य को अंकित करने के लिए प्रतीकों और शब्दों का उपयोग करती हैं, वहीं परम-भाषा सभी दृश्यों को बद्ध करने के लिए केवल दो चरों का उपयोग करती है-'

"कर्म और इच्छाएँ वे दो चर हैं। मैंने ठीक कहा ना, देव?" कालंदक तुरंत बोला।

“हाँ।"

"परम-भाषा की संरचना क्या है, देव? इसे कैसे सीखें? कितना अच्छा होगा यदि हम किसी दृश्य को उसके वास्तविक रूप में बद्ध कर पाएँ और तत्पश्चात उसे जब चाहे देख सकें। पुनः देखे गए दृश्य और मूल दृश्य में कोई अंतर नहीं होगा।" कालंदक बोला।

पिंगल यंत्र के प्रति उर्मी का मोह क्षीण पड़ गया क्योंकि अब उसके मन को परम-भाषा सीखने का विचार आकर्षित कर रहा था। उसने कहा, "वाह! हम दृश्यों को पिंगल यंत्र से भी बेहतर गुणवत्ता के साथ बद्ध करने में सक्षम होंगे। हम दृश्यों के चित्र, ध्वनियाँ, गंध, भावनाएँ, विचार आदि सब कुछ बद्ध कर सकेंगे और बद्ध किए गए दृश्य को अपनी इच्छा से कभी भी देख सकेंगे।"

हनुमान जी ने शांत स्वर में कहा, "आपके मन का आकाश उत्तेजना के बादलों से घिर गया है। तनिक स्पष्टता से सोचो। मान लीजिए कि कोई दृश्य परम-भाषा में लिखा गया है। उस लेख को पढ़ने से आपको दृश्य की प्रति नहीं, मूल दृश्य दिखाई पड़ता है। अर्थात वह लेख दृश्य की प्रति नहीं दिखाता है अपितु आपको मूल दृश्य के भीतर पहुँचा देता है।

"इसे पुनः सुन लीजिए। किसी साधारण पुस्तक में लिखे गए शब्द अथवा पिंगल यंत्र में बद्ध सामग्री आपको दृश्य की एक प्रतिकृति दिखाती है। जबकि परम-भाषा में बद्ध सामग्री आपको मूल दृश्य में पहुँचा देती हैं। यदि दृश्य कोई कक्ष है तो परम-भाषा में बद्ध उस दृश्य की सामग्री उस कक्ष की कुंजी हैं। उस कुंजी का नाम है 'लिंग कुंजी'। यदि आपके पास किसी दृश्य की लिंग कुंजी हैं तो आप उस दृश्य में प्रवेश कर सकते हैं।"

उर्मी ने कहा, "लिंग कुंजी? मैं लिंग देह के बारे में जानती हूँ। क्या लिंग कुंजी उसी का दूसरा नाम है, देव?"

हनुमान जी ने उत्तर दिया, "वे दोनों एक ही हैं। यहाँ तक कि आपका भौतिक तन भी एक कुंजी है। इस कुंजी से आप केवल अपने घर में प्रवेश कर सकते हो। किसी अनजान के घर में प्रवेश करोगे तो आप चोर कहलाओगे। इसी तरह 'लिंग कुंजी' एक ऐसी कुंजी है जो आपको दृश्यों में प्रवेश कराती है। आप इसे 'लिंग देह' कहो या 'लिंग कुंजी' , इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। बस आपको अर्थ स्पष्ट होना चाहिए। पिंगल यंत्र के संदर्भ में इसे 'लिंग कुंजी' कहना अधिक उचित होगा।"

उर्मी ने कहा, "मुझे समझ आ गया, देव। ब्रह्मांड के प्रत्येक दृश्य को पहले ही परम-भाषा में बद्ध किया जा चुका है। भविष्य में जिस दृश्य में मेरा विवाह हो रहा है, वह भी पहले से ही बद्ध है। अर्थात उस दृश्य की लिंग कुंजी पहले से ही कहीं है। परंतु कहाँ? क्या उस लिंग कुंजी का उपयोग करके मैं अपने विवाह के दृश्य की एक झलक पा सकती हूँ?"

"अवश्य।" हनुमान जी ने कहा, "यदि आपके पास किसी दृश्य की लिंग कुंजी है तो आप उसमें प्रवेश कर सकते हैं फिर चाहे वह अतीत में घटित हो रहा हो या भविष्य में, पृथ्वी लोक पर घटित हो रहा हो या किसी अन्य लोक पर। 'आप' अर्थात आपकी आत्मा, आपकी जागृत आत्मा! पहले आपको वर्तमान दृश्य से मुक्त होना होगा। उसके पश्चात आप ब्रह्मांड के किसी भी दृश्य की लिंग कुंजी को धारण करके उस दृश्य में प्रवेश कर सकते हैं।"

"परंतु मेरे विवाह के दृश्य की लिंग कुंजी कहाँ है, देव? मैं दृश्य की एक झलक पाने के लिए प्रतीक्षा नहीं कर सकती।" उर्मी अपनी भावना प्रकट करने से स्वयं को रोक नहीं सकी।

सभा में उपस्थित कई कन्याएँ हँसने लगीं। परंतु हनुमान जी का उत्तर गंभीर और शांत स्वर में आया। वे बोले, "राजवंशी महलों में नाटक मंचन हुआ करता था। भीतर प्रवेश करने के लिए प्रवेश पत्र नाट्यशाला के बाहर उपलब्ध हुआ करते थे। ठीक उसी तरह काल-आकाश के रंगमंच पर घटित हो रहे प्रत्येक दृश्य की लिंग कुंजी शून्य के उस गलियारे में उपलब्ध है जहाँ से वह दृश्य आत्मा के लिए उपलब्ध होता है। उस गलियारे में पहुँचकर आत्मा लिंग कुंजी को धारण करती है और उस दृश्य को न केवल देखती है अपितु जीती है।"

"शून्य का गलियारा?" उर्मी के मन में प्रश्न उठा और तत्पश्चात तुरंत उसकी भौंहें उठीं क्योंकि उसे स्वयं ही उत्तर मिल गया था, "शून्य की सुरंगे।"

हनुमान जी ने कहा, "हाँ। किसी दृश्य को जीने के लिए एक आत्मा काल-आकाश के ‘भीतर’ प्रवेश नहीं करती। आत्मा सदा शून्य की सुरंगों में रहकर देह और मन से जुड़ जाती है। ठीक वैसे ही जैसे एक दर्शक मैदान में उतरे बिना ही अपने प्रिय खिलाड़ी से जुड़ जाता है, उसे स्वयं मैदान में उतरने की आवश्यकता नहीं होती। यदि काल-आकाश एक गोला है तो शून्य के गलियारे उस गोले में वैसे ही फैले हुए हैं जैसे मानव तन में नसों का जाल फैला है।

"देव, क्या मेरे मस्तिष्क को लिंग कुंजी नहीं मिल सकती? बस मैं अपने विवाह के दृश्य की एक झलक प्राप्त करना चाहती हूँ ... दृश्य को वास्तव में जीना नहीं है ... बस एक झलक।" उर्मी ने उसके पीछे से उठ रही फूहड़ हंसी की आवाजों की परवाह न करते हुए कहा।

जानकीरूपा ने अपनी सहेली को हास्य का पात्र बनते देख उसके प्रश्न को दूसरे ढंग से प्रस्तुत किया। बोली, "देव, मैं भी उत्सुक हूँ। क्या परम-भाषा को हमारा मन नहीं सीख

सकता? आंशिक रूप से भी नहीं? यदि मन को लिंग कुंजी समझने के लिए प्रशिक्षित किया जा सके तो कितना अच्छा होगा! हम भविष्य के दृश्यों को आसानी से देख पाएंगे।"

जानकीरूपा ने उर्मी के मूर्खतापूर्ण वक्तव्य को एक ठोस प्रश्न का रूप देने का प्रयास किया था। हनुमान जी उसके प्रयास से प्रभावित दिखे। जैसे धीमी हवा एक शांत झील की सतह को छूकर हल्की-सी लहर उत्पन्न करती है, हनुमान जी के शांत मुख पर मुस्कान उत्पन्न हुई। वे बोले, "सबसे पहले तो मैं यह स्पष्ट कर दूँ कि मन काल-आकाश के भीतर है जबकि परम-भाषा में बद्ध लिंग कुंजियाँ बाहर। दूसरा, केवल आत्मा परम-भाषा जानती है। केवल एक आत्मा परम-भाषा की लिंग कुंजियों का प्रयोग कर सकती है। मन काल-आकाश से बने बंद कक्ष के भीतर है तो कुंजियों का उपयोग कैसे करेगा?"

"मन ऐसा क्यों नहीं कर सकता, देव?" जानकीरूपा से पूछा, "परम-भाषा भी तो अंततः एक भाषा ही है। अंतर इतना है कि यह भाषा केवल दो प्रतीकों पर आधारित है जबकि अन्य भाषाओं में अनेक प्रतीक हैं। क्या यह भाषा इतनी जटिल है कि मानव मन इसे समझ नहीं पाता? यदि मन नहीं समझ पाता तो क्या हम पिंगल यंत्र जैसा कोई उपकरण विकसित नहीं कर सकते जो परम-भाषा को समझ सके और हमें हमारे भविष्य के दृश्यों की झलक दिखा सके?"

हनुमान जी की आँखें शून्य में ऐसे झांक रही थीं जैसे वे कोई परम-ग्रंथ पढ़ रहे हों। ऐसा ग्रंथ जिसमें एक भी शब्द नहीं है। ऐसी पुस्तक जिसके सभी पन्ने रिक्त हैं। एक क्षण के पश्चात उन्होने उत्तर दिया, "नहीं। परम-भाषा जटिल नहीं है अपितु वह इतनी सरल और परिष्कृत है कि मानव मन उसको नहीं समझ सकता। परम-भाषा इतनी महीन है कि इधर से मन में प्रवेश करेगी तो उधर से निकल जाएगी। कोई छाप नहीं छोड़ पाएगी! आप आटे को पुनः आटा चक्की में डालोगे तो क्या होगा? वैसे का वैसा वापिस निकल आएगा। मानव मन कोई ऐसा उपकरण भी नहीं बना सकता जो परम-भाषा पर आधारित हो। आप परम-भाषा को समझ ही नहीं सकते तो उसके आधार पर एक उपकरण विकसित कैसे करोगे?"

जानकीरूपा ने पूछा, "देव, परम-भाषा इतनी सरल कैसे हो सकती है जबकि ब्रह्मांड इतना जटिल है?"

"क्या ब्रह्मांड वास्तव में जटिल है?" हनुमान जी ने शांत स्वर में प्रतिप्रश्न किया।

जानकीरूपा ने कहा, "और नहीं तो क्या, देव? इतने सारे रंग, स्वाद, गंध, भावनाएँ, विचार। एक दृश्य में कितनी सारी परतें छिपी होती हैं। उन्हे सरल भाषा में कैसे बद्ध किया जा सकता है?"

हनुमान जी ने कहा, "ब्रह्मांड बहुत सरल है। मन जटिल है। यह मन की सीमा है कि वह विभिन्न जटिलताओं के मूल में छिपी सरलता को नहीं देख सकता। जब साधक सिद्धि को प्राप्त होता है तब उसे सरलता का अनुभव होता है। तब वह पूर्णतः मौन रह जाता है। उसे ब्रह्मांड की सरलता को व्यक्त करने के लिए कोई शब्द नहीं मिलते। वह केवल मुस्कुराता है। एक बुद्ध पुरुष जब अंधों को हाथी के रूप के बारे में झगड़ा करते देखता है तो केवल मुस्कुरा ही सकता है - आपने वह दंतकथा तो सुनी ही होगी?"

धनुष्क को कहानियाँ सुनना बहुत रुचिकर था। वह तुरंत बोला, "हाँ, देव। मैंने सुनी है। कुछ नेत्रहीन व्यक्ति हाथी के विभिन्न अंगों को छूकर अलग-अलग निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। जो हाथी के सूंड को छूता है वह उसको मोटा सांप कहता है। जो पूंछ को छूता है वह उसको रस्सी कहता है। जो पैर को छूता है उसे लगता है कि उसने पेड़ के तने को छू रखा है। सब अलग-अलग निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।"

हनुमान जी ने कहा, "ठीक उसी तरह पूर्ण ब्रह्मांड बहुत सरल है। परंतु मन उस पूर्ण का एक अंश है। अंश पूर्ण को नहीं देख सकता। अंश को अंश ही दिखाई देते है जो जटिल हैं। सौभाग्य से मन का विस्तार हो सकता है। आपने अदृश्य जंगल की कहानी तो सुनी होगी?"

"हाँ, देव।" धनुष्क ने अदृश्य जंगल के दृष्टांत का वर्णन करते हुए कहा, "एक बार दो मनुष्य एक भयानक जंगल में घुस गए। उस जंगल में प्रवेश करने वाले वे पहले मनुष्य थे। एक पेड़ ने उनकी बातचीत सुन ली। उसने सुना कि वे 'जंगल' नामक किसी वस्तु के बारे में बात कर रहे थे। पेड़ ने सोचा कि 'जंगल' किसी भयानक जानवर का नाम है। पेड़ ने जिज्ञासापूर्वक पक्षियों से पूछा। पक्षियों ने भी जंगल नाम की किसी वस्तु के बारे में नहीं सुना था। उन्होंने गायों से पूछा और गायों ने सांपों से। शीघ्र ही जंगल के सभी जानवर जंगल नाम के अदृश्य जानवर की पहचान को लेकर उलझन में पड़ गए।"

हनुमान जी ने कहा, "मनुष्य का मन जानवरों की तुलना में पर्याप्त विस्तार पा चुका है। इसलिए आपको यह समझने में कोई समस्या नहीं होती कि जंगल नाम का कोई जानवर नहीं है अपितु जंगल में जानवर रहते हैं। जंगल पूर्ण है और जानवर उसका एक भाग हैं। यदि आप ब्रह्मांड को पूर्ण एवं सरल रूप में देखना चाहते हैं तो आपको अपने मन को और भी विस्तृत करना होगा। अपने मन की सीमाओं को जितना अधिक विस्तार दे सकते हैं, दें। अपनी धारणाओं और समझ को विस्तार दें। बचपन से जो कुछ भी आप सीखते आ रहे हैं उससे आपके मन की सीमाएँ संकीर्ण हो गई हैं।

"जब आप अपने मन की सीमाओं का पर्याप्त रूप से विस्तार कर लेंगे तो आप सीमाएँ लांघकर मन के उस पार पहुँच जाएँगे। तो आपको बोध होगा कि आप मन नहीं अपितु कुछ और हैं। आप एक स्वतंत्र आत्मा हैं। तब आपको ब्रह्मांड पूर्ण रूप में अनुभव होगा। तब आपको पूर्ण की सरलता का बोध होगा। आप वह परम सरलता देख पाएंगे जिसके भीतर सभी जटिलताएँ छुपी हैं। तब आपको बोध होगा कि परम-भाषा, जिसमें सभी दृश्य लिखे गए हैं, कितनी सरल है।"

"तो... तो क्या जब मन पूरा विस्तार पा लेता है तब परम-भाषा सीख सकता है, देव?" उर्मी ने अपनी आशा को प्रश्न का रूप दिया।

हनुमान जी ने कहा, "उस सीमा पर पहुँचने के पश्चात विरोधाभास शुरू हो जाते हैं। जब आपका मन सभी सीमाओं को पार कर लेता है तब मन नहीं रहता। जो रहता है वह शुद्ध चेतना है। बचपन से जो स्थूल ज्ञान आप अर्जित करते आ रहे हैं वह पोटली में सिमटकर एक ओर रह जाता है। जो सूक्ष्म ज्ञान आपको आध्यात्मिक यात्रा के दौरान अर्जित होता है वह भी एक पोटली में सिमटकर एक ओर हो जाता है। उस अवस्था में आप पुनः यदि कुछ सीखने का प्रयास करेंगे, फिर चाहे वह परम-भाषा ही क्यों न हो, तो आप ज्ञान की पोटलियाँ पुनः खोल खड़े होंगे। आप उस अवस्था को खोकर पुनः नीचे आ गिरेंगे। शुद्ध चेतना की अवस्था में भ्रम इतना क्षीण है कि आप स्पष्ट रूप से स्वयं को आत्मा जानते हैं, मन नहीं। आप केवल पूर्णता की सरलता का अनुभव करते हैं। आप उस अनुभव को सीखने, समझने या समझाने की कोई आवश्यकता नहीं समझते। आवश्यकता क्या, आप कुछ भी नहीं समझते। आप समझ-नासमझ से ऊपर उठ चुके होते हैं।"

उर्मी, जो भविष्य में झांकने के लिए परम-भाषा का उपयोग करने की आशा में तनकर बैठी थी, गहरी श्वास लेकर चैन से बैठ गई। जानकीरूपा ने वार्ता को आगे बढ़ाया। वह बोली, "देव, शुद्ध चेतना से थोड़ा नीचे भी तो कोई अवस्था होती होगी। ठीक वहाँ जहाँ मन की सीमा है। कोई ऐसा इष्टतम स्तर होता होगा जहाँ मन इतना विस्तृत है कि परम-भाषा का अवलोकन कर सकता है परंतु इतना भी विस्तृत नहीं कि सीखने और सिखाने की प्रक्रिया से ऊपर उठ गया है। उस इष्टतम स्तर से हम परम-भाषा को नहीं सीख सकते तो इतना तो सीख सकते हैं कि वह भाषा इतनी सरल क्यों है? उसकी संरचना के आधार पर फिर हम एक सरलतम मानव भाषा का निर्माण कर सकते हैं। "

हनुमान जी ने कहा, "उस स्तर से मानव मन पहले ही एक भाषा का निर्माण कर चुका है - संस्कृत भाषा। दृश्यों का वर्णन करने के लिए संस्कृत सबसे सरल भाषा है। संसार की हर वस्तु अपने आप में विशिष्ट है। प्राचीन काल के महान ऋषियों नें विभिन्न वस्तुओं में सर्वनिष्ठ तत्वों की खोज की। जो उन्होने खोजा वह अद्भुत था। उन्होने पाया कि मात्र 2000

मूल तत्वों अर्थात धातुओं का उपयोग करके सब कुछ वर्णित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, एक पौधे का वर्णन करने के लिए आपको एक नया शब्द निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं है। आप जानते हैं कि पौधे अपने पैरों (जड़ों) के माध्यम से पानी पीते हैं। पैरों के लिए शब्द है ‘पाद’ और पीने के लिए शब्द है ‘प’। इसलिए पौधे को 'पादप' कहा जा सकता है। किसी भी भाषा को सरल एवं संक्षिप्त बनाने के लिए हमें हमारे चारों ओर की वस्तुओं में समानताएँ और सर्वनिष्ठ तत्व खोजने की आवश्यकता होती है। मनुष्य सामान्य बोल-चाल के लिए संस्कृत से संक्षिप्त कोई भाषा नहीं बना सकता।"

उर्मी ने वार्तालाप में वापसी करते हुए कहा, "परंतु पिंगल भाषा, देव? आपने कहा कि आचार्य पिंगल ने केवल दो प्रतीकों का प्रयोग करते हुए हर वस्तु या दृश्य का वर्णन करने की विधि खोजी थी। उसी के आधार पर तो आधुनिक मनुष्यों ने उस पिंगल यंत्र का आविष्कार किया है जो दृश्यों को बद्ध कर सकता है।"

"पिंगल भाषा को सामान्य बोल-चाल की भाषा के रूप में प्रयोग नहीं किया जा सकता।" हनुमान जी ने उत्तर दिया, "ऋषियों ने खोज की कि यदि धातुओं को 2000 से कम किया गया तो भाषा जटिल हो जाएगी। न ही हम वर्ण आदि प्रतीकों को कम कर सकते हैं। मैं आपको उदाहरण देता हूँ कि प्रतीकों को एक सीमा से कम करने पर भाषा जटिल क्यों हो जाती है। उर्मी, क्या आप मुझे बता सकती हैं कि मानवलोक में कितनी दिशाएँ हैं?"

उर्मी को पता था कि दिशाएँ दस होती हैं। उसने उत्तर देने के लिए मुंह खोलने की चेष्टा की परंतु उसे अहसास हुआ कि उसके होंठ बंद हैं। वह घबराई नहीं। हनुमान जी चाहते थे कि वह बिना अपना मुँह खोले उत्तर दे। उसने अपने दोनों हाथ उठाए और दस उंगलियों को दिखाकर उत्तर दे दिया।

"सही।" हनुमान जी ने पुष्टि की। उन्होने कालंदक की ओर रुख करते हुए आगे कहा, "कालंदक, क्या इसी प्रश्न का उत्तर आप दे सकते हैं?"

कालंदक ने भी अपना मुख खोलकर उत्तर देने की चेष्टा की परंतु उसके भी होंठ सिल गए थे। उसने हाथ उठाकर उँगलियों से उत्तर देने का प्रयास किया तो उसने पाया कि उसके हाथों में केवल एक-एक उंगली थी, पाँच-पाँच नहीं। परंतु वह ऐसा देखकर आतंकित नहीं हुआ। उसे अपने हाथों में कुछ भी विचित्र नहीं लगा क्योंकि हनुमान जी ने उसकी आठ उँगलियाँ लुप्त करके उसको यह स्मृति दे दी थी कि उनके हाथ जन्म से ही ऐसे थे।

चूंकि उसके दोनों हाथों में कुल दो उँगलियाँ ही थीं, उसे प्रश्न का उत्तर देने के लिए पाँच बार अपने हाथ नीचे-ऊपर करने पड़े।

हनुमान जी ने वर्णन किया, "उर्मी की दस उंगलियाँ हैं। इसलिए उसे उत्तर देने के लिए अपने हाथ केवल एक बार दिखाने पड़े। कालंदक की दो उंगलियाँ हैं। इसलिए इसी प्रश्न का उत्तर देने के लिए उसे पांच बार अपने हाथ दिखाने पड़े। उँगलियाँ यहाँ पर वही काम कर रही हैं जो भाषा के प्रतीक करते हैं। यदि हम भाषा के प्रतीकों की संख्या कम करते हैं तो मन को अधिक काम करना पड़ता है। पिंगल भाषा केवल दो प्रतीकों का उपयोग करती है। यही कारण है कि मन पिंगल भाषा को संसाधित नहीं कर सकता है। इसे संसाधित करने में जो पुनरावृत्तीय कार्य करना पड़ता है उसको करने के लिए मानव जाति ने उन पिंगल उपकरणों का आविष्कार किया है।"

उर्मी के मन में एक प्रश्न उछला और उसके मुख द्वार से बाहर निकलने को आतुर हुआ।

"देव।" उर्मी ने अपनी ध्वनि को जाँचने के लिए कहा। उसे यह जानकर राहत मिली कि वह पुनः बोल सकती थी। वह बोली, "देव, इस तर्क से तो परम-भाषा को संसाधित करने के लिए भी किसी उपकरण की आवश्यकता होगी क्योंकि परम-भाषा में भी पिंगल भाषा की तरह केवल दो ही प्रतीक होते हैं। आपने बताया था कि परम-भाषा के दो प्रतीकों को हम दिव्य प्रकाश के दो चर कहते हैं - कर्म चर और इच्छा चर? आत्मा बिना किसी उपकरण के परम-भाषा को संसाधित कैसे करती है?"

उधर कालंदक के हाथों की सभी दस उँगलियाँ भी वापिस आ गई थीं। उसके चेहरे पर आ रहे भावों को देखकर हनुमान जी दिव्य रस की अनुभूति कर रहे थे। उर्मी की ओर रुख करके उन्होने उत्तर दिया, "आत्मा काल-आकाश के जाल से बाहर निकल सकती है। आत्मा को ब्रह्मांड सरल रूप में दिखाई देता है। उस सरल रूप का वर्णन करने के लिए दो प्रतीक पर्याप्त हैं। सरल को यदि अधिक प्रतीकों के रूप में वर्णित करो तो वह जटिल हो जाएगा। मन जो जटिलताएँ देखता है उसका वर्णन करने के लिए तीन दर्जन प्रतीक और दो सहस्त्र धातुएँ चाहिए। आत्मा को उनकी आवश्यकता नहीं है।

“ऊन का लंबा धागा सुलझी हुई गेंद के रूप में बहुत सरल है किंतु उलझने के पश्चात बहुत जटिल हो जाता है। बुरी तरह गांठों में उलझे धागे की कल्पना करो। एक चींटी यदि उसके भीतर फँस जाए तो वह भीतर ही भीतर धागों पर रेंगती रहेगी। यदि उसका वैज्ञानिक मस्तिष्क हुआ तो वह उस जाल का रहस्य सुलझाने के लिए जटिल भाषा और गणित का निर्माण कर सकती है। भाषा और गणित जटिलता को और अधिक बढ़ाएगा, कुछ और गांठें लगाएगा। आप उस उलझे हुए धागे से बाहर हैं तो आप वास्तविकता जानते हैं कि वह केवल एक लंबा धागा है। इस सत्य का बोध होते ही ब्रह्मांड अपने आप सुलझ

जाता है। फिर आपको उसका वर्णन करने के लिए किसी जटिल भाषा अथवा गणित की आवश्यकता नहीं होती।"

जानकीरूपा ने पूछा, "देव, यदि मन परम-भाषा को नहीं जान सकता तो क्या यह जान सकता है कि उसमे उपयुक्त दो चरों - कर्म और इच्छा - का क्या स्वरूप है? यदि मन पूर्ण रूप से चरों को भी नहीं जान सकता तो क्या उनके बारे में कोई स्थूल जानकारी प्राप्त सकता है?"

हनुमान जी ने कहा, "उनके बारे में स्थूल रूप से जानने के लिए कल्पना कीजिए कि आप एक आत्मा हैं। आप इस लोक के दृश्यों को आत्मा के दृष्टिकोण से देखने की चेष्टा कीजिए। वास्तव में आप एक आत्मा ही हैं। परंतु जब तक आप इसका बोध नहीं कर लेते, कम से कम कल्पना तो कर ही सकते हैं कि आप एक आत्मा हैं। कर सकते हैं कि नहीं?"

"अवश्य, देव।" जानकीरूपा ने कहा। उसके स्वर में एक अभिनय था। वह आत्मा होने का अभिनय करते हुए आगे बोली, "मैं एक जागृत आत्मा हूँ। मैं शून्य हूँ। मेरी कोई पहचान नहीं है, कोई भौतिक तन नहीं है, कोई मन नहीं है, कोई स्मृतियाँ नहीं हैं।"

"आपको क्या दिखाई देता है?"

जानकीरूपा ने उत्तर दिया, "दृश्य।"

"दृश्य क्या हैं?"

"दृश्य ब्रह्मांड का एक अंश है।" उसने उत्तर दिया, "काल-आकाश का पूरा जाल यदि एक कपड़ा है तो दृश्य उस कपड़े का एक टुकड़ा है। मैं एक स्वतंत्र आत्मा हूँ। इसलिए मैं किसी भी अनुभव से रहित हूँ। दृश्य मुझे अनुभव प्रदान कर सकते हैं। हर दृश्य में एक मुख्य किरदार होता है। किरदार का एक तन-मन होता है। दृश्य में सब कुछ किरदार के माध्यम से ही अनुभव किया जाता है। किसी दृश्य को जीने के लिए मेरा उस किरदार से जुड़ना आवश्यक है।"

"आत्मा किरदार से कैसे जुड़ती है?"

"कैसे, देव?" जानकीरूपा आत्मा का अभिनय छोड़कर अपने स्वर में बोली।

हनुमान जी ने कहा, "उर्मी के विवाह के दृश्य की कल्पना कीजिए। यदि आप उस दृश्य को उसकी आंखों से देखना चाहते हैं, जैसा वह उस दृश्य में अनुभव कर रही है वैसा अनुभव करना चाहते हैं, वह उस दृश्य में जो सोच रही है वैसा सोचना चाहते हैं तो आपको उसके अतीत के बारे में पता होना चाहिए। इसका अर्थ है कि उसके विवाह का दृश्य जिस

तरह वह देख सकती है उस तरह कोई अनजान नहीं देख सकता। आपको 'उर्मी' बनना पड़ेगा। आपको उसके अतीत को जानना पड़ेगा। यदि आपको उसके जीवन का एक दृश्य भी उसकी तरह देखना है तो उसके पूरे अतीत को देखना होगा। किसी भी दृश्य का स्वतंत्र रूप से अस्तित्व नहीं है। उसके साथ अतीत के अनगिनत दृश्यों की श्रंखला जुड़ी हुई है।

"कहीं नाटक का मंचन हो रहा है तो आपको वह नाटक शुरू से देखना पड़ेगा। बीच में से कोई दृश्य देखने से आपको दृश्य समझ नहीं आएगा। थोड़ा बहुत समझ आ भी गया तो भी आपको नाटक के किसी किरदार के साथ जुड़ाव तो बिलकुल भी अनुभव नहीं होगा।

"एक ऐसे दृश्य की कल्पना कीजिए जिसमें किरदार का राज्याभिषेक हो रहा हो। उस किरदार ने एक साधारण सैनिक के रूप में अपनी यात्रा शुरू की थी और अंततः राजा बनने का उसका सपना सच हो रहा है। यदि आप उसके अतीत की यात्रा के दृश्यों को नहीं जानते हैं, यदि आप उसके संघर्षों से अनभिज्ञ हैं, तो आप इस दृश्य में उमड़ रही उसकी भावनाओं को अनुभव नहीं कर सकते।"

जानकीरूपा ने कहा, "मुझे समझ आ गया, देव। मैं एक जागृत आत्मा हूँ। मैं तब तक किसी किरदार के साथ नहीं जुड़ सकती जब तक कि मैं उसके अतीत की जानकारी धारण नहीं कर लेती।"

हनुमान जी ने कहा, "आपने ठीक समझा। ब्रह्मांड में काल-आकाश के किसी भी बिन्दु पर चल रहा दृश्य ले लो। वह दृश्य अतीत में घटित हो रहे अनगिनत दृश्यों के साथ जुड़ा हुआ है। उसका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। उदाहरण के लिए वह दृश्य ले लो जिसमें उर्वा नामक किरदार ने अभी जन्म लिया है। उसके प्रथम रुदन का दृश्य! भले ही यह उर्वा के जीवन का पहला दृश्य है परंतु इसका भी कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। सभी नवजात शिशु एक जैसे नहीं होते। उर्वा के जीवन के पहले दृश्य में सब कुछ अन्य नवजात किरदारों के पहले दृश्यों से भिन्न है। उसका तन, उसके माता-पिता, परिवेश, स्थान आदि सब भिन्न है। इसलिए किसी किरदार का पहला दृश्य भी अतीत के अनगिनत दृश्यों पर निर्भर करता है। यह तथ्य पुनर्जन्म की अवधारणा को जन्म देता है।

"अतीत के दृश्यों में वे दृश्य भी शामिल हैं जो जिए जा चुके हैं और वे दृश्य भी जिनको जीने की इच्छा की गई किंतु जिए नहीं गए। यदि आप किसी नाटक को देखने की इच्छा रखते हैं तो इसका अर्थ है कि उस नाटक के बारे में आपको थोड़ी बहुत जानकारी है। यदि आप नाटक देख चुके हैं तो आपको नाटक के बारे में और भी गहरी जानकारी है। इसी

तरह दृश्य की एक छोटी-सी झलकी जो जानकारी देती है उसे 'इच्छा' कहा जाता है और पूरा दृश्य जो जानकारी देता है उसे 'कर्म' कहा जाता है।

"यदि समय से बाहर निकलकर देखा जाए तो अतीत, वर्तमान और भविष्य का कोई अर्थ नहीं रह जाता। वहाँ से तो यही लगता है कि सभी दृश्य पहले ही घटित हो चुके हैं। एक जागृत आत्मा समय के बाहर होती है। उसे किसी एक दृश्य को जीने के लिए भी अनगिनत दृश्यों से बनी एक श्रंखला के बारे में जानकारी धारण करनी पड़ती है। वह जानकारी 'कर्म' और 'इच्छा' दोनों का मिश्रण होती है। अर्थात कुछ दृश्यों की मात्र झलक से प्राप्त जानकारी धारण करनी पड़ती है और शेष दृश्यों की पूरी जानकारी धारण करनी पड़ती है। यह जानकारी कुछ ऐसी ही होती है जैसे कि किसी के जीवन वृतांत की पुस्तक। परंतु इस जानकारी को पढ़ने से आत्मा को वास्तविक दृश्यों में प्रवेश मिलता है। आत्मा को लगता है कि वह दृश्य को स्वयं जी रही है। इसलिए इस जानकारी को 'लिंग कुंजी' कहते है। यह जानकारी एक दृश्य में प्रवेश की कुंजी होती है।”

कालंदक के मन में एक प्रश्न आया जिसको उसने तुरंत व्यक्त किया, "देव, क्या कर्म और स्मृति एक ही वस्तु नहीं हैं? स्मृति भी तो कर्म की तरह ही अतीत के दृश्यों की जानकारी है।"

"नहीं, कालंदक।" हनुमान जी ने कहा, "स्मृतियाँ काल-आकाश के भीतर उपस्थित हैं और कर्म काल-आकाश के बाहर अर्थात शून्य सुरंगों में। स्मृतियों को मन धारण करता है जबकि कर्म आत्मा द्वारा धारण किए जाते हैं।"

"आपके वर्तमान दृश्य में बहुत सारी वस्तुएँ हैं। वस्तुएँ मूर्त भी हैं और अमूर्त भी। केले, पेड़, पहाड़, जानवर आदि सभी मूर्त वस्तुएँ हैं। दूसरी ओर, स्मृतियाँ, विचार आदि अमूर्त वस्तुएँ हैं। अमूर्त वस्तुएँ ऐसी वस्तुएँ हैं जिन्हें आप इंद्रियों की सहायता से अनुभव नहीं कर सकते। न आप उन्हें देख सकते हैं, न छू सकते हैं, न ही उनमें कोई गंध है। परंतु अमूर्त वस्तुएँ भी वस्तुएँ हैं। वे अस्तित्व में हैं। आपका तन मूर्त वस्तुओं के साथ परस्पर क्रिया करता है जबकि आपका मन अमूर्त वस्तुओं के साथ।

"इसलिए स्मृति भी सेब, केला, दर्पण आदि वस्तुओं की तरह एक वस्तु है। एक दर्पण आपको वर्तमान का प्रतिबिंब दिखाता है। एक स्मृति आपको अतीत के दृश्यों का प्रतिबिंब दिखाती है।”

कालंदक के चेहरे पर संतुष्टि के भाव थे। वह बोला, "मैं समझ गया, देव। स्मृतियों में एक किरदार का अतीत झलकता है जबकि कर्मों में एक आत्मा का अतीत।"

"नहीं, कालंदक।" हनुमान जी बोले, "पहली बात, एक आत्मा का अपना अतीत नहीं है क्योंकि वह समय के बाहर है। जब आत्मा किरदार के साथ जुड़ जाती है तो किरदार का अतीत ही आत्मा का अतीत बन जाता है। दूसरी बात, स्मृतियाँ सदा एक किरदार के अतीत को सटीकता से नहीं दिखातीं।

"यदि स्मृतियों को समझना है तो आप दृश्यों की श्रंखला को मत देखिये। केवल एक दृश्य पर विचार कीजिए। किसी भी दृश्य में स्मृतियाँ ठीक उसी तरह उपस्थित हैं जैसे कि केला, सेब और दर्पण जैसी वस्तुएँ उपस्थित हैं। स्मृतियाँ किसी अन्य दृश्य से उड़कर यहाँ नहीं आई हैं। और जहाँ तक दृश्य की बात है, यह दृश्य यहाँ तब भी था जब आपकी आत्मा इसे जीने के लिए यहाँ पर नहीं थी। यह तब भी यही रहेगा जब आपकी आत्मा आगे के दृश्य को जीने लग जाएगी। इस दृश्य में उपस्थित स्मृतियाँ भी यहीं पर थीं। आपकी आत्मा इन्हे कहीं से लेकर नहीं आई है। न ही आपकी आत्मा इन्हे अगले दृश्य में लेकर जाएगी। अगले दृश्य में पहले से ही स्मृतियाँ उपस्थित हैं जो आपको इस दृश्य सहित अतीत के दृश्यों का प्रतिबिम्ब दिखाएँगीं।

"इसे समझने के लिए आपको थोड़ा समय लग सकता है। यह कठिन है परंतु एक बार जब आप इसे समझ लेंगे तो आपको सब कुछ स्पष्ट हो जाएगा।

"वस्तुएँ एक दृश्य से दूसरे दृश्य में नहीं जातीं। आप अर्थात आपकी आत्मा एक दृश्य से दूसरे दृश्य में जाती है। वस्तुओं की गति एक भ्रम है। जब आपकी आत्मा समय के तारों पर गति करती है तो वस्तुओं की गति का भ्रम पैदा होता है। स्मृतियाँ भी वस्तुएँ हैं।

"आप जिसे जीवन कहते हैं वह गति के भ्रम के अलावा कुछ भी नहीं हैं। आपका किरदार एक दृश्य से दूसरे दृश्य में नहीं बढ़ रहा है। आपकी आत्मा समय के तारों पर आगे बढ़ रही है। कल्पना कीजिए कि किसी ने जन्म से लेकर मृत्यु तक हर पल आपके किरदार का चित्र लिया। आपका पूरा जीवन उन्ही लाखों चित्रों की एक श्रंखला है। एक चित्र अपने से अगले अथवा पिछले चित्र से थोड़ा-सा भिन्न है। यदि समय के बाहर से देखा जाए तो दिखाई देता है कि ब्रह्मांड ने पहले से ही आपके किरदार के अतीत, वर्तमान और भविष्य के चित्र ले रखे हैं। समय के तारों पर चलकर आपकी आत्मा उन चित्रों की श्रंखला को देखती है तो उनमें गति होने का भ्रम होता है।

"आत्मा जागृत होने के पश्चात आप इस भ्रम के बारे में और भी अच्छे से जान पाएंगे। आप जानेंगे कि इस ब्रह्मांड में कुछ भी गतिमान नहीं है। सब कुछ स्थिर है। आप ब्रह्मांड की सभी वस्तुओं को नहीं देख पा रहे हैं। मनुष्य ब्रह्मांड के एक बहुत छोटे से अंश को ही अनुभव कर सकता है। इंद्रियों की तो बात छोड़िए, मानव की कल्पना भी ब्रह्मांड के

एक छोटे से अंश तक ही जा पाती है। यदि आप किसी अन्य ग्रह पर जीवन की कल्पना भी करते हैं तो आप वहाँ पर रहने वाले जीवों में भी अपनी तरह ही आँख कान आदि होने की कल्पना करते हैं। अन्य ग्रह की बात छोड़िए, आप अभी जहाँ पर बैठे हैं वहाँ पर भी इतनी सारी अदृश्य वस्तुएँ हैं जिनको आपकी इंद्रियाँ अनुभव नहीं कर सकतीं। जिस जगह को आपका तन घेरे हुए है उस जगह पर भी आपके तन के अलावा बहुत सारे पदार्थ हैं जो आप अनुभव नहीं कर सकते। आप जो पदार्थ अनुभव करते हैं उनको आप ठोस, द्रव तथा वायु की श्रेणियों में बांटते हैं। आप कल्पना भी नहीं कर सकते कि आपकी इन श्रेणियों से परे भी पदार्थ अस्तित्व में हैं।

"जैसे किसी पहेली के टुकड़ों को जोड़ते हैं वैसे ही यदि हम सभी पदार्थों को एक साथ जोड़कर देखें तो ब्रह्मांड में केवल एक ही प्रकार का पदार्थ है। उसको हम न ठोस कह सकते हैं, न द्रव, न वायु। फिर भी, आपकी कल्पना में बंद करने के लिए हम उस पदार्थ को आकाश का द्रव कहते हैं। ब्रह्मांड आकाश के द्रव का एक गोला है जिसमें कोई गति नहीं है। जब एक आत्मा समय के तारों पर चलती है तो उसे इस द्रव में से एक विशेष प्रकार के ही पदार्थ अनुभव होते हैं और उन पदार्थों में गति होने का भ्रम होता है।

"अन्य वस्तुओं की तरह स्मृतियाँ भी एक दृश्य के भीतर होती हैं; वे गति नहीं करतीं। स्मृति एक विशेष तरह की वस्तु होती है। आप एक स्मृति की तुलना एक दर्पण के साथ कर सकते हैं। जब आप एक दर्पण में परिलक्षित छवि देखते हैं, आपको विचार आता है, ‘अरे, ये तो मैं हूँ।’ दृश्य में उपस्थित अन्य किरदार और वस्तुएँ आपके इस विचार को मान्य करती हैं। जब कोई विचार मान्य हो जाए तो आप उसे 'सत्य' कहते हैं।

"स्मृति भी एक दर्पण की तरह एक वस्तु है। स्मृति आपको कुछ दिखाती है और आप कहते हैं, ‘अरे, यह तो मेरा अतीत है।’ जब दृश्य में उपस्थित अन्य वस्तुएँ इसे मान्य करती हैं तो आप इसे एक सच्ची स्मृति कहते हैं। अन्यथा यह एक झूठी स्मृति कहलाती है। मैं आपको एक उदाहरण दिखाता हूँ।”

मातंगों ने अपनी आँखें बंद कर लीं। उन्हे एक विचित्र तरह के कपड़े पहने हुआ व्यक्ति एक गाँव की गली से गुजरते हुए दिखाई दिया। वह स्वतंत्रता की लड़ाई का नारा लगा रहा था। पर क्यों? वह पहले से ही एक स्वतंत्र देश का नागरिक था। जिन आक्रांताओं से वह आजादी मांग रहा था, वे दशकों पहले उसके देश से भाग गए थे। वह लक्ष्मीबाई नामक एक रानी की जयजयकार कर रहा था जो 150 वर्ष पहले जीवित थी।

दृश्य भंग हो गया। जैसे ही मातंगों ने अपनी आँखें खोलीं, हनुमान जी का स्वर उनके कानों में पड़ा, "यह उसकी एक मिथ्या स्मृति है कि वह उस रानी की सेना में सैनिक

है। उसके गाँव के जनों ने उसे मानसिक रूप से रुग्ण घोषित कर दिया है।

"मिथ्या स्मृति एक ऐसी वस्तु है जिसका दृश्य में उपस्थित अन्य वस्तुओं के साथ विरोधाभास है। यह कोई बड़ी बात नहीं है। वस्तुओं के बीच विरोधाभास और संघर्ष ठीक उसी तरह एक सामान्य बात है जैसे कि वस्तुओं के बीच तालमेल और सद्भाव।"

स्मृतियों की प्रकृति के बारे में इस लंबी व्याख्या के पश्चात हनुवाणी कुछ देर के लिए थम गई और सभा में मौन छा गया। हनुमान जी चाहते थे कि उनके शिष्य उन गहरे विषयों पर ध्यान करें जिनकी उन्होने अभी-अभी व्याख्या की थी।

ध्यान के पश्चात सबसे पहले उर्मी बोली, "देव, यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं स्मृतियों का विषय छिड़ने से पहले जिस विषय पर चर्चा चल रही थी उस पर वापिस लौटना चाहूंगी। हम कर्म-इच्छा के संबंध में ज्ञान प्राप्त कर रहे थे। आपने बताया था कि आत्मा को किसी किरदार से जुड़ने के लिए जो जानकारी धारण करनी पड़ती है उसके दो पहलू होते हैं - कर्म और इच्छा। क्या मैं इस संबंध में एक प्रश्न पूछ सकती हूँ?"

"हाँ, उर्मी। पूछो।" हनुमान जी ने आज्ञा दी।

“देव, आत्मा को किसी किरदार से जुड़ने के लिए कर्म धारण करने पड़ते हैं, यह तो समझ में आता है। परंतु आत्मा को इच्छाएँ क्यों धारण करनी पड़ती है? कर्म अर्थात अतीत में जिए गए दृश्यों की जानकारी। इच्छा अर्थात उन दृश्यों की एक झलक की जानकारी जिनको जीने की इच्छा की गई परंतु जिए नहीं जा सके। … कर्म अर्थात पूर्ण इच्छाएँ। उनको धारण करने से किरदार के अतीत का पता चलता है। किंतु अधूरी इच्छाओं को धारण करने का अर्थ समझ नहीं आता।" उर्मी ने पूछा।

"इस प्रश्न का उत्तर तो आप ही मुझे दो, उर्मी!" हनुमान जी ने मुस्कुराते हुए कहा। उनकी दिव्य मुस्कान उर्मी को उसके बचपन में ले गई।

जब वह ग्यारह वर्ष की थी तब उसने किन्नर नामक एक मायावी प्राणी के बारे में सुना था जो आधा मानव और आधा घोड़ा था। किन्नर से मिलने की तीव्र इच्छा से वह जंगल के उन क्षेत्रों में जाया करती थी जहाँ जाना मातंग बच्चों के लिए निषिद्ध था। उसकी बचकानी गतिविधियों का परिणाम अच्छा नहीं हुआ। वह एक चट्टान से गिर गई और मरते-मरते बची। उस घटना के कारण उसे ऊँचाइयों और विशेष रूप से चट्टानों से डर लगने लगा। किन्नर से मिलने की उसकी इच्छा अधूरी रही परंतु उस अधूरी इच्छा से मिला अनुभव उसके व्यवहार को अब तक प्रभावित कर रहा था।

उर्मी ने स्वीकार किया, "हाँ, देव। अतीत की अधूरी इच्छाओं का मेरे वर्तमान पर प्रभाव पड़ता है।"

हनुमान जी ने कहा, "दृश्य।"

उनके शिष्यों ने तुरंत अपनी आँखें बंद कर लीं।

उन्होंने एक दृश्य देखा जिसमें एक युवक मिष्ठान की दुकान से मिष्ठान खरीद रहा था।

"यह दृश्य आपको इस व्यक्ति के बारे में क्या बताता है? केवल इतना कि वह कोई ग्राहक है जो मिष्ठान खरीद रहा है।" हनुवाणी गूँजी, "अब मैं आपको एक दृश्य दिखाता हूँ जिसको उसने जीने की इच्छा की किंतु जी न सका।"

इस दृश्य में वही युवक दुकानदार का ध्यान भटकाकर उसी दुकान से मिष्ठान चोरी करता दिखाई दिया।

हनुमान जी बोले, "उसकी इच्छा थी यह दृश्य जीने की। किंतु पकड़े जाने के डर ने उसे इस दृश्य को जीने से रोक दिया। जो दृश्य उसने जिया उसकी तुलना में यह दृश्य आपको इस युवक के बारे में अधिक जानकारी देता है। इस दृश्य से आपको पता चलता है कि यदि पकड़े जाने का डर न हो तो यह युवक चोरी कर सकता है।

"इतने से भी आप उसके बारे में अधिक नहीं जान पाएंगे। उसे और भी बेहतर ढंग से जानने के लिए, यह समझने के लिए कि उसे चोरी करने की आदत क्यों है, आपके पास उसके अतीत के दृश्यों की जानकारी होनी चाहिए। अतीत के न केवल वे दृश्य जो उसने जीए अपितु वे दृश्य भी जिनको जीने की उसने इच्छा की परंतु जी न सका।

"उसे और भी अधिक जानने के लिए, उसे पूरी तरह से जानने के लिए, आपके पास उन दृश्यों की जानकारी भी होनी चाहिए जो उसके पैदा होने से पहले घटित हुए - उसके पिछले जीवन के दृश्य। उसके अतीत की पूर्ण जानकारी होने के पश्चात ही आप उसके जीवन के वर्तमान दृश्य को उसकी तरह जी पाएंगे। उस जानकारी को इस दृश्य की 'लिंग कुंजी' कहा जाएगा। उस जानकारी से आपको इस दृश्य में प्रवेश मिलता है। वह जानकारी धारण करने के पश्चात आपको लगेगा कि आप स्वयं ही मिष्ठान खरीद रहे हैं। 'आप' से मेरा अर्थ आपकी जागृत आत्मा से है। आपकी आत्मा आपके वर्तमान किरदार से अलग होने के पश्चात ही किसी अन्य किरदार के जीवन का दृश्य जी सकती है।”

एक ध्यानपूर्ण मौन के पश्चात युवा मातंगों के मन के क्षितिज पर ज्ञान का नया प्रभात खिल उठा। यद्यपि अज्ञान का एक पतला बादल अब भी धनुष्क के मन में छाया हुआ था।

उस बादल को छांटने के लिए उसने पूछा, "देव, आपने लिंग कुंजी की तुलना ऐसे प्रवेश पत्र से की जो हमें दृश्यों में प्रवेश करने का अधिकार देता है। मुझे लगता है कि लिंग कुंजी मात्र एक प्रवेश पत्र नहीं है। वह हमें दृश्य को नियंत्रित करने की शक्ति भी देती है। मैं अनुभव कर सकता हूँ कि मेरा तन-मन मेरे नियंत्रण में है। क्या यह मेरा भ्रम है?"

हनुमान जी ने उत्तर दिया, "जब आप नाव की सवारी करते हैं तो नाव चलती है, आप नहीं। आप गति केवल इसलिए अनुभव करते हैं क्योंकि आप चलती नाव में बैठे हुए हैं। ठीक उसी तरह, आत्मा केवल तन-मन की सवारी करती है। आत्मा 'कर्ता' नहीं है। आत्मा कुछ भी नहीं करती है। काल-आकाश के रंगमंच पर हो रहे दृश्य में आत्मा का नियंत्रण होने का प्रश्न ही नहीं उठता। आत्मा मूकदर्शक है। आत्मा मात्र साक्षी है।"

धनुष्क बोला, "परंतु देव, मैं अनुभव कर सकता हूँ कि मैं ही कर्ता हूँ, मैं ही सब कुछ कर रहा हूँ। मैं सोचने के लिए अपने मन का उपयोग कर रहा हूँ, बोलने के लिए मुंह का उपयोग कर रहा हूँ। अपने तन-मन का उपयोग करके मैं दृश्य में उपस्थित शेष चीजों के साथ परस्पर व्यवहार कर रहा हूँ। मैं अपने तन को इधर-उधर कर सकता हूँ, मैं अपने तन का उपयोग करके वस्तुओं को इधर-उधर कर सकता हूँ... मैं जानता हूँ कि मैं न तो तन हूँ और न ही मन। मैं आत्मा हूँ और तन-मन मेरे नियंत्रण में है। नियंत्रण का अनुभव मुझे तो वास्तविक लगता है, भ्रम नहीं!"

हनुमान जी ने शांत स्वर में उत्तर दिया, "जैसा कि मैंने आपको कुछ देर पहले बताया, विचार भी वस्तुएँ हैं, ऐसी अमूर्त वस्तुएँ जो आपके चारों ओर तैर रही हैं। जैसे तन एक पत्थर का उपयोग करके पेड़ के पत्तों तथा फलों को गतिमान कर सकता है वैसे ही मन विचारों का उपयोग करके तन के अंगों को गतिमान कर सकता है। आपका मन आपके तन को नियंत्रित करता है। आपका तन और मन संयुक्त रूप से दृश्य में उपस्थित अन्य चीजों के साथ परस्पर व्यवहार करते हैं। इस क्रिया से आत्मा का कोई लेना-देना नहीं है। आत्मा केवल क्रिया को होते देखती है।"

धनुष्क ने पूछा, "फिर मुझे क्यों लगता है कि मैं ही सब कुछ कर रहा हूँ, देव?"

हनुमान जी ने कहा, "क्योंकि आप उस किरदार से जुड़े हुए हैं जो सब कुछ कर रहा है। जब आप एक कहानी की पुस्तक पढ़ते हैं तो आपका नायक के प्रति भावनात्मक जुड़ाव हो जाता है। जो वह अनुभव करता हैं वहीं आप अनुभव करते हो। जब वह

खलनायक से लड़ता है तो आपको ऐसा लगता है जैसे आप स्वयं खलनायक से लड़ रहे हो। जब वह कुछ बोलता है तो आपको ऐसा लगता है जैसे वह आपके विचारों को शब्दों का रूप दे रहा है। नायक के प्रति आपका जुड़ाव उतना ही अधिक बढ़ता चला जाता है जितना अधिक आप उसके अतीत के बारे में जानते हैं। आत्मा के साथ भी ऐसा ही होता है। एक दृश्य की लिंग कुंजी में दृश्य के किरदार के अतीत की जानकारी संग्रहीत होती है। वह जानकारी धारण करते ही आत्मा उस किरदार से जुड़ जाती है। उसे ऐसा लगने लगता है जैसे वह स्वयं किरदार है, दर्शक नहीं।”

धनुष्क ने पूछा, "क्या इसका अर्थ यह है कि आत्मा की कोई स्वेच्छा नहीं है, देव? काल-आकाश के रंगमंच पर जो घटित हो रहा है वह पहले ही घटित हो चुका है। सारी पटकथा पहले ही लिखी जा चुकी है। किरदार उसी पटकथा के अनुसार ही जीता है। चूंकि आत्मा कुछ नहीं कर सकती तो उसके पास पटकथा को देखते चले जाने के सिवाय और कोई विकल्प नहीं है। आत्मा एक किरदार के साथ जुड़ गई तो समझो लंबी फँस गई। चाहे वह किरदार सुख अनुभव करे या दुःख, आत्मा को बस वही अनुभव करते चले जाना है। क्या मेरा निष्कर्ष सही है, देव?"

हनुमान जी बोले, "ब्रह्मांड में अनगिनत किरदार हैं। आप एक ही किरदार से क्यों जुड़े रहना चाहते हैं? आप अर्थात आपकी आत्मा एक किरदार से अलग होकर किसी दूसरे किरदार से जुड़ने के लिए स्वतंत्र है। यदि आप एक ही किरदार से जुड़े रहना चाहते हैं तो वह भी आपकी स्वेच्छा से होना चाहिए, बाध्यता से नहीं। जब आप किसी किरदार को छोड़ना चाहें, वह भी आपकी स्वेच्छा से होना चाहिए, बाध्यता से नहीं।"

"परंतु कैसे, देव। कैसे?" धनुष्क से पूछा।

हनुमान जी ने कहा, "आपकी आत्मा जानती है कैसे किरदार से जुड़ना है और कैसे अलग होना है। आपकी आत्मा परम-भाषा जानती है। आपकी आत्मा जानती है कि लिंग कुंजी कैसे काम करती है। परंतु इस समय आपकी आत्मा सुप्त है। जैसे ही आपकी आत्मा जाग जाएगी, इस स्वेच्छा का प्रयोग करने लगेगी।

"सुप्त आत्मा एक ही किरदार के साथ चलती चली जाती है। इस किरदार की पटकथा पहले से ही लिखी जा चुकी है। परंतु आत्मा एक पटकथा से दूसरी पटकथा में और एक किरदार से दूसरे किरदार में प्रवेश करते हुए अपनी यात्रा स्वयं निर्धारित करती है।

"आप एक आत्मा हैं। आप जागिये। किरदार की अनुकृति मत कीजिए। यदि आप वर्तमान दृश्य के किरदार को आपका अगला दृश्य निर्धारित करने देंगे तो आप दुःख भरे

दृश्यों में फँस जाएंगे। चलिए मैं आपको दिखाता हूँ कि किरदार सुप्त आत्मा को कैसे फँसाता चला जाता है।"

अध्याय 9

अपूर्ण

एक संक्षिप्त क्षण के लिए धनुष्क यह सोचकर उत्साहित हुआ कि हनुमान जी देवताओं के लोक से कुछ विशेष दृश्य दिखाने वाले थे। उसने अपेक्षा की थी कि कोई अलौकिक प्राणी धरती पर उतरकर ब्रह्मांड के रहस्यों को समझाने का साधन बनेगा। उसने नहीं सोचा था कि उसका स्वयं का तन-मन ज्ञान का साधन बनने वाला था।

"पानी!" धनुष्क ने अपना गला पकड़ लिया था। उसके गले में जैसे अग्नि धधक रही थी।

उर्वा, जिसकी पिंगल यंत्र के बारे में आशंकाएँ अब पिघल गई थीं, अपने सबसे अच्छे मित्र को पानी उपलब्ध कराने के लिए खड़ा हुआ।

"रुको।" हनुमान जी ने अपना हाथ आगे बढ़ाकर उर्वा को ठहरने का निर्देश दिया। उनकी दृष्टि धनुष्क के पीड़ित चेहरे पर टिकी थी।

उर्वा ने अपनी जगह पर ठहरे हुए ही धनुष्क की सहायता करने की चेष्टा की। उसने धनुष्क को सुझाव दिया, "दृश्य से स्वयं को अनासक्त करो, धनु।"

धनुष्क इस बात से क्रुद्ध हुआ कि उसका मित्र उसे पानी देने की बजाय एक बेकार सुझाव दे रहा था।

हनुमान जी ने अपने शीतल स्वर की धारा बहाते हुए कहा, "वर्तमान दृश्य में आपकी आत्मा एक ऐसे किरदार से जुड़ी हुई है जो प्यासा है। आप अर्थात आपकी आत्मा वर्तमान दृश्य के बारे में कुछ भी नहीं कर सकते परंतु निश्चित रूप से अपना अगला दृश्य इससे बेहतर चुन सकते हैं। ऐसा आप क्यों नहीं कर पा रहे हैं? क्योंकि आप वर्तमान किरदार से इतने अधिक जुड़े हुए हैं कि आप अगला दृश्य भी किरदार की पटकथा से ही चुन रहे हैं न कि अपनी इच्छा से। मुझे बताओ, धनुष्क, आप अपना अगला दृश्य कैसा चाहते हैं?"

धनुष्क ने अपने गले से हाथ हटा लिया। उसकी प्यास अब सहने योग्य अनुभव हुई। उसने कहा, "देव, मैं एक आत्मा हूँ और वर्तमान में धनुष्क नामक एक प्यासे किरदार से जुड़ा हुआ हूँ। मैं चाहता हूँ कि अगले दृश्य में पानी का एक कटोरा मेरे किरदार के होठों पर हो।"

"इतनी नीरस इच्छा?" हनुमान जी ने कहा, "यह तो किरदार की इच्छा है, आपकी नहीं। और किरदार की स्वयं की इच्छा इच्छा नहीं, भ्रम होती है। उसकी पटकथा तो पहले ही लिखी जा चुकी है। इसलिए किरदार जो भी चाहता है वह उसी पटकथा का भाग है। यदि आप अर्थात आपकी आत्मा अगला दृश्य चुनें तो कम से कम अपनी प्यास बुझा रहे एक कबीलाई के दृश्य तो बेहतर दृश्य ही चुनेंगे। कदाचित आप उस दृश्य में प्रवेश करें जिसमें एक राजकुमार अपने महल के उद्यान में एक संगीत सभा का आनंद ले रहा है।

धनुष्क ने कहा, "मैं अपनी प्यास का दमन कर सकता हूँ, देव। कोई समस्या नहीं है।"

हनुमान जी ने कहा, "पुनः नीरस दृश्य का चुनाव! कोई भला दमन का दुःख भरा दृश्य क्यों चुनेगा? ये चुनाव करने के लिए आपको कौन बाध्य कर रहा है? आपका किरदार! आपके किरदार का मन! यदि आपकी आत्मा स्वतंत्र रूप से कोई दृश्य चुने तो प्यास की दमन का पीड़ादायक दृश्य नहीं चुनेगी।"

"फिर मुझे क्या करना चाहिए, देव?" असहाय धनुष्क कराहते हुए बोला।

हनुमान जी ने सुझाव दिया, "धनुष्क, आपकी आत्मा किरदार से दूरी बना सकती है।"

धनुष्क अपने आप से बोला, "हे धनुष्क नाम के किरदार, आपको जो मन में आए करो। अपनी प्यास को बुझाओ या उसका दमन करो, मेरा उससे कोई लेना-देना नहीं है। मैं एक आत्मा हूँ और मैं किसी अन्य किरदार के माध्यम से एक बेहतर दृश्य जीने के लिए रवाना हो रहा हूँ। और वैसे भी, आपको लगता है कि आप प्यास का दमन करने या बुझाने में से एक विकल्प चुन रहे हो परंतु आपका ये चुनाव भ्रम है। आपकी पटकथा पहले ही लिखी जा चुकी है। आप जो चुनाव करोगे वह पहले से ही निर्धारित है। आपकी यात्रा पूरी तरह से पहले ही निर्धारित है। जब आपकी पटकथा में कोई अच्छा दृश्य आएगा तो कदाचित मैं आपसे जुड़ने पुनः आऊँगा परंतु अभी मुझे जाना है किसी दूसरे किरदार से जुड़ने के लिए!"

धनुष्क का उपरोक्त विचार भी किरदार की पटकथा का भाग था। धनुष्क इस रहस्य को सुलझाने का प्रयास कर रहा था। इसी दौरान उर्मी बोल पड़ी, "देव, मैं उलझन में हूँ। इतना तो मैं जान गई कि अगले दृश्य का साक्षी बनने के लिए आत्मा के पास उस दृश्य की लिंग कुंजी होना आवश्यक है। बिना लिंग कुंजी के आत्मा किसी दृश्य में प्रवेश नहीं कर सकती। वे लिंग कुंजियाँ शून्य सुरंगों में उपस्थित हैं। जागृत आत्मा कोई भी लिंग कुंजी उठाकर किसी भी दृश्य में प्रवेश कर सकती है। परंतु सुप्त आत्मा उसी दृश्य में प्रवेश करती

है जिसमें किरदार प्रवेश करता है। सुप्त आत्मा किरदार की बाध्यता के कारण जिन दृश्यों में प्रवेश करती है उनमें प्रवेश करने के लिए भी तो उसे लिंग कुंजी चाहिए। वह लिंग कुंजी उसे कहाँ से प्राप्त होती है? शून्य सुरंगो से ही प्राप्त होती होगी। फिर किरदार उसको बाध्य कैसे करता है? किरदार यह कैसे निर्धारित करता है कि सुप्त आत्मा उसकी पटकथा के दृश्यों की लिंग कुंजियाँ ही उठाए, किसी अन्य किरदार के दृश्यों की कुंजियाँ उठाकर उससे अलग न हो जाए?"

हनुमान जी ने उत्तर दिया, "यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि ये कुंजियाँ लोहे की नहीं बनी हुई हैं। इन कुंजियों में जानकारी भरी है। एक कुंजी को आप एक संख्या भी समझ सकते हैं। एक संख्या में यदि एक भी अंक जुड़ या घट जाता है तो संख्या बदल जाती है। लिंग कुंजी कर्म और इच्छा की जानकारी से बनी होती है। उसमें एक कर्म जुड़ा या घटा तो कुंजी बदल गई! एक इच्छा जुड़ी या घटी तो कुंजी बदल गई!

"यदि आप एक ही किरदार के जीवन के दृश्यों की लिंग कुंजियों का अध्ययन करेंगे तो पाएंगे कि वे पूरी तरह से एक-दूसरे से भिन्न नहीं हैं। इस दृश्य की लिंग कुंजी और अगले दृश्य के लिंग कुंजी में एक-दो कर्म या इच्छा का ही अंतर होता है।

"जब एक आत्मा एक किरदार से जुड़ी हुई है तो उसे अगले दृश्य में जाने के लिए एक लिंग कुंजी को पूरी तरह त्यागकर नई लिंग कुंजी धारण करने की आवश्यकता नहीं है। वर्तमान लिंग कुंजी में एक कर्म अथवा इच्छा के घटाने-बढ़ाने से अगले दृश्य की लिंग कुंजी मिल जाती है।

"और घटाने-बढ़ाने के लिए वे एक-दो कर्म अथवा इच्छाएँ भी सुप्त आत्मा स्वयं नहीं चुनती। वह केवल किरदार की कर्म और इच्छाओं की अनुकृति करती है।"

"क्यों, देव? ... कैसे? किरदार की इच्छा या कर्म का अनुकृति करने का क्या अर्थ है?" मातंग साधकों के मन में प्रश्न उठा।

धनुष्क का रुख करते हुए हनुमान जी ने कहा, "धनुष्क के जीवन का वर्तमान दृश्य ले लीजिए। उसके किरदार की क्या इच्छा है?"

धनुष्क अचानक सभा के ध्यान का केंद्र बनने के कारण चौंका और बोला, "मैं हनुवाणी सुनने के अलावा कोई इच्छा नहीं रखता, देव। कोई इच्छा नहीं। मैं सत्य कहता हूँ, मुझे पानी पीने की इच्छा नहीं है।"

हनुमान जी ने मुस्कुराते हुए कहा, "वर्तमान दृश्य में धनुष्क के किरदार की दो इच्छाएँ हैं - एक, वह प्यास का दमन करना चाहता है। दूसरा, वह मेरे साथ बेहतर ढंग से

जुड़ने की इच्छा रखता है ताकि वह मेरी वाणी को अच्छे से सुन सके और ज्ञान प्राप्त कर सके।

"कृपया ध्यान दें, ये दोनों वास्तव में उसके किरदार की इच्छाएँ हैं, उसकी आत्मा की नहीं। उसकी आत्मा अर्थात वह चाहे तो इन इच्छाओं को धारण न करके वर्तमान किरदार से अलग हो सकता है। परंतु वह ऐसा कर नहीं रहा है।

"उसकी आत्मा अर्थात वह इन दोनों इच्छाओं में से एक का चुनाव भी स्वयं नहीं कर रहा है। वो चुनाव भी उसका किरदार कर रहा है। अर्थात वो चुनाव भी किरदार की पटकथा का भाग है।

"इसी को कहते हैं अनुकृति करना - उसकी आत्मा केवल किरदार की इच्छाओं की अनुकृति कर रही है। अगले दृश्य की लिंग कुंजी प्राप्त करने के लिए आत्मा वर्तमान लिंग कुंजी में किरदार की इच्छा मात्र जोड़ रही है।

"इसका अर्थ है कि उसकी आत्मा का अगला दृश्य उसके किरदार द्वारा तय किया जा रहा है।

"ध्यान दें, किरदार वास्तव में आत्मा को इच्छा की आपूर्ति नहीं कर रहा है। किरदार और आत्मा के बीच ऐसा कोई रास्ता उपस्थित नहीं है जिसके माध्यम से इच्छाओं का आदान-प्रदान हो सके। आत्मा सदा शून्य सुरंग में रहती है, जबकि किरदार काल-आकाश के मंच पर।

"आत्मा की इच्छाओं और किरदार की इच्छाओं में अंतर समझिए। काल-आकाश के मंच पर अतीत, वर्तमान और भविष्य में घटित हो रहे सभी दृश्यों की जानकारी शून्य सुरंगों में पहले से ही उपलब्ध है। उसी जानकारी से लिंग कुंजियाँ बनती हैं। वह जानकारी परम-भाषा में बद्ध है। उस जानकारी के दो चर हैं - कर्म तथा इच्छाएँ। आत्मा सीधे शून्य सुरंगों से इच्छाएँ धारण करती है। जबकि किरदार की इच्छाएँ विचारों के रूप में उपस्थित हैं। विचार वस्तुएँ ही हैं, अमूर्त वस्तुएँ। और वस्तुएँ काल-आकाश के भीतर अस्तित्व में हैं।

"जैसे ही किरदार विचार के रूप में एक इच्छा को धारण करता है, आत्मा उस इच्छा से संबंधित जानकारी धारण कर लेती है जो शून्य सुरंगों में उपलब्ध है। इस तरह सुप्त आत्मा किरदार की इच्छा की अनुकृति करती है।

"कर्म के साथ भी ऐसा ही होता है। जैसे ही किरदार कुछ करता है, आत्मा उस कर्म की वह जानकारी धारण कर लेती है जो शून्य सुरंगों में उपलब्ध है। इस तरह सुप्त आत्मा किरदार के कर्म की अनुकृति करती है।

"इसे बेहतर समझने के लिए आप एक परीक्षा में एक छात्र द्वारा दूसरे की अनुकृति करने के सादृश्य को ले सकते हैं। आपकी सुप्त आत्मा अनुकृति करने वाला छात्र है। आपका किरदार जो कुछ भी विचारों और कार्यों की स्याही से लिखता है, आत्मा इच्छाओं और कर्म की स्याही से उसकी अनुकृति करती है।

"यहाँ पर मैं यह कहना चाहूँगा कि जो कुछ भी काल-आकाश के मंच पर अस्तित्व में है, उस सबकी जानकारी शून्य सुरंगों में परम-भाषा में बद्ध है। वह जानकारी 'अस्तित्व' में नहीं है, 'अनस्तित्व' में है। शून्य सुरंगों में कुछ भी न होते हुए भी सब कुछ है। मेरे इस कथन को समझना असंभव है क्योंकि जो कुछ भी समझा जा सकता है वह काल-आकाश के मंच पर है; समझना मन का स्वभाव है और मन काल-आकाश के भीतर है। परंतु मेरे लिए यह कथन कहना आवश्यक था। जब आप परम-ज्ञान को प्राप्त हो जाएँगे तो आप मेरे इस कथन पर मुस्कुराएंगे क्योंकि इसको न ही कहा जा सकता है और न ही समझा जा सकता है।"

"समझ गई, देव।" उर्मी ने जब यह कहा तो उसे विचित्र-सा लगा। जो समझा नहीं जा सकता उसको वह नहीं समझी थी। जो समझा जा सकता था उसी को समझकर उसने सारांश प्रस्तुत किया, "एक पूर्णतः मुक्त आत्मा जो भी दृश्य जीना चाहे उस दृश्य के लिए आवश्यक कर्म व इच्छाएँ थोक में धारण कर सकती है; पूरी लिंग कुंजी एक साथ धारण कर सकती है। परंतु जब आत्मा पहले से ही कोई दृश्य जी रही होती है, पहले से ही किसी किरदार से जुड़ी हुई होती है, तब वह किरदार के कर्म और इच्छाओं की अनुकृति करके अपनी लिंग कुंजी बदलने लगती है। यदि किरदार पानी पीने की इच्छा रखता है तो सुप्त आत्मा शून्य सुरंग से उसी इच्छा को धारण कर लेती है। कितना मूर्खतापूर्ण है! आत्मा चाहे तो शून्य सुरंगों में उपलब्ध इच्छाओं के असीमित भंडार में से किसी भी इच्छा को चुन सकती है। परंतु सुसुप्ति की अवस्था में आत्मा पानी पीने जैसी तुच्छ इच्छा अथवा प्यास का दमन करने की पीड़ाजनक इच्छा को धारण कर लेती है। किरदार की अनुकृति करने की इस प्रवृत्ति के कारण आत्मा को कष्टदायक दृश्य जीने पड़ते हैं।"

हनुमान जी ने कहा, "इस बात को स्पष्ट करने के लिए मैं आपको कुछ सादृश्य देता हूँ। परंतु सादृश्यों में जाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि आप उसमें बहते न चले जाएँ। एक सीमा के पश्चात सादृश्य से बाहर निकल आना चाहिए। हम उन रहस्यों की चर्चा कर रहे हैं जो काल-आकाश के पार का बोध कराते हैं। कोई भी सादृश्य आपको आत्म-बोध की पूर्ण यात्रा नहीं करा सकता। कोई भी सादृश्य एक सीमा तक ही प्रकाश डालता है। यदि आप उस सीमा से आगे गए तो सादृश्य आपको भटकाने लगता है। ... पहला सादृश्य खोई हुई भेड़ का है। आपने खोई हुई भेड़ की दंतकथा तो सुनी ही होगी..."

"हाँ, देव।" धनुष्क एक बार फिर खड़ा हो गया और बड़ी रुचि के साथ कहानी सुनाने लगा, "एक जिज्ञासु पर्यटक एक बार एक रहस्यमय घाटी का भ्रमण करने के लिए गया। वह जगह उसके लिए पूरी तरह से नई थी। वह घाटी के रास्ते नहीं जानता था। वह यह भी नहीं जानता था कि कहाँ से अपना भ्रमण प्रारम्भ करे। उसने एक स्थानीय चरवाहे को देखा जो अपनी खोई हुई भेड़ की खोज कर रहा था। पर्यटक ने उसकी खोज में उसका साथ देने का प्रस्ताव किया। इस तरह वह चरवाहे ही सहायता भी कर सकता था और घाटी का भ्रमण करने की अपनी इच्छा को भी पूरा कर सकता था।

"वे दो असाधारण साथी घाटी में घूमते रहे, एक अपनी भेड़ की खोज में और दूसरा उस आकर्षक स्थान के दर्शन के लिए। जब शाम हो गई तो चरवाहे ने भेड़ को पाने की आशा छोड़ दी और पुनः अपने घर चलने लगा। पर्यटक भी उसके साथ ही चला गया और रात में उसी के घर ठहरा।

"अगले दिन चरवाहा अपनी भेड़ों को चराने तथा अन्य कार्य करने के लिए निकला तो पर्यटक भी उसके साथ ही हो लिया। पर्यटक अब घाटी में घूमने के रस का आदी हो चुका था। घाटी के दृश्यों का सौन्दर्य रस ही नहीं अपितु कठिनाइयों का कड़वा रस और थक हारने के पश्चात विश्राम करने का मीठा रस भी व्यसनकारी था। चरवाहे ने पर्यटक को इस अनुबंध पर अपने साथ ले लिया कि वह भेड़ों की देखभाल करने में उसकी सहायता करे।

"पर्यटक को चरवाहे का काम करना तो आता नहीं था। इसलिए उसने चरवाहे की अनुकृति करनी शुरू कर दी। कई दिनों तक ऐसा ही चलता रहा। अंतत वह भूल गया कि वह पर्यटक है, चरवाहा नहीं। वह अपनी वास्तविक पहचान भूल गया। किंवदंती यह है कि वह आज तक उस घाटी में भटक रहा है और उन भेड़ों को चरा रहा है जो उसकी हैं ही नहीं। वह एक चरवाहे के जीवन की सभी कठिनाइयों को झेलता है। उसे ऐसा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। वह सब कुछ छोड़ सकता है और एक बार पुनः एक पर्यटक बन सकता है और किसी अन्य पर्यटक स्थल का आनंद लेने जा सकता है। उसकी अज्ञानता के अलावा उसे कोई नहीं रोक रहा है। यदि भाग्य उसका साथ दे तो कदाचित उसे कोई गुरु मिल जाए जो उसे ज्ञान करा दे कि वह वास्तव में कौन है। अन्यथा वह अनंत काल तक घाटी में भटकता रहेगा।"

चिरंजीवी गुरु ने कहा, "बहुत अच्छे, धनुष्क। इस सादृश्य में पर्यटक आत्मा है और चरवाहा किरदार है। ब्रह्मांड में घटित हो रहे दृश्यों को जीने के लिए एक आत्मा को एक किरदार से जुड़ना पड़ता है। जब तक आत्मा दृश्यों का आनंद ले रही है उसका किरदार के साथ यात्रा करना ठीक है। जैसे ही किरदार उसे प्रतिकूल और कष्टजनक दृश्यों में ले जाने

लगे, उसे तुरंत किरदार को छोड़ देना चाहिए। आपकी आत्मा अर्थात आप यदि वर्तमान किरदार को छोड़ दें तो किरदार मरेगा नहीं। वह आपके आने से पहले भी यहाँ था और आपके जाने के पश्चात भी यहीं रहेगा। जब इस किरदार की यात्रा में पुनः अच्छे दृश्य आने शुरू हो जाएँ तो आप इस किरदार में लौटकर भी आ सकते हैं। ... अब अगला सादृश्य लेते हैं। आप चुंबक पत्थर से तो परिचित होंगे?"

उर्वा ने उत्तर दिया, "हाँ, देव। वह एक काला पत्थर होता है जो लोहे के टुकड़ों को आकर्षित करता है।"

हनुमान जी ने मुट्ठी घुमाकर हवा में एक चक्र बनाया। जब उन्होने अपनी मुट्ठी खोली तो उनकी हथेली में तीन वस्तुएँ दिखाई दीं - एक चुंबकीय पत्थर, एक लोहे का टुकड़ा और बरगद के पेड़ का एक मोटा पत्ता। उनके चेहरे के भावों में अचानक बचपन झलकने लगा। उन्होने चुंबक पत्थर को पत्ते के ऊपर रखा और लोहे के टुकड़े को पत्ते के नीचे चुम्बकीय रूप से संलग्न किया। चुम्बकीय बल पत्ते के आर-पार कार्य कर रहा था। जब उन्होने पत्ते के ऊपर रखे चुंबक पत्थर को घुमाया तो पत्ते के नीचे जुड़ा लोहे का टुकड़ा भी घूमने लगा।

चिरंजीवी हनुमान बोले, "इस पत्थर में चुंबकीय शक्ति है। यह किसी भी लोहे के टुकड़े से जुड़ सकता है। इस सादृश्य में यह चुम्बकीय पत्थर एक आत्मा है और लोहे का टुकड़ा एक किरदार है। आत्मा को किसी किरदार से जुड़े होने के लिए काल-आकाश के भीतर आने की आवश्यकता नहीं है। वह शून्य सुरंगों में रहती है और किरदारों से जुड़ती है।

“एक बार यह चुम्बकीय पत्थर किसी लोहे के टुकड़े से जुड़ जाता है तो एक रोचक घटना घटती है - यह तो ठीक है कि चुम्बकीय पत्थर के घूमने से नीचे लोहे का टुकड़ा भी घूमता है, परंतु इससे उल्टा भी होता है; नीचे लोहे के टुकड़े को घुमाओ तो ऊपर का चुम्बकीय पत्थर भी घूमता है। लोहे के टुकड़े की स्वयं की कोई चुम्बकीय शक्ति न होते हुए भी वह चुम्बकीय पत्थर को घुमा सकता है क्योंकि वे दोनों आपस में जुड़ गए हैं। जब लोहे का टुकड़ा पत्ते के नीचे गति करता है तो ऊपर का चुम्बकीय पत्थर उस गति की अनुकृति करता है। इसी तरह, भले ही स्वेच्छा की सारी शक्ति आत्मा में निहित है, एक बार वह किरदार से जुड़ जाती है तो अपनी शक्ति का प्रयोग करना बंद कर देती है। वह किरदार की इच्छाओं की अनुकृति करना शुरू कर देती है। अर्थात आत्मा की यात्रा का रास्ता तय करने की शक्ति किरदार को मिल जाती है।

"एक गुरु का काम आत्मा को उसकी स्वेच्छा की शक्ति स्मरण कराना है।

"इस सादृश्य से कोई मिथ्या निष्कर्ष मत निकाल लेना। जैसे चुम्बकीय पत्थर लोहे के टुकड़े को नियंत्रित करता है वैसे आत्मा किरदार को नियंत्रित नहीं करती। आत्मा केवल

किरदार की यात्रा की साक्षी बनती है। आत्मा किरदार की यात्रा की पटकथा को थोड़ा-सा भी नहीं बदलती।

“चुम्बकीय पत्थर और लोहे का टुकड़ा एक दूसरे से चुंबकीय बल के कारण बंधे होते हैं। वहीं आत्मा और किरदार को भ्रम के अलावा कोई बल नहीं बाँधता। आत्मा केवल भ्रम और अज्ञानता के कारण किरदार की अनुकृति करती है। यदि आप इन तकनीकी विवरणों को ध्यान रखें तो यह सादृश्य आत्मा और किरदार के बीच स्थापित भ्रम-संबंध की कल्पना करने के लिए बहुत अच्छा है।

"अगला सादृश्य सार्वजनिक परिवहन वाहन का है। क्या आप जानते हैं कि सार्वजनिक परिवहन क्या होता है?"

उर्मी ने उत्तर दिया, "हाँ, देव। एक तय समय सारणी के आधार पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर चलने वाले वे वाहन जिन पर राजा का स्वामित्व होता है! नागरिक थोड़ा-सा किराया देकर उनमें सवारी कर सकते हैं। उन वाहनों का मार्ग पहले से ही तय होता है। यात्री का वाहन पर कोई नियंत्रण नहीं होता ... इस सादृश्य में यात्री आत्मा है और वाहन किरदार। क्या मैं सही हूँ, देव?"

हनुमान जी ने कहा, "हाँ। सार्वजनिक वाहन के चालक को पहले से ही निर्धारित मार्ग तय करना होता है। उसे मार्ग में कई स्थानों पर रुकना पड़ता है। आपको जिस गंतव्य तक पहुँचना है वहाँ ऐसा वाहन आपको सीधे नहीं ले जाएगा, घुमा फिराकर ले जाएगा। आपको ऐसे वाहन में जाने की आवश्यकता नहीं है। आप एक आत्मा हो। आप किरदार के वाहन से उतरकर शून्य सुरंगों के माध्यम से अपने गंतव्य के लिए सीधे उड़ान भर सकती हो।"

उर्वा ने कहा, "देव, आपने कहा कि एक किरदार घूम फिरकर गंतव्य तक जाता है, सीधे नहीं। मेरे मन में यह प्रश्न सदा से उठता रहा है कि किरदार के रास्ते में इतने घुमाव फिराव क्यों होते हैं? उसका रास्ता एक सीधी रेखा क्यों नहीं हो सकता? उदाहरण के लिए, यदि कोई किरदार राजा बनने की सोचता है तो उसे बहुत सारी बाधाओं और विकर्षणों से गुजरना पड़ता है। सफलता की संभावना कदाचित करोड़ों में से एक हैं। कुछ जन संयोग से राजा बन जाते हैं और जो राजा बनने का प्रयास कर रहे हैं वे कुछ और बन जाते हैं। इस दु:खी संसार में सब कुछ इतना जटिल क्यों है?"

हनुमान जी ने उत्तर दिया, "कोई भी किरदार राजा या रानी या अमीर या दरिद्र नहीं बनना चाहता। यदि आप गहराई से निरीक्षण करें तो पाएंगे कि सभी किरदार केवल एक

चीज बनना चाहते हैं - ‘पूर्ण’। वे हर समय अपने आपको अधूरा अनुभव करते हैं। वे उस अधूरेपन को भरना चाहते हैं।

"एक सामान्य नागरिक का मानना है कि राजाओं के पास सब कुछ है। उसका मानना है कि राजा बनने से वह पूर्ण हो जाएगा। एक राजा का मानना है कि जब वह संसार के सारे राज्य जीत लेगा तब वह पूर्ण हो जाएगा। जिसने सभी राज्य जीत लिए हैं वह सोचता है कि जब वह अपने साम्राज्य में शांति स्थापित कर देगा तब वह पूर्ण हो जाएगा।

"अविवाहित किरदारों का मानना है कि विवाह उन्हें पूर्ण कर देगा। विवाहित किरदारों का मानना है कि बच्चों को जन्म देने से वे पूर्ण हो जाएँगे। माता-पिता को लगता है कि वे बच्चों के भविष्य को सुरक्षित करने के पश्चात पूर्ण हो जाएँगे।

"एक बेरोजगार व्यक्ति नौकरी पाने में पूर्णता देखता है जबकि एक नौकरी करने वाला व्यक्ति उच्च पद पाने में। एक भूखे व्यक्ति का मानना है कि भोजन उसे पूरा कर देगा और जिसका पेट भरा हुआ है उसके पूर्णता के बारे में अपने रंगीन विचार है। एक बेसहारा निर्धन कुछ सोने के सिक्के प्राप्त करने में पूर्णता देखता है जबकि एक धनी व्यक्ति दान या आध्यात्मिकता में लिप्त होकर पूर्ण होना चाहता है परंतु नहीं हो पाता।

"इस पल आपको राजा बनने में पूर्णता दिखाई दे सकती है और अगले ही पल आप पूर्ण होने के लिए कोई मनोरंजन ढूँढते हैं। कुछ घंटों पश्चात आपको तन मैला लगता है तो आप सोचते हैं कि स्नान करने से आप पूर्ण हो जाएँगे। फिर स्वादिष्ट भोजन का विचार आने पर आप जंगल में भोजन सामग्री खोजने लग जाते हैं। आप अच्छा भोजन करके पूर्णता अनुभव करने ही वाले होते हैं कि कोई अन्य स्थिति पैदा हो जाती है जिससे आपके पूर्णता के विचार को संकट पैदा हो जाता है। फिर आपको अपनी योजनाएँ बदलनी पड़ती हैं। क्या आपको अब पता चला कि एक किरदार के रास्ते में इतने घुमाव क्यों होते हैं?"

"हाँ, देव।" उर्वा ने कहा, "मैं आपकी बात से एक और निष्कर्ष निकालता हूँ - किसी किरदार का ध्यान जितना अधिक एक ही लक्ष्य पर केंद्रित है उतना ही सीधा उसका रास्ता होगा। किंतु जब दीर्घकालिक लक्ष्यों की बात आती है तो ऐसा करना असंभव है। एक किरदार का निरंतर और अपरिवर्तनीय लक्ष्य है पूर्णता का अनुभव करना। किंतु उसकी पूर्णता की परिभाषा बदलती रहती है जिसके कारण उसके लक्ष्य बदलते रहते हैं। एक क्षण वह प्रधानमंत्री बनना चाहता है तो दूसरे ही क्षण वह मनोरंजन में डूबना चाहता है। ऐसे में रास्ता सीधा कैसे होगा? अब मेरे मन में प्रश्न यह उठता है कि क्या एक किरदार कभी पूर्ण हो सकता है?"

हनुमान जी ने कहा, "एक किरदार पूर्ण नहीं हो सकता क्योंकि वह परिभाषा से ही अधूरा है। किरदार की परिभाषा ही यही है कि वह पूर्ण का एक अंश मात्र है। काल-आकाश यदि एक विशाल रोटी है तो किरदार उसका छोटा-सा टुकड़ा है। काल-आकाश यदि एक विशाल लड्डू है तो किरदार उसकी बूंदी के बराबर भी नहीं है।

"काल-आकाश के पूरे ताने-बाने को एक साथ देखा जाए तो वह केवल एक शुद्ध श्वेत गोला है जिसमें न कोई भावना है, न कोई गति, न कोई गतिविधि। जैसे आत्मा इस गोले के एक अंश अर्थात किरदार के साथ जुड़ी होती है वैसे ही परमात्मा पूरे गोले के साथ जुड़ा है। परमात्मा को वे भिन्न-भिन्न अनुभव नहीं होते जो आत्मा को होते हैं। एक परमात्मा ही सच्चे आनंद में रहता है, सच्ची पूर्णता में रहता है। शेष जो भी गतियाँ और गतिविधियाँ आत्मा अनुभव करती है वे किरदार की अपूर्णता और पूर्ण होने के प्रयास से उत्पन्न होती हैं।

"एक ऐसे धागे की कल्पना कीजिए जिसकी लंबाई असीम है। कल्पना कीजिए कि उस एक धागे से एक ऐसी श्वेत चादर बुनी गई है जो असीम है। बुनाई को बारीकी से देखा जाए तो उसमे जटिल रूपांकन दिखाई देते हैं। कई बार चादर बनाते समय मनुष्य उसमें हाथी, घोड़े, फूल, पत्तियों आदि के विशेष रूपांकन भी डालता है। अर्थात एक सादी चादर जिसमें कोई रूपांकन नहीं डाले गए हैं उसमें हर प्रकार के रूपांकन डाले जाने की संभावना मौजूद है। जैसे श्वेत प्रकाश में इंद्रधनुष के सभी रंग छिपे होते हैं वैसे ही एक सादी चादर में सभी संभव रूपांकन छिपे होते हैं।

“एक सादी चादर की बुनाई को बारीकी से देखा जाए तो धागे रूपांकन बनाते दिखाई देते हैं। उन रूपांकनों की आकृतियों से आप कदाचित परिचित न हों। आपको केवल विभिन्न रेखाएँ एक दूसरे से मिलती दिखाई देंगी। किंतु उनमें हर प्रकार का रूपांकन होने की संभावना अस्तित्व में है।

“यदि पूर्ण रूप से देखो तो वह एक सादी चादर है। यदि उसके किसी अंश को देखो तो आपको भिन्न-भिन्न रूपांकन दिखाई देते हैं। मनुष्य के किरदार भी इस चादर में रूपांकन मात्र हैं। एक बार पुनः दोहरा दूँ, ये रूपांकन आपको इसलिए दिखाई देते हैं क्योंकि आपकी दृष्टि पूर्ण पर नहीं अपितु अंश पर है।

“आप अर्थात आपकी आत्मा की दृष्टि एक स्थिर अंश पर नहीं टिकती। आपकी दृष्टि फिसलती है क्योंकि आप अंश से संतुष्ट नहीं होते। आपकी दृष्टि पूर्ण की खोज करने लगती है। उसी खोज के दौरान आपको उन रूपांकनों में गति और क्रिया दिखाई देती है। दिखाई ही नहीं देती अपितु अनुभव भी होती है। जितना अधिक आप अंश से जुड़े होते हैं उतना गहरा आपका अनुभव होता है। पुनः स्मरण करा दूँ, ये सब रूपांकन और उनकी

क्रियाएँ भ्रम मात्र हैं। सत्य तो यह है कि चादर में न कोई गति है और न ही कोई रूपांकन। आपकी आंशिक दृष्टि के कारण आपको ये सब भ्रमजाल दिखाई देता है जिसको हम संसार कहते हैं।

"एक जागृत आत्मा जानती है कि किरदार कभी पूर्ण नहीं हो सकता क्योंकि वह अधूरा है इसीलिए तो किरदार है। वास्तव में, आत्मा ही काल-आकाश के एक अधूरे भाग को देख रही है, एक अधूरे भाग से जुड़ी हुई है। आत्मा ने अपनी अधूरी दृष्टि से किरदार का भ्रम पैदा किया हुआ है ताकि वह अधूरेपन से जुड़ी भावनाओं को अनुभव कर सके। लेकिन सुप्त आत्मा यह भूल जाती है। सुप्त आत्मा किरदार से इतना जुड़ जाती है कि किरदार की पूर्ण होने की इच्छा को अपनी इच्छा मान लेती है - आप रो क्यों रहे हो, उर्वा?"

उर्वा की आँखों से आंसुओं का झरना फूट पड़ा था। उसने रुँध गले से कहा, "मुझे नहीं पता, देव। और... और मैं पता लगाना भी नहीं चाहता हूँ। पूर्ण और अंश! पूरा और अधूरा! ... मैं वर्षों से अपने चारों ओर बिखरे पड़े संसार का अध्ययन करता आ रहा हूँ। मैं समझने की चेष्टा करता रहा हूँ कि यह सब इतना जटिल क्यों है ... अब समझा कि यह सब जटिल नहीं है! यह बहुत सरल है। आपने इसे इतनी सुंदरता से समझाया है, देव।

"मैं कृतज्ञ हूँ देव, आपके प्रति और उस दरिद्र महिला अनीता के प्रति जिसके दुःख इस ज्ञान वार्ता के आधार बने हैं। अब मैं समझता हूँ कि वह क्यों पीड़ित है। कितना अच्छा होता यदि वह इन वार्ताओं को सुन पाती। मैं मुख्यधारा के सभी मनुष्यों के प्रति कृतज्ञ हूँ। उन्होने उस पिंगल यंत्र का आविष्कार किया है जिसके उदाहरण से मैं लिंग कुंजी के बारे में इतनी स्पष्टता से ज्ञान प्राप्त कर सका। मैं चाहता हूँ कि मुख्यधारा के समाज में रहने वाले सभी भक्तों तक आपकी वाणी पहुँचे। केवल भक्त ही क्यों, सभी सुप्त आत्माओं तक आपकी वाणी पहुँचे, ऐसी मेरी इच्छा है।"

हनुमान जी ने कहा, "अपने आंसुओं को बचाकर रखो, उर्वा। आत्मा द्वारा किरदार को चुनने के विषय पर अभी और प्रकाश डालने की आवश्यकता है। काल-आकाश एक सेब है तो क्या किरदार उसी में से काटा हुआ एक भाग है?"

"नहीं, देव।" उर्वा ने तुरंत उत्तर दिया, "पूर्ण में से कुछ भी नहीं काटा गया है। पूर्ण तो पूर्ण है।"

कुछ युवा मातंग अनिश्चितता में दिखाई दिए। कालंदक ने उनकी ओर से प्रश्न किया, "यदि कुछ नहीं काटा गया है तो कोई किरदार अस्तित्व में कैसे आता है?"

हनुमान जी ने उत्तर दिया, "यह जानने के लिए अनंत चादर के सादृश्य का उपयोग कीजिए। एक अनंत चादर में बुने रूपांकनों का आनंद लेने के लिए आपको उसमें से कोई टुकड़ा काटने की आवश्यकता नहीं है। आप पूरी चादर को देखने के बजाय उसका एक छोटा-सा अंश देखिए। अपनी दृष्टि संकुचित करके चादर के एक छोटे से सीमित क्षेत्र को देखिए। इसी तरह एक आत्मा काल-आकाश के गोले को पूर्ण रूप से देखने की बजाय उसके एक अंश को देख सकती है। जब आत्मा अंश से जुड़ती है तो अधूरेपन से पैदा होने वाले रसों का पान कर सकती है। वर्तमान में आपकी आत्मा ने एक ऐसा अंश चुन रखा है जिसको मानव कहा जाता है। ... एक मानव को परिभाषित करने वाली सीमाओं के बारे में मुझे कौन बता सकता है?"

"देव, मनुष्य केवल एक न्यूनतम और अधिकतम सीमा के भीतर-" उर्मी और उर्वा दोनों एक साथ बोल पड़े थे। उन्होंने एक-दूसरे को देखा, मुस्कुराए और तत्पश्चात उर्मी ने दोनों की ओर से उत्तर दिया, "देव, हम मनुष्य एक न्यूनतम और अधिकतम सीमा के भीतर आने वाली ध्वनि की आवृत्तियों को ही सुन सकते हैं। उदाहरणतः हम उन ध्वनियों को नहीं सुन सकते जो हाथी एक दूसरे से बात करने के लिए निकालते हैं। उनकी ध्वनियों की आवृत्ति इतनी कम है कि हमारे कान उन्हें नहीं सुन सकते। वहीं चमगादड़ आदि जानवरों द्वारा निकाली जाने वाली ध्वनियों की आवृति इतनी अधिक है कि उन्हें भी हमारे कान नहीं सुन सकते। मुझे लगता है कि बिल्लियों के कान भी हमारे कानों से अधिक ध्वनियाँ सुन सकते हैं।”

हनुमान जी ने कहा, "चमगादड़, बिल्लियों और हाथियों से आगे सोचो, उर्मी। आप कल्पना भी नहीं कर सकते कि हमारे आस-पास इस समय कितनी ध्वनियाँ तैर रही हैं। आपका कान एक छोटी-सी श्रृंखला में आने वाली ध्वनियों को ही पकड़ सकता है। यदि मैं आपकी सुनने की क्षमताओं का विस्तार कर दूँ तो क्या होगा?"

उर्मी से पहले उर्वा बोल पड़ा, "मैं तो पागल हो जाऊंगा, देव। मुझे भयानक फुसफुसाहटें और भयानक रुदन सुनाई देने लगेंगे। मैं निश्चित रूप से पागल हो जाऊंगा।"

"हाँ, आपकी श्रवण क्षमता में हल्का-सा विस्तार आपका मानसिक संतुलन बिगाड़ देगा।" हनुमान जी सहमत हुए और बोले, "किंतु बहुत अधिक विस्तार आपको बहरा कर देगा। धातु के कटोरे का बहुत अधिक विस्तार करने का प्रयास करोगे तो क्या होगा? कटोरा सीधा होकर धातु की चादर बन जाएगा। कटोरा कटोरा नहीं रहेगा। कटोरा अपनी पहचान खो देगा। आपका कान एक ऐसे कटोरे की तरह है जो ध्वनियों के समुद्र से ध्वनियाँ भर रहा है। आप प्रति क्षण कितनी ध्वनियाँ भर सकते हैं इस बात की एक सीमा है। वह सीमा ही

आपको मनुष्य बनाती है। इसी तरह आपकी दृष्टि की भी एक सीमा है। यदि मैंने उस सीमा का विस्तार कर दिया तो क्या होगा?"

उर्वा ने उत्तर दिया, "देव, मुझे अपने आसपास विचित्र आकृतियाँ दिखाई देने लगेंगी। भूत... प्रेत... सूक्ष्म तन धारण की हुई आत्माएँ... मुझे कदाचित हवा भी दिखाई देनी शुरू हो जाएगी ... बहुत सारी ऐसी वस्तुएँ दिखाई देनी शुरू हो जाएंगी जो सामान्य रूप से अदृश्य होती हैं। मैं ऐसे दृश्य देखकर कदाचित पागल हो जाऊँगा। और हाँ, यदि मेरी दृष्टि की सीमा का विस्तार अधिक हो गया तो मैं अंधा हो जाएगा क्योंकि प्रति क्षण अत्यधिक प्रकाश मेरे नेत्रों में प्रवेश करने लगेगा।"

चिरंजीवी गुरु ने कहा, "ठीक इसी तरह आपकी गंध और स्वाद की इंद्रियों की भी सीमा है। आप कल्पना भी नहीं कर सकते कि कितने प्रकार की गंधें आपके आसपास तैर रही हैं। शुक्र है कि आपकी नाक केवल एक सीमा के भीतर आने वाली गंधों को ही पकड़ सकती है। इसी तरह आपके मुंह में अनगिनत सूक्ष्म कण हैं जिनका स्वाद आपकी जीभ नहीं पकड़ सकती। यदि आपकी स्वाद की क्षमता को थोड़ा-सा भी बढ़ा दिया जाए तो आप बेचैन हो जाएँगे और अधिक बढ़ा दिया जाए तो स्वाद की इंद्रिय काम करना बंद कर देगी।”

उर्वा बोला, "आपने स्पर्श की क्षमता के बारे में नहीं बताया, देव।"

हनुमान जी ने कहा, "हाँ, आप केवल उन चीजों को स्पर्श से अनुभव कर सकते हैं जिनका घनत्व एक न्यूनतम से अधिकतम सीमा के भीतर आता है। ऐसी वस्तुएँ भी हैं जिनका घनत्व वायु से भी कम है और ऐसी भी वस्तुएँ हैं जिनका घनत्व ठोस से भी अधिक है। आप उन वस्तुओं को स्पर्श से अनुभव नहीं कर सकते। परमाणुओं से भी छोटे ऐसे ठोस कण हैं जो इस समय आपके तन के आर-पार हो रहे हैं परंतु आपको उनकी अनुभूति नहीं हो रही। यदि आपकी स्पर्श की सीमा को इधर-उधर कर दिया जाए तो आप उनको अनुभव करने लगेंगे; आपको ऐसा लगेगा जैसे आप पर सहस्त्रों बाणों की वर्षा हो रही है। वहीं आपके चारों ओर वायु से भी कम घनत्व वाली वस्तुएँ भी हैं। यदि आप उन वस्तुओं का स्पर्श अनुभव करने लग जाएँ तो आप वायु से टकराने लगेंगे। आपको ऐसे अनुभव होंगे जिनके कारण आप निश्चित रूप से अपना मानसिक संतुलन खो बैठेंगे। यदि आपकी स्पर्श क्षमता में बहुत अधिक परिवर्तन कर दिया जाए तो आप क्षमता ही खो बैठेंगे।

"इसी तरह आपकी प्रत्येक क्षमता की न्यूनतम और अधिकतम सीमा है। यही सीमा आपको अपूर्ण बनाती है और यही अपूर्णता ही आपको एक मानव बनाती है। आपका किरदार काल-आकाश के अनंत गोले में से चुना गया एक छोटा-सा अंश है।"

कालंदक ने उत्साह से कहा, "हमारे भोजन के सेवन की भी एक न्यूनतम तथा अधिकतम सीमा है, देव। एक अधिकतम सीमा है जिससे अधिक भोजन करने से हमारा तन बेकार होने लगता है और एक न्यूनतम सीमा है जिससे कम भोजन करने से हमारा तन जीवित नहीं रह सकता है। हमारी तरह अन्य किरदारों की अपनी सीमाएँ हैं। एक हाथी के भोजन के सेवन की सीमा एक चींटी से भिन्न है-"

उर्मी ने कहा, "भोजन से स्मरण आया कि हमारी सहानुभूति की भी एक न्यूनतम तथा अधिकतम सीमा है। हम अन्य जानवरों के साथ सहानुभूति रखते हैं। इसलिए हम उन्हें मारते और खाते नहीं हैं। परंतु हम उनके साथ इतना सहानुभूति भी नहीं रखते कि हम उनके द्वारा उत्पादित शहद और दूध का सेवन बंद कर दें।"

हनुमान जी ने उर्मी के कथन को सही किया, "आपने मातंगों की सहानुभूति को परिभाषित किया है। ऐसे भी मनुष्य हैं जो जानवरों को मारते हैं और खाते हैं और ऐसे मनुष्य भी हैं जो जानवरों के साथ इतनी सहानुभूति रखते हैं कि वे दूध और शहद का सेवन भी नहीं करते। यदि मानव सहानुभूति की इस सीमा को बदल दिया जाए तो क्या होगा? यदि सहानुभूति को और भी कम कर दिया जाए तो आप एक नरभक्षी बन जाएँगे। यदि सहानुभूति को और भी अधिक बढ़ा दिया जाए तो आप एक ऐसे साधु बन जाएँगे जो हवा का उपभोग करना भी पाप समझता है क्योंकि उसमें सूक्ष्म जीव होते हैं; आप स्वेच्छा से आमरण उपवास करके मृत्यु को प्राप्त हो जाएँगे।"

"हमारे चलने की क्षमता की भी एक सीमा है, देव। हमारी एक न्यूनतम और अधिकतम गति है। हम कितना धीमा चल सकते हैं और कितना तेज, निश्चित रूप से इसकी एक सीमा है।" उर्मी बोली।

"उस सीमा से पार पाने के लिए तो मनुष्य वाहनों का निर्माण कर सकता है।" कालंदक ने अपना विचार रखा।

उर्वा ने विचार रखा, "मनुष्यों द्वारा निर्मित यंत्रों और वाहनों की भी अपनी सीमाएँ हैं ... यहाँ तक कि हमारी कल्पनाओं और मान्यताओं की भी एक सीमा होती है। हम एक ऐसे वाहन की कल्पना कर सकते हैं जो अनंत गति के साथ यात्रा करता है। इसका अर्थ यह होगा कि ऐसा वाहन समय का बंदी नहीं है। ऐसा नहीं हो सकता। सब कुछ समय से बंधा हुआ है क्योंकि सब कुछ काल-आकाश की संरचना के भीतर है। केवल ‘शून्य’ समय से मुक्त है।"

"वस्तुएँ समय से मुक्त क्यों नहीं हो सकतीं? यहाँ और अभी समय को रोक दो। वस्तुएँ तो तब भी उपस्थित रहेंगी जब 'समय' नहीं रहेगा। बस गति बंद हो जाएगी। सब

कुछ आगे बढ़ना बंद हो जाएगा। परंतु सब कुछ उपस्थित तो रहेगा ही ना?" यह सोचकर कालंदक विस्मित हुआ।

"गति की परिभाषा क्या है?" उर्मी ने प्रश्न किया और उस पर आगे विचार प्रकट किए, "गति को देख सकने की हमारी क्षमता की भी एक सीमा है। हम उन वस्तुओं की गति नहीं देख सकते जो बहुत तेजी या बहुत धीमे से गतिमान हैं। हमारी आँखें परमाणुओं और उनकी गतियों को नहीं देख सकतीं। तो गति बंद होने का विचार सही नहीं है। गति बंद होने की क्या परिभाषा होगी? यदि बड़ी वस्तुएँ गति करना बंद भी कर दें तो भी उनके भीतर के अणुओं और परमाणुओं में गति जारी रहेगी। और हम उन वस्तुओं की कल्पना भी नहीं कर सकते जो परमाणुओं से भी छोटी हैं! मनुष्य उन वस्तुओं को देखने के लिए उपकरणों का निर्माण भी नहीं कर सकता जो इतनी बड़ी अथवा इतनी छोटी हैं कि हमारी कल्पना से भी बाहर हैं।"

उर्वा ने अपनी मंगेतर के तर्क का समर्थन किया, "और समय के रुक जाने की क्या परिभाषा है? समय की एक इकाई अनिश्चित रूप से छोटी हो सकती है। समय के रुकने से हमारा अर्थ क्या यह है कि एक पल एक वर्ष की तरह गुजरे और एक दिन सदियों की तरह? गति तो तब भी होगी परंतु हम उसको भाँपने में सक्षम नहीं होंगे।”

"ऐसे परिदृश्य में तो वस्तुएँ वैसी नहीं रहेंगी जैसी अब हमें दिखाई देती हैं। हम कुछ और देखेंगे, वस्तुएँ नहीं। कदाचित धुंधलापन?" उर्मी ने उर्वा की ओर देखते हुए कहा। उसने आशा की थी कि उर्वा सहमति में अपना सिर हिलाएगा। परंतु उर्वा के चेहरे पर कोरे भाव थे। उर्मी ने अपने कथन की व्याख्या की, "क्योंकि प्रकाश की किरणों को हमारी आंखों तक पहुँचने में समय लगता है और तत्पश्चात मस्तिष्क उन किरणों से उपलब्ध जानकारी को संसाधित करने में समय लेता है। समय धीमा हो जाएगा तो यह प्रक्रिया भी धीमी हो जाएगी। यदि प्रक्रिया पर प्रभाव पड़ेगा तो प्रक्रिया से बनने वाली अंतिम छवि वैसे की वैसी कैसे रह सकती है? वस्तुएँ अलग तरह से दिखाई देने लगेंगी।"

उर्वा के मस्तिष्क में दीपक जला। वह उल्लासित स्वर में बोला, "और यदि समय पूरी तरह न रहे तो वस्तुएँ भी नहीं रहेंगी। समय ही नहीं होगा तो प्रकाश की किरणें हमारी आंखों तक कभी नहीं पहुँच पाएंगी। मस्तिष्क उनको संसाधित करने की प्रक्रिया को कभी पूरा नहीं करेगा। इसका अर्थ है कि हम कुछ भी नहीं देख पाएंगे। देखना ही क्यों, हमारी श्रवण तथा स्पर्श आदि की क्षमताओं का भी यही हाल होगा। हम वस्तुओं को किसी भी तरह से अनुभव करने में सक्षम नहीं होंगे। हम एक खाली चित्रपट देखेंगे, मात्र एक श्वेत पटल। अर्थात हम आकाश के श्वेत द्रव को देखेंगे, उसके भीतर की वस्तुओं को नहीं। इसका अर्थ है-"

"इसका अर्थ है कि समय के बिना हम केवल आकाश के द्रव को देख सकते हैं, उसमे उभरने वाली वस्तुओं को नहीं। या यूं कहें कि जब हम समय में चलते हैं तभी हमें आकाश के द्रव में वस्तुएँ उभरती दिखाई देती हैं।" उर्मी ने उर्वा के वाक्य को पूरा करने का प्रयास किया।

उर्वा ने कहा, "हाँ। यहाँ तक कि एक स्थिर वस्तु को देखने के लिए भी समय की आवश्यकता है। समय के बिना मैं अंधा, बहरा, गूंगा और इंद्रियों से रहित हूँ; मैं कुछ भी नहीं देख सकता, मैं कुछ भी नहीं सुन सकता, मैं कुछ भी अनुभव नहीं कर सकता। समय के बिना मैं केवल कोरा आकाश का श्वेत द्रव्य देखता हूँ। कदाचित उसको द्रव्य अथवा श्वेत कहना भी उचित नहीं है। वह कुछ भी नहीं है और संभवतः आकाश के बिना समय भी कुछ नहीं है। काल-आकाश दोनों को एक साथ अनुभव करने से ही सृष्टि दिखाई देती है। अलग-अलग वे शून्य ही हैं। इसका अर्थ है कि शून्य सुरंगें और आकाश और समय तीनों को एक साथ देखें तो ब्रह्मांड शून्य है। तो क्या श्वेत गोले के रूप में ब्रह्मांड की कल्पना केवल नए साधकों के लिए है?"

हनुमान जी मुस्कुराए। उर्वा ने बातों-बातों में उस सत्य को अनुभव कर लिया था जो गुरु सीधे-सीधे नहीं बताते। उस सत्य पर साधक को स्वयं पहुँचना होता है।

अन्य मातंगों को समझ में नहीं आया कि उर्वा क्या कह रहा था। वह परम सत्य समझने के लिए नहीं होता, अनुभव करने के लिए होता है।

अंततः हनुमान जी ने सभी मातंगों के लाभ के लिए शब्द बोले, "समय के बिना आकाश असीमित है। यदि ज्यामितिक रूप से कल्पना करना चाहते हैं तो कहेंगे कि समय के तार आकाश के द्रव को छोटे हिस्सों में बांटते हैं। उन्ही हिस्सों को किरदार कहा जाता है। एक आत्मा को विभिन्न प्रकार के अनुभव लेने के लिए एक किरदार अर्थात आकाश के एक अंश के साथ जुड़ना पड़ता है। कैसे? सरल है। बस समय के तारों पर फिसलना शुरू कर दो। समय के तार मकड़जाल की तरह पूरे आकाश के द्रव में फैले हुए हैं। 'मनुष्य' नामक अंश से जुड़ने के लिए आत्मा को समय के सात तारों पर फिसलना पड़ता है।

"दूसरे शब्दों में, मनुष्य और कुछ नहीं अपितु समय के सात आयामी सांचे में उपस्थित आकाश है। जैसे एक खाली जगह में चार दीवार और एक छत बना देने से एक घर बनता है, आकाश के चारों ओर समय की सातदीवारी खींचने से मनुष्य बना है।

"इस तरह मनुष्य काल-आकाश का एक छोटा-सा अंश है। अन्य अंशों की तरह यह अंश भी पूर्ण होने का प्रयास करता है। अंश के अधूरेपन और पूर्ण होने की प्रवृति से विविध अनुभव पैदा होते हैं। आत्मा अंश के साथ जुड़कर उन्ही अनुभवों का रसपान करती है।

"कोई भी दो मनुष्य एक जैसे नहीं होते। कोई भी दो सप्त-आयामी अंश एक जैसे नहीं होते। हर अंश भिन्न है क्योंकि अंश समय से परिभाषित है; अंश का अपना अतीत और भविष्य है। अंश का अपना इतिहास है जो उसके पूर्ण होने के प्रयासों से भरा पड़ा है। उसके इतिहास की जानकारी पहले से ही शून्य सुरंगों में उपस्थित है। उसी जानकारी को लिंग कुंजी कहते हैं।

"अंश से जुड़ने के लिए आत्मा को उसकी लिंग कुंजी धारण करनी पड़ती है। उसमे कोई कठिनाई वाली बात नहीं हैं। जैसे ही आत्मा समय के तारों पर सवार होती है, उन तारों द्वारा परिभाषित अंश की लिंग कुंजी अपने आप आत्मा के ऊपर लद जाती है।"

धनुष्क ने कहा, "मैं प्यासा हूँ, देव। मुझे क्या करना चाहिए? यदि मैं पानी पीता हूँ तो अपने तन की इच्छा की अनुकृति करता हूँ। यदि मैं अपनी प्यास का दमन करता हूँ तो अपने मन की इच्छा अपने ऊपर लेता हूँ। दोनों ही स्थितियों में मेरा किरदार मेरी आत्मा का अगला दृश्य चुनेगा। मेरी आत्मा किरदार से प्रभावित हुए बिना स्वतंत्र रूप से अगला दृश्य कैसे चुन सकती है? मैं अपने किरदार से दूरी कैसे बना सकता हूँ?"

हनुमान जी ने पूछा, "मन की बात छोड़ो, तन से अलग होना तो बहुत सरल है, है ना?

"हाँ, देव।" धनुष्क बोला, "मैं इस समय भी अपने तन से तो लगभग अलग ही हूँ। मैं अपने तन को पानी के लिए तरसते हुए देख रहा हूँ। परंतु जैसे ही तन से अलग होता हूँ, मन मुझे जकड़ लेता है। मेरा मन इस समय तन की पानी पीने की इच्छा का दमन कर रहा है। इसके चलते मेरा मन कितना सक्रिय है इसकी मैं शब्दों में व्याख्या नहीं कर सकता। विचार पागल मधुमक्खियों की तरह भिनभिना रहे हैं..."

हनुमान जी ने कहा, "आपका तन अधूरा है और पूर्ण बनने के लिए प्रयासरत है। इस समय वह पानी पीने में पूर्णता देख रहा है। उसके आस-पास बहुत सारे पदार्थ हैं परंतु उसको उनमें से अभी केवल पानी चाहिए। उसकी पांचों इंद्रियों की पहुँच में जो भी पदार्थ है, वह उनमें से केवल इस नारियल पानी को अपने में जोड़ना चाहता है। हर पल आपका तन या तो अपने भीतर कुछ जोड़ना चाहता है या घटाना चाहता है ताकि पूर्ण हो सके।"

उर्वा ने कहा, "एक तन कभी पूर्ण नहीं हो सकता, देव। तन को कुछ न कुछ उपभोग या कुछ त्यागने की निरंतर आवश्यकता पड़ती रहती है। यदि अब यह पानी पी लेता है तो एक दो घंटे पश्चात पुनः प्यासा हो जाएगा। अब श्वास लेना चाहता है तो अगले ही पल श्वास छोड़ना चाहता है। बाल, नाखून और मृत त्वचा आदि पदार्थ तन से हर पल बाहर आकर अलग हो रहे हैं। त्वचा द्वारा लगातार प्रकाश की किरणों को अवशोषित किया जा

रहा है। एक पूर्ण तन जैसी कोई चीज नहीं है। इस बात को तो अज्ञानी मनुष्य भी समझते हैं।"

"तन को कौन समझता है?" हनुमान जी ने पूछा और तत्पश्चात स्वयं ही उत्तर दिया, "आपका मन। आपका मन जानता है कि तन कैसे काम करता है। मन जानता है कि आपके तन के पूर्ण बनने के प्रयास मूर्खतापूर्ण हैं। यही कारण है कि आपके लिए तन से अलग होना सरल है। जब तन प्यासा होता है तो आप आसानी से कह सकते है, 'हे तन, प्यास तुझको लगी है, मुझे नहीं।' और तत्पश्चात जब तन पानी पी रहा होता है तब भी आप तन से अलग रह सकते हैं।

"आपका मन आपके तन द्वारा किए जा रहे पूर्ण होने के प्रयासों को उजागर करता है। परंतु मन भी तो पूर्ण होने के प्रयास करता है। आपके मन को कौन उजागर करेगा? आपका मन समझता है कि तन कैसे काम करता है, परंतु यह कौन समझेगा कि मन कैसे काम करता है? आपका मन आपको तन से अलग होने में सहायता करता है। आपको मन से अलग होने में सहायता कौन करेगा?"

"मन वास्तव में क्या है?" उर्मी ने सोचा।

"मन अर्थात सिर! मन अर्थात मस्तिष्क! और क्या?" कालंदक ने अनुमान लगाया।

हनुमान जी ने कहा, "मस्तिष्क मन नहीं है। मस्तिष्क आपके तन और मन के बीच मात्र एक संचार सेतु है। मन अदृश्य और अमूर्त है। मैं आपको दिखाता हूँ कि मन यदि दिखाई दे तो कैसा दिखेगा - उर्वा, खड़े हो जाओ और पवित्र आग में प्रवेश करो।"

सभी मातंग धक से रह गए। परंतु उर्वा आग में प्रवेश करने के विचार से तनिक भी भयभीत नहीं हुआ। जब चिरंजीवी गुरु उसकी रक्षा के लिए वहाँ उपस्थित थे तो डरने की कोई बात नहीं थी। वह तुरंत खड़ा हुआ और अपनी दृष्टि अपनी निर्भयता के स्रोत श्री हनुमान जी पर टिकाए रखते हुए पवित्र अग्नि में शान से प्रवेश कर गया।

आश्चर्य यह था कि उसे अपने पैरों के नीचे बर्फ जैसा कुछ अति शीतल अनुभव हुआ, जलती टहनियाँ नहीं। ठंड की अनुभूति उसके पैरों से रीढ़ की हड्डी की यात्रा करते हुए उसके सिर में पहुँच गई और उसका सिर सुन्न पड़ गया। अब उसे अपनी गर्दन से ऊपर कुछ भी अनुभव नहीं हो रहा था।

उसके साथी मातंगों के मुंह आश्चर्य से खुले के खुले रह गए। वे जैसे श्वास लेना तक भूल गए थे। उन्होने जो देखा वह उनकी कल्पना से भी बाहर था। उर्वा का सिर एक खिले हुए कन्दपुष्प की तरह खुल गया था। उसके मस्तिष्क की चार मांसपेशियाँ चार अलग-

अलग दिशाओं में ऐसे फैल गई थीं जैसे किसी पेड़ की जड़ें फैलती हैं। और उसी क्षण चार दिशाओं में चार झिलमिलाती हुई आकृतियाँ प्रकट हो गई थीं। चारों आकृतियाँ उर्वा की भौतिक काया के आकार की ही थीं। उर्वा के मस्तिष्क से निकली चार मांसपेशियाँ एक सेतु का कार्य कर रही थीं - उर्वा की भौतिक काया तथा उसकी चार मानसिक कायाओं के बीच का सेतु।

अध्याय 10

अदृश्य चार

जब उर्वा अपने साधारण स्वरूप में लौट आया तब हनुमान जी ने मानसिक चतुर्काया का वर्णन किया, "मानव मन वास्तव में चार अलग-अलग कायाओं का समूह है जो अमूर्त पदार्थ से बनी होती हैं। जिस प्रकार आपकी भौतिक काया श्वास लेती और छोड़ती है, ठीक उसी प्रकार आपकी मानसिक कायाएँ विचार ग्रहण करती हैं और छोड़ती हैं। आपकी मानसिक चतुर्काया की भ्रमकारी शक्ति इस तथ्य में निहित है कि वे अदृश्य और अज्ञात हैं। जब वे कुछ करती हैं तो आपको, अर्थात आपकी आत्मा को, लगता है कि आप कर्ता हैं। जब वे कुछ इच्छा करती हैं तो आप उन इच्छाओं की इस तरह अनुकृति करते हैं जैसे कि वे आपकी ही इच्छाएँ हों। अदृश्य चतुर्काया के कारण उत्पन्न यह भ्रम तब तक सहायक है जब तक कि आप इस संसार के दृश्यों में निहित भावनाओं का रस पीना चाहते हैं। परंतु एक दृश्य के पश्चात दूसरा दृश्य आता है और दूसरे के पश्चात तीसरा। जब दुःख भरे दृश्य आने लग जाएँ और आप उनसे बाहर निकलना चाहें तो यही भ्रम समस्या बन जाता है। इस भ्रम को तोड़ने के लिए अदृश्य चतुर्काया को दृष्टिगोचर होना पड़ेगा ताकि जब वे कोई इच्छा करें तो आप अर्थात आपकी आत्मा उनकी अनुकृति न करे।"

उर्मी ने पूछा, "देव, जब आपने हमें पूरी तरह से प्रशिक्षित कर दिया होगा तो क्या हम अपनी मानसिक चतुर्काया को उतनी ही स्पष्टता से देख पाएंगे जितनी स्पष्टता से हम अपनी भौतिक काया को देखते हैं?"

हनुमान जी ने पूछा, "जब आप अपना भौतिक तन देख रहे होते हैं तो देखने की क्रिया कौन करता है?"

उर्मी ने उत्तर दिया, "मेरा मन, देव।"

"और जब आप अपने मन और अपने विचारों को देख रहे होते हैं तब देखने की क्रिया कौन करता है?

"आत्मा?" उर्मी ने अनिश्चित रूप से कहा।

हनुमान जी ने कहा, "आत्मा जो कुछ भी देखती है, मन के माध्यम से ही देखती है क्योंकि जब आत्मा मन से मुक्त होती है तब शून्य होती है। … इसलिए मैं पुनः पूछता हूँ। तन को देखने की क्रिया मन करता है तो मन को देखने की क्रिया कौन कर सकता है?"

उर्मी ने अनुमान लगाया, "मन स्वयं, देव?"

हनुमान जी ने कहा, "हाँ, आप अपनी अदृश्य मानसिक चतुर्काया को एक दूसरे को उजागर करने पर बाध्य कर सकते हैं। ठीक उसी तरह जिस तरह वे चारों मिलकर भौतिक काया को उजागर करती हैं। मन शक्तिशाली है परंतु उजागर होने के पश्चात बड़े ही पूर्वानुमेय ढंग से काम करता दिखाई पड़ता है।

"मेरे शब्द आपकी मानसिक चतुर्काया को इस तरह से प्रशिक्षित करेंगे कि वे एक-दूसरे को उजागर करना शुरू कर देंगी और अपनी इच्छाओं का उत्तरदायित्व स्वयं लेना शुरू कर देंगी। ऐसा होने के पश्चात आत्मा जाग जाएगी और उसका रुख कुछ ऐसा होगा, 'हे मेरी भौतिक काया और मानसिक चतुर्काया! जैसा कि आप सहमत हैं, जो इच्छा आपने अभी व्यक्त की है वह मेरी नहीं है। मैं इस इच्छा की अनुकृति नहीं करूंगी। यह मुझे स्वीकार्य नहीं है कि आप मेरा अगला दृश्य तय करें। आप अपनी इच्छा अपने पास रखिए। मैं चली किसी अन्य किरदार से जुड़कर अपना अगला दृश्य जीने।'"

धनुष्क की प्यास अब लगभग मर चुकी थी। वह बोला, "देव, मेरा तन पानी पीने की इच्छा रखता है। दूसरी ओर, मेरा मन मेरी प्यास का दमन करने की इच्छा रखता है। तन और मन एक ही किरदार का भाग हैं। फिर उनकी परस्पर विरोधी इच्छाएँ क्यों होती हैं? आपने बताया कि एक किरदार परिभाषा से ही अधूरा है और पूर्ण बनना चाहता है। तो किरदार की भौतिक काया और मानसिक चतुर्काया को मिलकर सद्भाव से पूर्ण होने के प्रयास करने चाहिए? पांचों को एक दल के रूप में काम करना चाहिए।"

हनुमान जी ने कहा, "यह एक भटका हुआ दल है जो अप्राप्य लक्ष्य को पाना चाहता है। उनमें से कोई नहीं जानता कि पूर्ण क्या है। वे जान ही नहीं सकते। एक अंश कभी भी पूर्ण को नहीं जान सकता। इसलिए उनके पास पूर्णता के बारे में अलग-अलग दृष्टिकोण हैं। किरदार को पूर्ण करने के लिए वे पांचों अलग-अलग मार्ग चुनते हैं। वे पांचों ऐसे पांच अनजान जनों की तरह हैं जो अटूट जंजीरों से एक दूसरे से बंधे हुए हैं और एक अज्ञात क्षेत्र में एक रहस्यमय खजाने की खोज कर रहे हैं। खजाना कहाँ मिल सकता है, इसके बारे में पांचों के अलग-अलग विचार और अनुमान हैं। पांचों को अलग-अलग दिशाओं में खजाना दिखाई देता है। यही कारण है कि वे अलग-अलग इच्छाएँ पैदा करते हैं। हर डग पर इच्छाएँ आपस में टकराती हैं और सबसे शक्तिशाली इच्छा की जीत होती है। जीतने वाली इच्छा यह निर्धारित करती है कि वे पांचों अगला डग किस दिशा में बढ़ाती हैं। या यूं कहें कि पांचों में से जो भी सबसे शक्तिशाली होता है वही अन्य चार को अपनी इच्छा की ओर घसीट लेता है।"

"देव, यह तो मुझे पता है कि मेरी भौतिक काया इस समय पानी पीने की इच्छा कर रही है। परंतु प्यास का दमन करने की इच्छा मेरी मानसिक चतुर्काया में से किसकी इच्छा है?" धनुष्क ने पूछा।

हनुमान जी ने कहा, "आपको शीघ्र ही पता चल जाएगा। मानसिक चतुर्काया के नाम इस प्रकार हैं - बुद्धि काया, विवेक काया, संस्कार काया और चित्त काया। मैं इन चारों को 'काया' इस बात पर बल देने के लिए कह रहा हूँ कि ये भौतिक काया की तरह ही हैं। अंतर केवल इतना है कि ये चारों अदृश्य और अमूर्त पदार्थ से बनी हैं। एक बार यह बात आपको पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है तो आप 'काया' शब्द छोड़ सकते हैं और उन्हे केवल बुद्धि, विवेक, संस्कार और चित्त कह सकते हैं।

"भौतिक काया, जैसा कि आप जानते हैं, मूर्त पदार्थ से बनी है और अपनी इंद्रियों की सीमा के भीतर आने वाले मूर्त पदार्थों के साथ क्रिया करती है। जब आप आम का फल देखते हैं या सूंघते हैं तो आपको आम खाने की इच्छा होती है। वह आपकी भौतिक काया की इच्छा है। भौतिक काया के दृष्टिकोण से ‘पूर्ण’ का अर्थ है एक ऐसी आदर्श और अमर काया जिसे भूख प्यास नहीं लगती और जो कभी बूढ़ी अथवा रोगी नहीं होती। भौतिक काया पदार्थों को दो श्रेणियों में वर्गीकृत करती है - एक वे पदार्थ जो उसे बेहतर बनाकर उसे पूर्णता की ओर ले जाते हैं इसलिए उन पदार्थों का सेवन किया जाना चाहिए। दूसरा वे पदार्थ जो उसे बदतर बनाते हैं और उसे पूर्णता से दूर ले जाते हैं इसलिए उनका त्याग किया जाना चाहिए। आपकी भौतिक काया का पूरा तंत्र प्रथम श्रेणी के पदार्थों का उपभोग करने और दूसरी श्रेणी के पदार्थों का त्याग करने की इच्छा पर आधारित है।”

उर्वा ने मुस्कुराते हुए कहा, "देव, मेरी भौतिक काया स्वादिष्ट शहद से भरी बाल्टी पीने की इच्छुक है। क्या मेरी काया सच में मानती है कि ऐसा करने से वह अमर हो जाएगी? होता इसके विपरीत है। इतना शहद उसे मृत्यु के समीप ले जा सकता है।"

उर्मी ने कहा, "मुझे लगता है कि मानसिक चतुर्काया को ऐसा करने से होने वाली हानि का पता है। इसलिए वे चारों मिलकर इस इच्छा का विरोध करती हैं। उन चारों की संयुक्त इच्छा के सापेक्ष भौतिक काया की शहद पीने की इच्छा कमजोर पड़ जाती है।"

"क्या इसका अर्थ यह है कि यदि मानसिक चतुर्काया न होतीं तो भौतिक काया एक दिन में स्वयं को नष्ट कर लेती? क्या भौतिक काया की वहीं दुर्गति होती जो शहद में गिरकर दम तोड़ने वाली एक चींटी की होती है?" उर्वा ने विचार किया।

हनुमान जी ने कहा, "नहीं। आप एक बार में कितना शहद खा सकते हैं? भौतिक काया स्वयं को हानि नहीं पहुँचाना चाहती है। पूर्ण होने की आशा में पर्याप्त शहद का सेवन

करने के पश्चात आशा कहीं ओर टिक जाएगी। कदाचित मीठा खाने के पश्चात कुछ नमकीन खाने में पूर्णता दिखाई देगी। आपकी भौतिक काया यदि कुछ अनावश्यक अथवा हानिकारक पदार्थ खा लेती है तो उसे त्याग भी सकती है। और वैसे भी, मानसिक चतुर्काया के बिना तो आप इतना शहद प्राप्त ही नहीं कर पाएंगे। शहद खोजने और तोड़ने के लिए मन की आवश्यकता होती है। इसलिए ये अटकलें लगाना अनुचित है कि मानसिक चतुर्काया के बिना भौतिक काया मर जाएगी। प्रायः होता यह है कि आपकी मानसिक चतुर्काया द्वारा उत्पन्न इच्छाएँ ही आपकी भौतिक काया को हानि पहुँचाती हैं। पेड़ों को देखो। उनका मानसिक अस्तित्व लगभग न के बराबर होते हुए भी वे मनुष्यों की तुलना में बहुत लंबे समय तक जीते हैं।"

उर्वा ने अनुमान लगाया, "कदाचित अत्यधिक मात्र में शहद खाने की इच्छा पूरी तरह से मेरी भौतिक काया की इच्छा नहीं है। इस इच्छा के पीछे मेरी मानसिक चतुर्काया का प्रभाव भी हो सकता है।"

हनुमान जी ने कहा, "हाँ, अन्य प्रभावों से मुक्त एक भौतिक काया कुछ भी आत्म-विनाशकारी इच्छा नहीं करती। आपकी भौतिक काया वर्तमान में जीती है और अपनी इंद्रियों की पहुँच में उपस्थित वस्तुओं को दो श्रेणियों में वर्गीकृत करती है - एक वे वस्तुएँ जिनको ग्रहण करना चाहिए और दूसरा वे वस्तुएँ जिनका त्याग करना चाहिए। यह वर्गीकरण पूर्ण बनने की इच्छा पर आधारित है। यद्यपि आपकी भौतिक काया को यह नहीं पता कि पूर्ण क्या है। पूर्ण बनने के उसके सभी प्रयास व्यर्थ हैं। आपकी आत्मा को उन प्रयासों से कोई लेना देना नहीं है। आत्मा को तो उन अनुभवों में रुचि है जो उन प्रयासों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं।"

"आह! अब मुझे वह रहस्य समझ आया।" उर्वा ने अपनी मंगेतर उर्मी की ओर देखते हुए कहा।

"कौन सा रहस्य?" उर्मी ने अपनी भौंहें उठाई।

"कुछ नहीं।" उर्वा अपनी दृष्टि वापिस चिरंजीवी गुरु की ओर करते हुए बोला। परंतु हनुमान जी ने अपने शिष्यों को एक विचारशील ठहराव उपलब्ध कराने के लिए अपनी आँखें बंद कर ली थीं। वे चाहते थे कि उनके शिष्य भौतिक तन के ज्ञान को पूरी तरह से अवशोषित कर लें। उर्मी और उर्वा ने इस ठहराव का पूरा लाभ उठाया। उनके बीच एक मूक वार्ता चली जो कुछ इस प्रकार थी -

"उस रहस्य की गुत्थी अंततः सुलझ ही गई।"

"कौन-सा रहस्य? मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा।"

"जनन की इच्छा। बच्चों को जन्म देने की इच्छा।"

"मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा।"

"आपको सब समझ आ रहा है, उर्मी। आप ही तो विवाह के लिए इतनी उत्सुक हो।"

"जनन वंश बढ़ाने के लिए आवश्यक है। मातंग परंपरा का भविष्य इसमें निहित है। इसमें शारीरिक कुछ भी नहीं है।"

"हो सकता है पूरी तरह शारीरिक न हो। हो सकता है यह भौतिक काया और मानसिक चतुर्काया की संयुक्त इच्छा हो। परंतु भौतिक काया अवश्य इसमें संलग्न है। आप इससे इनकार नहीं कर सकती। हम एक-दूसरे के प्रति आकर्षण क्यों अनुभव करते हैं? क्योंकि मेरी भौतिक काया आपके साथ मिलन में अमर होने की संभावना देखती है और आपकी भौतिक काया मेरे साथ मिलन में। मैं आपके बीज की ओर आकर्षित होता हूँ और आप मेरे बीज की ओर।"

"आपको किसने बताया कि मैं आपकी ओर आकर्षित होती हूँ? देवताओं ने हमें मातंग कबीले का नेतृत्व करने और आवश्यकता पड़ने पर प्रजनन करने के लिए चुना है। देवता ही तय करेंगे कि हमें प्रजनन करना चाहिए या नहीं।" उर्मी ने आँखें तरेरते हुए मूक वार्ता को आगे बढ़ाया।

"ठीक है, हमारे बारे में भूल जाओ। मानवों के बारे में भी भूल जाओ। कोई भी नर और मादा एक-दूसरे की ओर आकर्षित क्यों होते हैं? यदि यह मन के उच्च संकायों से उत्पन्न इच्छा होती तो जानवर प्रजनन न करते। यह एक शारीरिक इच्छा है, मेरी बात मान लो।"

उर्मी ने सिर हिलाया।

उर्वा ने आगे विचार पैदा किए जिनसे मूक वार्ता आगे बढ़ी, "मेरी समझ ये है - पहले भौतिक काया स्वयं ही विकसित होकर स्वयं को अमर बनाना चाहती है। परंतु जब ऐसा करना असंभव जान पड़ता है तो चिरंजीवी होने के वैकल्पिक साधनों की खोज शुरू होती है। काया की उस अवस्था को यौवन कहते हैं। भौतिक काया उन बीजों को उत्पन्न करना शुरू कर देती है जो उसके जैसी ही काया अर्थात संतान पैदा कर सकते हैं; संतान उसके मरने के पश्चात भी जीवित रहती है। नर को अपने बीजों के लिए अनुकूल पर्यावरण अर्थात

गर्भ की खोज रहती है। इसी कारण नर-मादा के बीच आकर्षण उत्पन्न होता है। मैं इतने वर्षों से इस आकर्षण को समझने की चेष्टा कर रहा था। अब जबकि मैंने यह सब समझ लिया है, आकर्षण कम हो गया है।"

"आप अपनी कहो, उर्वा। मेरी ओर से मत बोलो। मैं कभी आकर्षित नहीं थी।"

"ठीक है, ठीक है। चलो, अपने ऊपर बात नहीं लाते हैं। अन्य नर और मादाओं के बारे में बात कर लेते हैं। वे स्वयं की संतान होने पर भी संतुष्ट नहीं होते। वे उसके पश्चात संतानों की भी संतान हों, यह इच्छा करने लगते हैं। वे पूरी तरह से यह सुनिश्चित करना चाहते हैं कि उनकी मृत्यु के पश्चात उनका कुछ अंश शेष रहे और पूर्ण की खोज करता रहे। विचित्र बात है कि भौतिक काया भी अपने भविष्य के बारे में सोचती है!"

"भौतिक काया भविष्य के बारे में नहीं सोच सकती।" उर्वा के मन में एक रहस्यमय स्वर गूंजा।

यह स्वर उर्मी के मन में भी गूंजा था। उसके चेहरे पर विजयकारी भाव आ गए। उसके मन में आए इस विचार ने मूक वार्ता को आगे बढ़ाया, "देखा। सब कुछ भौतिक नहीं है, उर्वा।"

"मैं अब भी कहूँगा कि नर के बीज के मादा तक पहुँचने की इच्छा विशुद्ध रूप से भौतिक है। मैं इस बात से सहमत हूँ कि मन भविष्य के बारे में सोचता है, तन नहीं। तो फिर मन का कोई अपना कारण होता होगा जो स्त्री और पुरुष के बीच आकर्षण को बढ़ाता है। परंतु शारीरिक आकर्षण अलग है ... तन उस बीज को आरोपित करना चाहता है जो उसे अमर बना सके। यह शुद्ध और सरल है ... इसके लिए भविष्य के बारे में गणना करने की कोई आवश्यकता नहीं है।"

"एक इच्छा का समर्थन आपकी पाँच कायाओं में से एक से अधिक कायाएँ भी कर सकती हैं।" ये शब्द हनुमान जी के थे। उन्होने अपनी आँखें खोल ली थीं। चूंकि ये शब्द उर्वा और उर्मी के बीच चल रही मूक वार्ता के उत्तर में कहे गए प्रतीत हुए, उर्वा और उर्मी चौंक पड़े। हनुमान जी आगे बोले, "दूसरे शब्दों में, किसी एक इच्छा के समर्थन में आपकी एक से अधिक कायाएँ साथ आ सकती हैं। परंतु समर्थन के पीछे उन सबके कारण निश्चित रूप से भिन्न होंगे। एक बार यदि आप सभी कायाओं के बारे में जान लेंगे तो आप इसे बेहतर ढंग से समझ पाएंगे-"

"बुद्धि काया।" उर्वा ने उत्साह और उत्सुकता में हनुमान जी को बीच में ही टोक दिया था। वह बोला, "हमें बुद्धि काया के बारे में बताइये, देव। मैं बहुत उत्साहित हूँ। ऐसा

लगता है जैसे मैंने अपने जीवन के पिछले दो दशकों की तुलना में पिछले दो घंटे में अधिक ज्ञान प्राप्त किया है। बुद्धि काया किरदार को कैसे पूर्ण करना चाहती है?"

"अतीत को सुधारने और भविष्य को सुरक्षित करने का प्रयास करके।" हनुमान जी ने कहा, "आपकी बुद्धि काया भविष्य की कल्पना करती है और अतीत की स्मृतियाँ खंगालती है। जब आप अपराधबोध से अथवा अतीत की गलतियों को सुधारने के लिए कुछ इच्छा करते हैं तो उस इच्छा के पीछे निश्चित रूप से आपकी बुद्धि काया है। जब आप अपने भविष्य को सुरक्षित करने के लिए कुछ करने की इच्छा रखते हैं या कुछ ऐसा करने की इच्छा रखते हैं जिसका परिणाम भविष्य में मिलेगा तो वह बुद्धि काया की इच्छा है। तो 'पूर्ण' के बारे में बुद्धि काया की अवधारणा है एक ऐसा वर्तमान जिसके साथ एक आदर्श अतीत और आदर्श भविष्य संलग्न है। दूसरे शब्दों में, बुद्धि तब आपको पूर्ण मानेगी जब आपके अतीत में सुधारने के लिए कुछ न बचा होगा और आपका भविष्य पूरी तरह सुरक्षित होगा। जैसा कि आप जानते हैं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। बुद्धि की यह अवधारणा मूर्खतापूर्ण है। काल-आकाश का यह प्रपंच ऐसा है कि आप एक लक्ष्य पर पहुँचते हैं तो दूसरा लक्ष्य दृष्टिगोचर हो जाता है। और जहाँ तक आदर्श अतीत की बात है, हर किसी के अतीत में धब्बे होते हैं।"

"अब हमें विवेक काया के बारे में बताएँ, देव।" उर्वा ने उत्सुकता से कहा।

चिरंजीवी गुरु बोले, "आपकी विवेक काया मानती है कि एक व्यक्ति स्वयं कभी पूर्ण नहीं हो सकता। वह मानती है कि यदि कुछ 'पूर्ण' है तो वह कई किरदारों से बना है। इसलिए आपके किरदार को पूर्ण करने के लिए आपकी विवेक काया अन्य किरदारों के साथ नए संबंध बनाने की चेष्टा करती है और पहले से बने रिश्तों को सुधारने की चेष्टा करती है। जैसे आपकी भौतिक काया अपने आस-पास की चीजों को उपभोग्य और गैर-उपभोग्य के रूप में चिन्हित करती है, वैसे ही आपकी विवेक काया अन्य किरदारों को शत्रु और मित्र आदि के रूप में चिन्हित करती है। आपकी विवेक काया कुछ किरदारों को आपके किरदार से दूर धकेलने और अन्य किरदारों को आपके किरदार के समीप लाने की इच्छा रखती है। यदि दूरी को बदलना कठिन हो तो वह हर संभव तरीके से अन्य किरदारों के व्यवहार में परिवर्तन लाने की इच्छा रखती है। आपकी विवेक काया यह सब करने की चेष्टा कैसे करती है? अन्य किरदारों के साथ विचार, वस्तुएँ और समय साझा करके!"

"मैं अपने कबीले में कुछ परिवर्तन लाने की इच्छा रखता हूँ, देव।" उर्वा ने सत्तावदी स्वर में कुछ ऐसा कहा कि अन्य मातंगों को आश्चर्य हुआ, "जब मैं मुखिया बन जाऊँगा तो मैं इस इच्छा को पूरा करने के लिए काम करना शुरू करुंगा। क्या यह मेरी आत्मा की इच्छा है या मैं केवल अपनी विवेक काया की इच्छा की अनुकृति कर रहा हूँ, देव?"

हनुमान जी ने कहा, “परिवार, मित्र-मंडली, समुदाय, जनजाति, गांव, नगर, वर्ग, जाति, राज्य आदि आपकी विवेक काया द्वारा खींची गई सीमा रेखाएँ हैं। इन रेखाओं से अन्य किरदारों की आपके किरदार से दूरी का अनुमान लगता है। उदाहरण के लिए, विवेक काया की दृष्टि में आपके परिजन और मित्र आपके समुदाय के जनों की तुलना में आपके अधिक समीप हैं। सामान्य तौर पर आप किरदारों को इन सीमा रेखाओं से केवल इसलिए बाहर नहीं धकेल सकते कि वे आपकी विवेक काया की दृष्टि में आदर्श व्यवहार नहीं कर रहे हैं ... उदाहरण के लिए, आप अपने किसी परिवार के सदस्य को केवल इसलिए अपने परिवार से बाहर नहीं कर सकते कि वह आपकी विवेक काया की दृष्टि में जैसा एक परिजन होना चाहिए वैसा नहीं है।

"जब आपकी विवेक काया यह मानती है कि अन्य किरदार उसके ‘पूर्ण’ की अवधारणा में सही नहीं बैठते हैं तो वह उनके आचरण और व्यवहार को बदलने की इच्छा करती है। यदि आप सत्ता में हैं तो आप नियम बनाते हैं। यदि आपके पास ऐसी कोई शक्तियाँ नहीं हैं तो आप चिल्लाते हैं और अन्य किरदारों के बारे में अपनी राय दूर-दूर तक पहुँचाना चाहते हैं। तो हाँ, उर्वा, आपके कबीले के कामकाज में परिवर्तन लाने की आपकी इच्छा निश्चित रूप से आपकी विवेक काया की इच्छा है।"

मानवीय रिश्तों को बहुत अधिक अहमियत देने वाली उर्मी को विवेक काया के बारे में जानकर विचित्र-सा लगा। वह बोली, "देव, मेरे परिजन और मित्रगण मुझसे भावनात्मक रूप से जुड़े हैं और भावनाओं में जोड़ घटा का गणित तो होता नहीं है। परंतु विवेक काया द्वारा रिश्ते बनाने की इच्छा तो पूरी तरह गणित पर आधारित लगती है। विवेक काया तो पूर्ण को शतरंज फलक की तरह मानती है और अन्य किरदारों को प्यादे मानती है जो मुख्य किरदार से आदर्श दूरी पर स्थित रहने चाहिए।"

"भावनाएँ अंश द्वारा पूर्ण होने के प्रयास का उपोत्पाद हैं। और अंश को पूर्ण करने का प्रयास सभी कायाएँ करती हैं, केवल विवेक काया नहीं। इसलिए भावनाएँ सभी कायाएँ उत्पन्न करती हैं।" हनुमान जी ने बताया।

"आह, शतरंज फलक!" उर्वा ने उर्मी की ओर कृतज्ञतापूर्वक देखते हुए कहा, "इसी उदाहरण की मुझे खोज थी। धन्यवाद, उर्मी। विवेक काया की 'पूर्ण' के बारे में अवधारणा शतरंज फलक की तरह ही तो है।"

हनुमान जी ने अपनी आंखें बंद कर लीं।

"मैंने इस उदाहरण का इस्तेमाल सकारात्मक संदर्भ में नहीं किया।" उर्मी ने त्योरी चढ़ाते हुए कहा, "प्रियजन कोई शतरंज के प्यादे नहीं हैं जिनके साथ खेला जा सके।"

उर्वा बोला, "उर्मी, इसके बारे में अपने पूर्वाग्रहों से बाहर आकर सोचो। विवेक काया की पूर्ण की अवधारणा एक फलक की तरह ही तो होती है। चलो उसको विवेक-फलक नाम दे देते हैं। जैसे शतरंज फलक पर वर्ग होते हैं जिनमें प्यादे रखे जाते हैं वैसे ही विवेक-फलक पर सकेन्द्र वृत होते हैं। उन सभी वृतों का एक ही केंद्र होता है जहाँ मुख्य किरदार होता है। एक वृत में जीवनसाथी होता है, एक वृत में परिवार होता है, एक वृत में मित्र होते हैं, एक वृत में समुदाय होता है। विवेक काया का मानना है कि एक बार इन सभी वृतों में आदर्श किरदार आ जाएँ और सभी रिश्ते सामंजस्य में आ जाएँ तो मुख्य किरदार पूर्णता अनुभव करेगा। आदर्श रिश्ते बनाने और बने हुए रिश्तों को सुधारने अथवा समाप्त करने से सम्बन्धित सभी इच्छाएँ विवेक काया की इसी मान्यता के कारण पैदा होती हैं। जब ये इच्छाएँ पूर्ति की दिशा में बढ़ती हैं तो हम सकारात्मक भावनाओं को अनुभव करते हैं अन्यथा हम नकारात्मक भावनाओं को अनुभव करते हैं। आप मानो या ना मानो, जहाँ तक रिश्तों की बात है, हम सब एक दूसरे के विवेक-फलक पर रखे प्यादे मात्र हैं। "

उर्मी बोली, "अपनी भावनाओं को दरकिनार करके आपको जो तुच्छ रस मिलता है, उसका आनंद लो। आपकी छवि एक मस्तमौला की बन गई है और आप उस छवि में फँस गए हो। उसी छवि के कारण आप भावनाओं का उपहास करते हो।"

उर्वा बोला, "मुझे उस छवि में फँसे होने का बोध है। परंतु मैं विवेक-फलक के उदाहरण का प्रयोग भावनाओं को छोटा दिखाने के लिए नहीं कर रहा हूँ। आप मेरे कथन को मिथ्या रूप में ग्रहण कर रही हो।"

उर्मी ने शांत स्वर में कहा, "नहीं उर्वा। मैंने तो हनुमान जी से विवेक काया को अच्छी तरह से समझने के लिए प्रश्न किया। आप ही यह सिद्ध करने का प्रयास कर रहे हो कि रिश्ते शतरंज के प्यादों की तरह होते हैं।"

"नहीं उर्मी। शतरंज के प्यादों को भूल जाओ। शतरंज के खेल को भी भूल जाओ। शतरंज के फलक को आधार बनाकर मैं एक 'विवेक-फलक' की कल्पना कर रहा हूँ।" उर्वा ने स्पष्ट किया, "मैंने केवल यह कल्पना करने की चेष्टा की कि विवेक काया की पूर्णता की अवधारणा क्या है। भौतिक काया और बुद्धि काया के विपरीत विवेक काया का मानना है कि व्यक्ति स्वयं पूर्ण नहीं हो सकता; उसे पूर्ण होने के लिए अन्य व्यक्तियों से रिश्ते बनाने पड़ते हैं। निश्चित रूप से विवेक काया की दृष्टि में 'पूर्ण' जो भी है वह कई किरदारों से बना है। उस कई किरदारों से बनी इकाई की तुलना मैं एक फलक से कर रहा हूँ। एक ऐसा फलक जिसके ऊपर मेरे जीवन के सभी किरदार स्थित हैं।"

हनुमान जी ने वार्ता में वापसी की, "यही कारण है कि मन और आत्मा के रहस्यों को समझते समय रूपकों और सादृश्यों का उपयोग बहुत सावधानी से करना चाहिए। तकनीकी विवरणों से न भटकें। जैसे ही कोई सादृश्य आपको सत्य से दूर खींचना शुरू कर दे, वैसे ही उस सादृश्य को छोड़ दें।

"उर्वा, मैं समझ सकता हूँ कि आप शतरंज फलक के सादृश्य का उपयोग किस संदर्भ में कर रहे हैं; आप इसका उपयोग तब तक कर सकते हैं जब तक आपको यह बात स्पष्ट है कि विवेक काया शतरंज नहीं खेल रही है; वह तो विवेक-फलक के विभिन्न वृतों को भरने के लिए आदर्श टुकड़े खोजने का प्रयास कर रही है।

"और उर्मी, मैं आपके दृष्टिकोण को भी समझ रहा हूँ। विवेक और बुद्धि में अंतर करने में बड़े-बड़े बुद्धिमान मात खा जाते हैं। बुद्धि और विवेक प्रायः एक दूसरे पर सत्ता करने की चेष्टा करते हैं। कवि विवेक को हृदय कहते हैं और बुद्धिमान जन विवेक को बुद्धि समझते हैं। विवेक को ठीक से समझने में त्रुटि होती है क्योंकि समझने का कार्य बुद्धि करती है और बुद्धि प्रायः विवेक को ठीक से नहीं समझती है। आपकी बात सही है कि विवेक जोड़-घटा अथवा हानि-लाभ देखकर रिश्ते नहीं बनाता। जो रिश्ते व्यावसायिक होते हैं उनको बनाने के पीछे बुद्धि की इच्छा होती है, विवेक की नहीं। बुद्धि भविष्य को सुरक्षित करना चाहती है, विवेक वर्तमान में ही किसी के साथ जुड़ना चाहता है। कई बार रिश्ते ऐसे होते हैं जिनको बनाने के पीछे बुद्धि और विवेक दोनों की संयुक्त इच्छा होती है। परंतु संयुक्त इच्छा होते हुए भी ये दोनों आपस में लड़कर बार-बार इस बारे में संदेह पैदा करते हैं कि रिश्ता सही है या नहीं।

"विवेक की इच्छाएँ सदा निस्वार्थ होती हैं क्योंकि आपके किरदार को पूर्ण बनाने का उसका दृष्टिकोण व्यक्तिवादी नहीं अपितु सामूहिक होता है। दूसरी ओर, बुद्धि के व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के कारण उसकी इच्छाओं में सदा स्वार्थ का गणित होता है।

"कई बार बुद्धि और विवेक एक ही इच्छा करते हैं परंतु विपरीत कारणों से। मित्रता का संबंध ही ले लो। आप दो कारणों से किसी के साथ मित्रता करने की इच्छा कर सकते हैं। एक तो अपने भविष्य को सुरक्षित करने के लिए; आपकी बुद्धि मित्रता को एक लेन-देन के संबंध के रूप में देखती है जिसमें आप आशा करते हैं कि भविष्य में कोई आवश्यकता पड़ने पर मित्र आपकी सहायता करेगा। दूसरा इसलिए कि आप उस व्यक्ति के साथ एक निस्वार्थ लगाव अनुभव करते हैं; आपकी विवेक काया उस व्यक्ति को अपने समीप लाने की इच्छा करती है-'

उर्मी बीच में ही बोल पड़ी, "बिल्कुल, देव। यही तो मैं कह रही थी कि रिश्ते निस्वार्थ होते हैं। कुछ रिश्तों में तो हम जीवन भी बलिदान कर सकते हैं... जैसे कि माता-पिता के साथ संतान का रिश्ता।"

हनुमान जी ने कहा, "दूसरे किरदारों के लिए अपनी आवश्यकताओं का त्याग करने की इच्छा तब अंकुरित हो सकती है जब आपकी विवेक काया अन्य किरदारों को अपने से अधिक महत्त्वपूर्ण भाग मानती है। भाग किसका? अपनी पूर्ण की अवधारणा का, पूर्ण का नहीं। जो असल में पूर्ण है उस परमात्मा के लिए तो सब समान हैं। परंतु विवेक काया के पूर्ण की अवधारणा में कोई अधिक महत्त्वपूर्ण है तो कोई कम महत्त्वपूर्ण।"

"देव, विवेक काया अन्य किरदारों का मूल्य कैसे निर्धारित करती है? ... तर्क के आधार पर या विशुद्ध रूप से सहज भावना के आधार पर?" उर्वा से पूछा।

हनुमान जी ने उत्तर दिया, "विशुद्ध रूप से एक सहज भावना के आधार पर। जब आपकी विवेक काया किसी किरदार के संपर्क में आती है तो वह अनायास और अनजाने में उसका स्थान निर्धारित कर देती है। वह निर्धारित करती है कि कोई किरदार उसके समीप आना चाहिए, दूर जाना चाहिए, या जहाँ है वहीं रहना चाहिए। उसी निर्धारण से रुचि या अरुचि की भावना जन्म लेती है।

"यदि विवेक काया से यह प्रश्न किया जाए कि वह किसी व्यक्ति में रुचि या अरुचि क्यों ले रही है तो वह अपनी भावना को तर्क का समर्थन नहीं दे सकती। विवेक काया को तर्क करना नहीं आता। तर्क के लिए उसे बुद्धि काया की सहायता लेनी पड़ती है। बुद्धि काया ही तर्क कर सकती है क्योंकि तर्क के लिए कल्पना और स्मृति की आवश्यकता होती है जो बुद्धि काया के पास होती हैं। यही कारण है कि हम बुद्धि और विवेक को एक ही मान लेते हैं या विवेक को सही तरह से नहीं समझ पाते। बुद्धि काया और विवेक काया दो अलग मानसिक कायाएँ हैं। विवेक काया केवल अनुभव करती है। वह स्वयं संवाद भी नहीं कर सकती क्योंकि भाषा-ज्ञान भी बुद्धि के पास होता है। भाषा के प्रयोग के लिए स्मृति में संग्रहीत शब्द भंडार की आवश्यकता होती है और वाक्य बनाने के लिए कल्पना की। अतीत की स्मृति और भविष्य की कल्पना दोनों बुद्धि काया के पास हैं।"

"और बुद्धि काया विवेक काया द्वारा उत्पन्न भावनाओं को प्रकट करने अथवा उनके पीछे तर्क ढूँढने का कार्य कितनी बुरी तरह से करती है ये तो सब जानते हैं।" उर्वा ने आह भरी।

"बहुत बुरा काम, वास्तव में!" उर्मी ने सहमति प्रकट की, "जब रिश्तों की बात आती है तो भौतिक काया भी बुद्धि काया से अच्छा संवाद कर लेती है - भावनाओं को

व्यक्त करने के लिए आंसू अक्षरों से बेहतर हैं और चेहरा पृष्ठ से बेहतर है।"

उर्वा ने कहा, "भौतिक काया संवाद नहीं कर सकती। आँसू तथा चेहरे के भावों द्वारा वह विवेक काया की भावनाओं को अपने ढंग से प्रदर्शित करती है। वह अन्य किरदारों के साथ वस्तुएँ साझा करके तथा उनके लिए कुछ करके भी विवेक काया की भावनाओं को प्रदर्शित करती है।

उर्वा के मन में एक विचार आया जो उसने प्रकट नहीं किया, 'मेरी विवेक काया उर्मी को संसार के किसी अन्य किरदार से अधिक महत्त्व देती है। इन अंतरंग भावनाओं को व्यक्त करने के लिए मेरी विवेक काया भौतिक काया की सहायता लेना चाहती है। इसलिए उर्मी के साथ एक होने की मेरी इच्छा विशुद्ध रूप से भौतिक नहीं है। इस इच्छा को मेरी विवेक काया का समर्थन भी प्राप्त है।'

चिरंजीवी हनुमान जी ने कहा, "जब प्रभु श्री राम अयोध्या से अपने राज्य पर शासन कर रहे थे तब अधिकांश नागरिक उनसे प्रेम करते थे और उनके निर्णयों का समर्थन करते थे। भले ही वे सबसे आदर्श राजा थे, उनके भी आलोचक थे। उनके प्रबल समर्थक आलोचकों से तर्क करके उन्हे समझाने और मनाने का प्रयास करते थे परंतु कोई लाभ नहीं होता था। कुछ समर्थक तो आलोचकों को दुष्ट भी घोषित कर चुके थे। इससे पहले कि उन दो समूहों के बीच घृणा का बीज अंकुरित होता, प्रभु राम ने संतों से आग्रह किया कि वे विवेक काया के बारे में ज्ञान का प्रचार करें। ज्ञान प्राप्ति के पश्चात समर्थकों को समझ में आ गया कि प्रभु राम जैसे आदर्श और विराट व्यक्तित्व से द्वेष करना भी मानवीय स्वभाव के विरुद्ध नहीं है। ... भले ही आपका कबीला कुछ ही जनों का समूह है, परंतु उनमें से भी कुछ जन आपसे द्वेष करते हैं, उर्वा। आप उनसे कैसे निपटेंगे?"

उर्वा ने कहा, "कोई बात नहीं, देव। पूर्ण के बारे में उनकी अपनी अवधारणा है। उनके विवेक-फलक पर जनजाति के मुखिया की जगह चिन्हित है। उनका मानना है कि मैं उस जगह को भरने के योग्य नहीं हूँ। यही कारण है कि वे मुझसे द्वेष करते हैं। इसमें कुछ अनुचित नहीं है। अपितु मैं तो उनसे सहमत हूँ। मेरी विवेक काया को भी लगता है कि मेरा किरदार उस जगह को भरने के योग्य नहीं है। मैं अपने आपसे द्वेष करता हूँ। मैं कई बार स्वयं सोचता हूँ कि देवताओं ने मुझमें क्या देखकर इस महान जनजाति का नेतृत्व करने के लिए चुना है। मैं तो केवल एक सामान्य व्यक्ति हूँ।"

हनुमान जी ने कहा, "यह तो असामान्य है। सामान्य तौर पर जन स्वयं को दूसरों की तुलना में अधिक महत्त्व देते हैं। उन्हें लगता है कि उनके परिवार और समुदाय में उनका

बेहतर स्थान होना चाहिए। वे अपने स्थान को बेहतर बनाने के लिए बहुत मेहनत करते हैं - उर्मी, आप कोई प्रश्न करना चाहती हैं?"

"हाँ... देव।" उर्मी ने कहा, "जो जन मुझसे अभी द्वेष करते हैं, क्या वे सदा मुझसे द्वेष करेंगे? क्या ऐसा कोई उपाय नहीं है जिससे कि उनका विवेक मुझसे राग करने लगे?"

हनुमान जी ने सुझाव दिया, "अपने बारे में अधिक जानकारी साझा करें। स्वयं को बेहतर ढंग से प्रस्तुत करने की चेष्टा करें। यदि आपने सही ढंग से स्वयं को उनके सामने प्रकट कर दिया है और उसके पश्चात भी वे आपसे द्वेष करते हैं तो आप केवल यह आशा कर सकते हैं कि उनके 'पूर्ण' की अवधारणा कभी बदलेगी और उस अवधारणा में आपका स्थान बेहतर हो जाएगा।

"आपको यह ध्यान रखना चाहिए कि उनकी बुद्धि और विवेक दो अलग-अलग कायाएँ हैं। यदि उनकी विवेक काया आपसे द्वेष करती है तो उनकी बुद्धि काया से तर्क करने का कोई अर्थ नहीं है। हाँ, यदि आप उन्हें यह समझाना चाहते हैं कि आप उनके लिए उपयोगी हैं तो आप उनकी बुद्धि काया के साथ संवाद कर सकते हैं। क्योंकि बुद्धि काया की रुचि केवल भविष्य को सुरक्षित करने के लिए अन्य किरदारों का उपयोग करने में है। दूसरी ओर विवेक काया निस्वार्थ संबंध बनाना चाहती है।

"आपके व्यक्तित्व का पूरा चित्र पाने के पश्चात भी यदि वे आपसे राग नहीं करते हैं तो उनके साथ बहस करने का कोई अर्थ नहीं है। उन्हें आपके बारे में नकारात्मक राय के साथ जीने दें। विवेक काया जो अनुभव करती है, करती है। निस्वार्थ भावनाओं के पीछे कोई तर्क नहीं होता।

"इसमें मनुष्यों की राजाओं, रानियों, प्रसिद्ध जनों और काल्पनिक किरदारों के प्रति राग-द्वेष भी शामिल है। बहस करने और राय बदलने का प्रयास करने का कोई अर्थ नहीं है। अधिक से अधिक आप यहीं कर सकते हैं कि जिस भी किरदार से वे द्वेष करते हैं उसके बारे में आप उनकी जानकारी बढ़ाएँ और उसका एक बेहतर चित्र प्रस्तुत करने की चेष्टा करें।

"इस संसार में आधे से अधिक मानवीय शोर-गुल बुद्धि और विवेक के बीच रस्साकसी के कारण है। आपकी विवेक काया किसी से सहज रूप से राग या द्वेष करती है और बुद्धि उस राग-द्वेष का विश्लेषण करने में लग जाती है।"

उर्वा ने अपनी मंगेतर उर्मी के प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया, "हर किसी को संतुष्ट करना संभव नहीं है। आवश्यक नहीं कि हर कोई हमसे राग करे। इस सत्य को

स्वीकार कर लेने में ही सुख है।"

"सच कहा।" उर्मी ने सहमति जताई और बोली, "और यह भी आवश्यक नहीं है कि जो जन आज मुझसे राग करते हैं वे कल भी मुझसे राग करेंगे। जिन कारकों पर राग-द्वेष निर्भर करता है वे लगातार बदल रहे है - मेरा व्यक्तित्व, मेरी विवेक काया की 'पूर्ण' की अवधारणा, मेरे व्यक्तित्व के बारे में दूसरों को उपलब्ध जानकारी, मेरे संवाद करने की क्षमता और मेरे आंतरिक व्यक्तित्व को बाह्य रूप में प्रस्तुत करने की मेरी क्षमता, दूसरों के मेरे प्रति पूर्वाग्रह आदि आदि।"

उर्वा ने उर्मी से कहा, "यदि कोई आपसे इसलिए द्वेष करता है कि वह आपके सच्चे व्यक्तित्व को नहीं जानता तो वह आपसे द्वेष नहीं करता, आपकी उस मिथ्या छवि से द्वेष करता है जो उसके मस्तिष्क में छप गई है।"

हनुमान जी के गहरे स्वर में ज्ञान गूँजा, "आपकी अन्य कायाओं की तरह विवेक काया की पूर्ण की अवधारणा भी मिथ्या है। विवेक काया भी कभी नहीं जान सकती कि पूर्ण क्या है। उसकी आपके किरदार को पूर्ण बनाने की इच्छाओं का कोई परिणाम नहीं निकलने वाला है। चाहे वह कितने भी किरदारों के साथ संबंध जोड़े और कितने भी किरदारों के साथ संबंध तोड़े, वह एक आदर्श समूह का निर्माण नहीं कर सकती। और किसी भी समूह के अपने आप में पूर्ण होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इसलिए आत्मा को विवेक काया द्वारा उत्पन्न की गई इच्छाओं को अपने ऊपर नहीं लादना चाहिए।

"मैं आपको विवेक काया द्वारा उत्पन्न इच्छाओं के कुछ और उदाहरण देता हूँ।

"विवेक काया सामान्य तथा प्रसिद्ध जनों के बारे में सभी प्रकार की कहानियाँ, गपशप, समाचार आदि सुनने की इच्छा करती है। वह अन्य जीवित तथा मृत किरदारों के बारे में अपनी राय प्रकट करने की इच्छा करती है। वह अपने परिवार, समुदाय, देश, ग्रह आदि को बेहतर बनाने की इच्छा करती है। वह अन्य मनुष्यों, कुत्तों, बिल्लियों, हाथियों आदि की देखभाल करने की इच्छा करती है। वह उन मनुष्यों और जानवरों को अस्तित्व में नहीं देखना चाहती जो उसके आदर्श 'पूर्ण' की अवधारणा में नहीं समाते। वह व्यक्तियों को अच्छे और बुरे की श्रेणियों में डालने की इच्छा करती है।"

चिरंजीवी गुरु ने कुछ देर के लिए सभा में मौन रहने दिया। उस मौन का लाभ उठाते हुए उनके शिष्यों ने अपनी-अपनी इच्छाओं के बस्ते खंगाले और यह पहचानने का प्रयास किया कि उनमें से कौन कौन सी इच्छाएँ विवेक काया द्वारा निर्मित अथवा समर्थित थीं।

उर्वा ने मौन भंग करते हुए कहा, "देव, मेरी सभी इच्छाएँ तो बस उन्ही तीन कायाओं द्वारा निर्मित लगती हैं जिन पर हमने अभी तक चर्चा की है - भौतिक काया, बुद्धि और विवेक। मुझे आश्चर्य है कि अभी दो कायाओं के बारे में चर्चा शेष है। वे दो कायाएँ क्या इच्छाएँ करती हैं?"

"आपको एक दिनचर्या का पालन कौन करवाता है?" हनुमान जी ने पूछा, "आप नित्य एक निश्चित समय पर जागने की इच्छा रखते हैं। आप दिन के दौरान एक निश्चित समय पर अपना भोजन करने का प्रयास करते हैं। आप आदतें बनाते हैं। आप चीजों को व्यवस्थित करना पसंद करते हैं। आप स्वच्छता की इच्छा रखते हैं। संसार में बहुत अधिक अराजकता, अनिश्चितता और अस्तव्यस्तता है। आप अपने जीवन में जितना संभव हो सके उतनी निरंतरता, पूर्वानुमेयता और व्यवस्था लाने की इच्छा रखते हैं। आपकी पांच कायाओं में से कौन सी काया ऐसी इच्छाएँ करती है?"

"संस्कार काया।" युवा मातंगों ने अनुमान लगाया।

"सही।" हनुमान जी ने पुष्टि की, "आपकी संस्कार काया भी आपके किरदार को 'पूर्ण' बनाना चाहती है। किंतु उसकी पूर्ण की अवधारणा अलग है। उसका मानना है कि जो पूर्ण है वह सुसंगत, व्यवस्थित, पूर्व सूचनीय, पद्धतिबद्ध, निश्चित व नियमित है। वह आपको पूर्णता की अपनी इस अवधारणा के समीप ले जाने की इच्छा करती है। वह वे सब इच्छाएँ पैदा करती है जो आपके जीवन में व्यवस्था और निरंतरता ला सकती हैं। क्या आप उदाहरण के तौर पर अपनी इच्छाओं में से वे इच्छाएँ बता सकते हैं जिन पर संस्कार काया की गहरी छाप है?"

उर्मी ने क्षमाप्रार्थी भाव से कहा, "मैं चीजों को अशुद्ध और अव्यवस्थित रूप में नहीं देख सकती। यदि मेरी भौतिक काया मर रही हो तो भी मेरी संस्कार काया झोपड़ी को साफ-सुथरा करके एक सुंदर मृत्युशय्या बनाने की इच्छा करेगी।"

उर्वा ने कहा, "मैं इतना अतिशय नहीं करता परंतु यदि मैं किसी दिन स्नान न कर पाऊँ तो मेरे मन में एक स्वर उठने लगता है जो मुझे मलिन अनुभव कराता है फिर चाहे मेरी भौतिक काया को स्नान की आवश्यकता हो या न हो। मुझे लगता है वह स्वर मेरी संस्कार काया का ही है।"

हनुमान जी ने कहा, "शुचिता से परे भी कुछ उदाहरण सोचो। अराजकता, अनिश्चितता और क्रमभंग से मनुष्यों को डर लगता है। वे सत्य की खोज के लिए भी एक अनिश्चित और घुमावदार मार्ग की बजाय कुछ सरल नियमों, अनुष्ठानों और परंपराओं का पालन करना चाहते हैं। वे सदा नरक और स्वर्ग, अच्छे और बुरे, पुण्य और पाप के सरल

विचारों के साथ जीना चाहते हैं। वे सदा विचारधारा और मान्यता के एक छोटे से घोंसले की खोज में रहते हैं जिसमें वे चैन से अपना जीवन बिता सकें। क्यों? संस्कार काया के कारण।

"आपके बारे में कुछ भी अपरिवर्तनशील नहीं है। आप हर पल बदल रहे हैं। आपके आसपास सब कुछ बदल रहा है। तो भी आप स्वयं की एक अपरिवर्तनशील छवि बना लेते हैं और उससे चिपके रहने का प्रयास करते हैं। महाभारत काल के एक महत्त्वपूर्ण किरदार पराक्रमी भीष्म संस्कार काया द्वारा की गई इच्छाओं को समझने के लिए एक बड़ा उदाहरण हैं।

"भीष्म एक महान योद्धा थे जिन्होंने स्वयं की एक बहुत कड़ी छवि बना ली थी। उस छवि के कारण उन्होने यह वचन दे दिया कि वे सदा उस व्यक्ति के प्रति निष्ठावान रहेंगे जो सिंहासन पर बैठेगा और वे स्वयं कभी राजा नहीं बनेंगे। दुर्भाग्य से एक दुष्ट व्यक्ति ने उस सिंहासन पर अधिकार कर लिया जिस सिंहासन के प्रति निष्ठावान रहने की उन्होने शपथ ली थी। छवि से चिपके रहने की इच्छा के कारण वे एक दुष्ट राजा के बुरे कर्मों में सहभागी बन बैठे। एक कठोर नैतिक संहिता का पालन करने की उनकी इच्छा ने उन्हें मानव इतिहास के सबसे अनैतिक कार्यों का पक्षकार बना दिया। यदि वे स्वयं द्वारा निर्मित छवि को तोड़ लेते तो संभवतः मानव इतिहास का सबसे बड़ा रक्तपात न होता।

"आप सबकी एक छवि है जिससे आप चिपके रहने का प्रयास करते हैं। उस छवि के प्रायः दो चेहरे होते हैं - सामने वाला चेहरा दूसरों की ओर होता है और पीछे वाला चेहरा स्वयं की ओर। आप चाहते हैं कि अन्य जन आपके सामने वाले चेहरे को देखें। पीछे वाला चेहरा आपका निजी होता है परंतु उसमें भी आप एक निरंतरता और अपरिवर्तनशीलता बनाए रखने का प्रयास करते हैं। आपकी बहुत सारी इच्छाएँ अपनी छवि के इन दोनों चेहरों की रक्षा और सुधार के आसपास घूमती हैं। पीछे वाले चेहरे को क्षति पहुँच जाए तो कोई बात नहीं परंतु आप अपने सामने वाले चेहरे को हर मूल्य पर बचाए रखने का प्रयास करते हैं।

"असहाय अनीता के उदाहरण को ही ले लीजिए। वह ये दिखाने का प्रयास करती है कि उसके जीवन में सब कुछ सामान्य है। वह पड़ोसियों या मित्रों से भोजन की भीख नहीं मांगती क्योंकि उसे अपनी छवि की रक्षा करनी है। सामान्यता की इस छवि का पिछला चेहरा पहले ही टूट चुका है; वह स्वयं तो ये जानती है कि उसके जीवन में कुछ भी सामान्य नहीं है।

"यदि मैं आपसे अपने-अपने बारे में कुछ बताने के लिए कहूँ तो आप अपनी छवि के सामने वाले चेहरे का वर्णन करेंगे। यदि मैं आपसे यह आत्ममंथन करने के लिए कहूँ कि आप कौन हैं तो आप अपनी छवि का पिछला चेहरा पढ़ेंगे।

"भले ही आपके जीवन का हर दिन अलग रहा हो, आप अपने व्यवहार में नियमितता देखते हैं। आप उस नियमितता को बनाए रखने की इच्छा रखते हैं क्योंकि आपकी संस्कार काया का मानना है कि ऐसा करने से आपका किरदार पूर्ण हो जाएगा। उसकी पूर्ण की अवधारणा ही दोषपूर्ण है। वह ये कभी नहीं जान सकती कि 'पूर्ण' क्या है। परंतु आपकी आत्मा अर्थात आप जानते हैं। इसलिए आपको किरदार की संस्कार काया द्वारा उत्पन्न इच्छाएँ अपने ऊपर नहीं लेनी चाहिए। एक जागृत आत्मा जब चाहे किरदार से अलग हो सकती है।"

संस्कार काया के स्वभाव के बारे में इस रहस्योद्घाटन ने धनुष्क की पानी पीने की इच्छा को नया कर दिया। उसने कहा, "देव, प्यास को दबाना मेरी संस्कार काया की इच्छा है। मेरी एक छवि यह है कि मैं शक्तिशाली इरादों वाला ऐसा व्यक्ति हूँ जो अपनी पीने और खाने की इच्छा को दबा सकता है। अतीत में मैंने गर्व से लंबे समय के लिए उपवास किए हैं। अब जब मैं इसके पीछे अपनी संस्कार काया का हाथ देखता हूँ, मुझे अपनी प्यास का दमन करना व्यर्थ लगता है। मैं अब पानी पीना चाहता हूँ।"

धनुष्क का परम मित्र उर्वा बोला, "परंतु धनुष्क, पानी पीकर आप अपनी भौतिक काया की इच्छा की अनुकृति कर रहे हैं। चाहे आप पानी पीओ अथवा प्यास को दबाओ, आत्मा की स्वतन्त्रता के संदर्भ में दोनों परिदृश्य एक जैसे हैं। दोनों परिदृश्यों में आपकी आत्मा आपकी कायाओं की इच्छा को अपने ऊपर लाद रही है।"

"धनुष्क, अपनी भौतिक काया की इच्छा के अनुसार अभी तो पानी पी लो।" हनुमान जी ने सुझाव दिया।

जब धनुष्क ने अपनी प्यास बुझा ली तब हनुमान जी ने आगे कहा, "आपकी पाँच कायाओं द्वारा की गई इच्छाओं के साथ जाना कोई बुरी बात नहीं है। आप जब तक चाहें इन सुंदर भ्रमों का आनंद ले सकते हैं। परंतु आपको बोध होना चाहिए कि इन भ्रमों से बाहर कैसे निकलना है। नहीं तो आपकी आत्मा आपकी पाँच कायाओं की दया पर आश्रित हो जाती है और एक दास बनकर रह जाती है।”

"मुझे समझ नहीं आ रहा, देव। क्या मुझे उस जगह पर स्वच्छता रखनी बंद कर देनी चाहिए जहाँ मैं रहता हूँ? क्या मुझे नियमों का पालन नहीं करना चाहिए? क्या मुझे जीवन में सुसंगत नहीं होना चाहिए? मुझे अपनी संस्कार काया द्वारा की गई इच्छाओं का

विरोध कैसे करना चाहिए?" कालंदक क्षीण स्वर में बोला। उसने निश्चित ही हनुमान जी द्वारा अभी-अभी बोले गए कथन को नहीं सुना था।

"आप विरोध क्यों करना चाहते हैं?" हनुमान जी ने कहा, "जब आप अपनी एक काया की इच्छाओं का विरोध करते हैं तो आप अन्य चार कायाओं में से एक की इच्छाओं का समर्थन कर बैठते हैं। आपकी पाँच कायाएँ मिलकर एक ऐसे कक्ष का निर्माण करती हैं जिससे बाहर निकलने का कोई छोटा-सा भी द्वार नहीं है। इच्छा का विरोध करने से आप इस कक्ष से मुक्त नहीं हो सकते। पूरे तन-मन से ही अलग होना है, किसी एक काया से नहीं। पूरे तन-मन को अपने से अलग देखना और जानना है। आपकी संस्कार काया को स्वच्छता की इच्छा करने दो। आपके किरदार को स्वच्छता पर कार्य करने दो। परंतु आप एक आत्मा हैं। आपको उस इच्छा की अनुकृति करने की आवश्यकता नहीं है।"

कालंदक को उत्तर मिलने के पश्चात उर्वा ने वार्ता को आगे बढ़ाने के लिए प्रश्न पूछा, "पांचवी काया क्या इच्छा करती है, देव?"

हनुमान जी ने कहा, "चित्त काया की इच्छाएँ आपकी संस्कार काया की इच्छाओं के विपरीत हैं। आपकी चित्त काया भी आपके किरदार को पूर्ण करना चाहती है। उसका मानना है कि यदि कुछ पूर्ण है तो वह अराजक, बेतरतीब, अनगढ़, अज्ञेय, अव्यवस्थित, अनियमित, अप्रत्याशित और तर्कहीन है। क्या आपने कभी नियमों को तोड़ने, संकट भरे कार्य करने, हानिकारक पदार्थों का सेवन करने, इधर-उधर भटकने, अज्ञात की गहराइयों में कूदने, किसी को मारने, या स्वयं को मारने की इच्छा अनुभव की है? ये सब चित्त काया की इच्छाओं के उदाहरण हैं।"

सभा में कई मुंह खुले के खुले रह गए। उर्वा ने टिप्पणी की, "मैंने अपने मन में उस अंधकार की हल्की-सी उपस्थिति अनुभव की है, देव। मुझे नहीं पता था कि वह अंधकार मन के चार भागों में से एक है। मुझे नहीं पता था कि वह अंधकार हर किसी के मन में होता है।"

उर्मी ने पूछा, "देव, क्या चित्त काया सदा बुरी इच्छाएँ करती है?"

"चित्त काया लीक से हटकर इच्छाएँ करती है।" चिरंजीवी गुरु ने कहा, "वे इच्छाएँ बहुत अच्छी अथवा बहुत बुरी हो सकती हैं। क्या आपने कभी नायक की तरह कारनामे करने की इच्छा की है? क्या आप असंभव और अवास्तविक परिदृश्यों की कल्पना करते हैं जिनमें आप नायक बनकर जनता की रक्षा करते हैं? आपने कभी योग शक्ति से बहुत सारी संपति प्राप्त करके उसका गुप्तदान करने के बारे में सोचा होगा। आपने अपने प्रियजनों को

अकल्पनीय शारीरिक और मनोवैज्ञानिक सुख देने की इच्छा की होगी। आपने मानदंडों और परंपराओं के विरुद्ध विद्रोह करने की इच्छा की होगी।”

उर्मी ने कहा, "देव, ये सब चरम इच्छाएँ हैं। ऐसी इच्छाएँ कभी-कभी जन्म लेती है। क्या इसका अर्थ यह है कि साधारण जीवन में चित्त काया की कोई भूमिका नहीं है?"

"चित्त काया आपके साधारण जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।" हनुमान जी ने बताया, "हाँ, ऐसा बहुत कम होता है कि चित्त काया अपनी चरम इच्छाओं को आगे लाए। वह बस अन्य कायाओं द्वारा की गई इच्छाओं का पीछे से समर्थन करती है। यदि चित्त काया न होती तो आप उनमें से कई काम न करते जो आप साधारण जीवन में करते हैं। चित्त काया अन्य कायाओं द्वारा की गई इच्छाओं को एक हल्का-सा धक्का भर देती है जो निर्णायक साबित होता है। मैं आपको एक उदाहरण देता हूँ।

"मान लीजिए कि आप किसी के घर पर हैं और वे आपको भोजन का प्रस्ताव करते हैं। खाने के रूप और गंध को देखकर आपकी भौतिक काया इच्छा करती है कि आप प्रस्ताव को ठुकरा दें। फिर आपकी संस्कार काया आगे आती है। आपकी एक छवि बनी हुई है कि आप किसी की भावनाओं को चोट नहीं कर सकते और किसी को 'ना' नहीं बोल सकते। आपकी संस्कार काया इस छवि से चिपके रहने की इच्छा करती है। अर्थात वह खाने के प्रस्ताव को स्वीकार करने की इच्छा करती है। आपकी भौतिक काया संस्कार काया का विरोध करती है। दोनों की शक्ति समान है। कौन-सी काया जीतेगी? वह काया जीतेगी जिसको चित्त काया का समर्थन प्राप्त होगा। मान लीजिए कि आपकी चित्त काया अपनी शक्ति संस्कार काया की पीछे लगाती है। तब आपकी भौतिक काया अवांछनीय भोजन करने के लिए बाध्य हो जाएगी। चित्त ने संस्कार का समर्थन केवल इसलिए किया ताकि भौतिक काया में अव्यवस्था पैदा हो सके।

"चित्त काया अराजकता और अव्यवस्था करने के लिए तरसती है। वह भौतिक काया को भी समर्थन कर सकती थी जिससे कि संस्कार काया की छवि को क्षति पहुँचती और संस्कार काया में अव्यवस्था पैदा हो जाती।”

उर्मी बोली, "यह तो पूर्ण रूप से दुष्टता है, देव!”

"नहीं, ऐसा नहीं है।" उर्वा बोला, "अराजकता और अव्यवस्था के बिना हम कोई वास्तविक प्रगति नहीं कर सकते, केवल प्रगति का भ्रम जी सकते हैं।"

हनुमान जी मुस्कुराए और उर्मी से बोले, "यह आपकी संस्कार काया है जो आपकी चित्त काया को दुष्ट ठहरा रही है।"

पूरी सभा को संबोधित करते हुए हनुमान जी आगे बोले, "चित्त काया जो भी इच्छा करती है, शुद्ध मंतव्य के साथ करती है। आपकी अन्य चार कायाओं की तरह चित्त काया भी आपके किरदार को पूर्ण करने का प्रयास करती है। उसका वास्तव में मानना है कि पूर्णता की राह अव्यवस्था और अराजकता से होकर जाती है। हाँ, चित्त काया यदि इतनी शक्तिशाली हो जाए कि अन्य कायाएँ उसकी इच्छाओं का विरोध न कर सकें तब किरदार बहुत शीघ्र नष्ट हो जाता है। और यदि चित्त काया अत्यधिक कमजोर होकर प्रतिबंधित हो जाए तो अन्य चार कायाएँ किरदार को एक ही वृत में घुमाती रहती हैं। इससे यह तो भ्रम रहेगा कि किरदार प्रगति कर रहा है परंतु वास्तविक प्रगति नहीं होगी। प्रगति तब होती है जब आपकी चित्त काया और संस्कार काया के बीच संतुलन होता है। नई खोजें तब होती हैं जब चित्त को अज्ञात के अंधेरे में कूदने की स्वतंत्रता हो परंतु संस्कार की रस्सी से बंधे रहकर।”

"देव, क्या इसमें मुक्ति के मार्ग पर प्रगति भी शामिल है? ... आत्मज्ञान के मार्ग पर प्रगति? योग शक्तियों को प्राप्त करने के मार्ग पर प्रगति?" उर्मी ने पूछा।

"जैसा कि मैंने कहा, अपनी आत्मा को जागृत करने के लिए आपको अपनी चारों अदृश्य मानसिक कायाओं को दृश्यमान बनाना होगा। अधिकांश साधक अन्य तीन को सफलतापूर्वक दृश्यमान कर लेते हैं परंतु चित्त काया को नहीं कर पाते। उन्हें चित्त काया के बारे में जितनी अधिक जानकारी मिलती है उतना ही वे उसे ढक देने का प्रयास करते हैं।" हनुमान जी ने कहा।

"ऐसा क्यों, देव?"

"बचपन में आपने बच्चों को खा जाने वाले राक्षस के बारे में कहानियाँ सुनी होंगी। वह राक्षस जो आपके डेरे की सीमा के बाहर रहता है। सुनीं हैं या नहीं?" हनुमान जी से पूछा।

"हाँ, देव।" उर्मी ने उत्तर दिया, "परंतु अब हमें बोध है कि वे कहानियाँ हमें क्यों सुनाई जाती थीं। अब हम जानते है कि ऐसा कोई राक्षस उपस्थित नहीं है। परंतु जंगल के अन्य संकट डेरे की सीमा के बाहर वास्तव में उपस्थित हैं। उस राक्षस के काल्पनिक डर ने हमें जंगल के वास्तविक संकटों से बचाया।"

हनुमान जी ने कहा, "चित्त को उस राक्षस की तरह ही समझो; अंतर यह है कि चित्त का वास्तव में अस्तित्व है और वह सदा दुष्ट इच्छाएँ नहीं करता। वह छिपा हुआ रहता है और अज्ञात रहता है। वह आपकी नियमित जीवन में की गई इच्छाओं को प्रभावित करता है परंतु आगे आकर नहीं, पीछे रहकर। चित्त से आपकी प्रत्यक्ष भेंट कभी-कभी ही

होती है और वह भेंट प्रायः अप्रिय ही होती है। चित्त से ठीक प्रकार भेंट करने की बजाय आप वापिस अपनी अन्य कायाओं के पास भागते हैं और चित्त के अस्तित्व को पूरी तरह से नकारने का प्रयास करते हैं। जिस तरह बचपन में अज्ञात राक्षस के डर ने आपको अपने डेरे की सीमा के भीतर बंद रखा वैसे ही चित्त का भय आपको मन के कारागार में सीमित रखता है। आपको चित्त का अच्छे से सामना करना चाहिए और उसे सामने लाने का प्रयास करना चाहिए। क्योंकि जब चित्त अपने आप सामने आता है तो जीवन में कोई बवंडर ले आता है। मैं आपको एक दृश्य दिखाता हूँ..."

मातंगों ने अपनी आँखें बंद कीं तो उन्हे एक अंधेरे कक्ष का दृश्य दिखाई दिया। एक युवक, जिसका चेहरा धंसा हुआ लग रहा था, एक कुर्सी पर बैठा था और एक पृष्ठ पर कुछ लिख रहा था। उसके हाथ कांप रहे थे।

हनुमान जी ने बताया, "यह युवक, जिसकी आयु 20 वर्ष भी नहीं है, आत्महत्या करने का विचार कर रहा है। क्यों? ... क्योंकि उसकी चित्त काया उसकी अन्य चार कायाओं से अधिक शक्तिशाली हो गई है।

"उसकी विवेक काया, जो उसके अन्य किरदारों के साथ संबंध निर्धारित करती है, ने उसे यह कट्टर विश्वास करा रखा है कि उसके माता-पिता उसके जीवन के केंद्रीय किरदार हैं और उनकी इच्छाएँ पूर्ण होने पर ही वह पूर्णता का अनुभव करेगा।

"उसकी छवि एक आज्ञाकारी और समर्पित पुत्र की है। उसके जीवन का एकमात्र उद्देश्य अपने माता-पिता को गौरवान्वित करना रहा है। उसकी संस्कार काया ने सदा इस छवि को बनाए रखने और दृढ़ करने की इच्छा जताई है।

"वह पिछले एक वर्ष से एक परीक्षा की तैयारी कर रहा था। उसकी बुद्धि काया उस दिन के लिए तैयारी कर रही थी जब वह परीक्षा में सफल होकर अपने माता-पिता को सुख देने वाला था और स्वयं पूर्णता का अनुभव करने वाला था।

"आज वह परीक्षा में असफल हो गया है। उसकी बुद्धि, विवेक और संस्कार क्षीण पड़ गए हैं। वे चित्त को सीमा में रखने में असमर्थ हो गए हैं। उनकी पूर्णता की अवधारणा टूट कर बिखर गई है। ये समझ लो कि वे चित्त को कह रहे हैं, 'हम किरदार को पूर्ण करने के प्रयासों में असफल रहे। अब आपको जो करना है करो।'

"उसका चित्त सामने आया भी है तो सबसे चरम इच्छा को लेकर - भौतिक काया को मार डालने की इच्छा। उसका मानना है कि यदि 'पूर्ण' कोई चीज है तो वह निश्चित ही

मिट्टी से बनी भौतिक काया नहीं हो सकती। उसकी भौतिक काया जीने की इच्छा करती है परंतु उस इच्छा को अब किसी अन्य काया का समर्थन प्राप्त नहीं है।"

उर्मी ने कहा, "यह तो बहुत भयानक है, देव। चित्त जब स्वयं सामने आता है तो बहुत बड़ी हानि कर सकता है। क्या चित्त को दृश्यमान करने का कोई हानिरहित ढंग नहीं है?"

हनुमान जी ने कहा, "दिवा-स्वप्न देखना आपके चित्त को जानने का सबसे सरल ढंग है। कल्पना कीजिए कि आपके पास अलौकिक शक्तियाँ हैं। सबसे पहले यह सोच लीजिए कि आप कौन-सी अलौकिक शक्ति प्राप्त करना चाहेंगे। अदृश्य होने की शक्ति? अन्य व्यक्तियों के मन में विचार रोपित करने की शक्ति? अनंत मात्रा में स्वर्ण का स्वामी होने की शक्ति? एक अलौकिक शक्ति चुनें और दिवा-स्वप्न देखें कि आप उस शक्ति के साथ क्या करना चाहेंगे। स्वप्न देखने में कोई कमी न रहने दें। अच्छे-बुरे जो भी विचार आते हैं, आने दें।

"अब इससे विपरीत स्थिति का विचार कीजिए। कल्पना कीजिए कि जीवन ने आपसे सब कुछ छीन लिया है। आपके पास कोई भोजन नहीं है, कोई आश्रय नहीं है, कोई वस्त्र नहीं हैं; आपका अतीत और भविष्य धुमिल है; आपका कोई परिवार नहीं है, कोई मित्र नहीं है, कोई संबंधी नहीं है; आपकी ऐसी कोई छवि नहीं है जिसकी आप रक्षा करना चाहो; आपके पास खोने के लिए कोई सम्मान नहीं है। आप स्वयं को इस स्थिति से ऊपर कैसे उठाओगे? यह एक ऐसी स्थिति है जो एक अतिवादी मनोवृत्ति की मांग करती है। आपका चित्त इस स्थिति का आगे आकर नेतृत्व करेगा।

"आप जब इन दो प्रकार के दिवा-स्वप्नों को देखोगे तो आपको अपने चित्त का परिचय होगा। उसके पश्चात आप अपनी नियमित इच्छाओं पर पड़ने वाले चित्त के प्रभाव को पहचानना शुरू कर देंगे।

"चित्त के प्रकाश में आने पर आप उसे नकारने अथवा उससे भागने का प्रयास करेंगे। आप शर्म, भय, उत्तेजना और क्रोध जैसी शक्तिशाली भावनाओं की शरण लेने का प्रयास करेंगे। यदि आप इन भावनाओं को समझेंगे तो पाएंगे कि इनके पीछे आपकी अन्य चार कायाओं का हाथ है। आप पाएंगे कि आपका संस्कार शर्मिंदा है, आप नहीं; आपकी बुद्धि भयभीत है, आप नहीं; आपका विवेक क्रोधित है, आप नहीं; आपकी भौतिक काया उत्तेजित है, आप नहीं। आप अपनी पाँच कायाओं से बने कारागार से निकलने में सक्षम होंगे।"

अध्याय 11

जागृति विन्यास

थोड़े अंतराल के पश्चात हनुमान जी ने एक प्रश्न के साथ अपनी वार्ता पुनः शुरू की, "एक सुप्त आत्मा और एक जागृत आत्मा के बीच क्या अंतर है?"

उर्मी ने तुरंत उत्तर दिया, "देव, थोड़ी बहुत जागृति भी आत्मा को स्वतंत्रता दे देती है और पूर्ण जागृति आत्मा को पूर्ण मुक्ति दे देती है। स्वतंत्र आत्मा अपनी इच्छा से किसी दृश्य में प्रवेश कर सकती है और अपनी इच्छा से बाहर निकल सकती है। दूसरी ओर, एक सुप्त आत्मा किरदार की पटकथा के अनुसार चलती चली जाती है। किरदार की इच्छाएँ उसकी इच्छाएँ बन जाती है और किरदार के कर्म उसके कर्म।"

उर्वा ने उत्तर दिया, "देव, एक जागृत आत्मा जानती है कि किरदार की इच्छाएँ मूर्खतापूर्ण हैं क्योंकि उन सभी इच्छाओं के मूल में पूर्ण बनने की इच्छा है जो कभी पूर्ण नहीं हो सकती। जागृत आत्मा को पता है कि किरदार परिभाषा से ही अधूरा है। जागृत आत्मा स्वेच्छा से किसी किरदार के साथ जुड़कर उन भावनाओं के रस का पान करती है जो किरदार के पूर्ण होने के प्रयासों से उत्पन्न होती हैं।"

जानकीरूपा ने उत्तर दिया, "देव, एक सुप्त आत्मा नहीं जानती कि वह आत्मा है। वह स्वयं को मन मानती है। दूसरी ओर एक जागृत आत्मा स्वयं को मन से अलग देख सकती है। "

"सत्य।" हनुमान जी ने कहा, "जब एक मन को सुख-दुःख आदि अनुभव होता है तब उस मन से जुड़ी सुप्त आत्मा को भी वहीं अनुभव होता है। दूसरी ओर एक जागृत आत्मा स्वेच्छा से मन की भावनाओं से अलग हो सकती है। प्रश्न यह है कि एक सुप्त आत्मा को कैसे जागृत किया जाए?"

"मानसिक चतुर्काया को दृश्यमान करके।" जानकीरूपा ने उत्तर दिया, "आपने अभी-अभी मानसिक चतुर्काया के रहस्य का ज्ञान कराकर हमारी आत्माओं को जागृत किया है, देव! अब मेरी आत्मा स्वयं को मन नहीं जान रही। इस क्षण मेरी आत्मा एक मूक साक्षी की तरह मुझे ये शब्द बोलते हुए देख रही है।"

हनुमान जी के चेहरे पर एक शीतल मुस्कान तैर गई। वे शांत स्वर में बोले, "यदि आपकी मानसिक चतुर्काया आपको दृश्यमान हो गई है तो मुझे अपनी वाणी को विराम देना चाहिए। अब आपको और कुछ सीखने की आवश्यकता नहीं है।"

उर्वा ने तुरंत कहा, "नहीं, देव। मानसिक चतुर्काया अभी दृश्यमान नहीं हुई हैं।"

जानकीरूपा ने अपने कथन को सुधारते हुए कहा, "हाँ, देव। मेरी मानसिक चतुर्काया भी भौतिक काया की तरह स्पष्ट रूप से दृश्यमान नहीं हुई हैं। अभी केवल उनकी रूपरेखा दिखाई देनी शुरू हुई है। वह भी बहुत धुँधली है।"

हनुमान जी ने कहा, "मैंने आपको मानसिक चतुर्काया के बारे में मूल तकनीकी ज्ञान दे दिया है। अब आपको इसका अभ्यास शुरू करना होगा। किसी भी इच्छा पर कार्य करते हुए उस इच्छा के स्रोत को उजागर करने का अभ्यास। आप पाएंगे कि हर इच्छा के पीछे आपकी एक या एक से अधिक कायाओं का हाथ होता है। जैसे एक नन्हा बच्चा अपनी भौतिक काया की क्रियाओं से परिचित होने का प्रयास करता है वैसे ही आपको अपनी मानसिक कायाओं से परिचित होने का प्रयास करना है। अभ्यास के पश्चात आपको अपनी मानसिक चतुर्काया स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगेंगी और आप मेरी सहायता के बिना भी विभिन्न किरदारों में प्रवेश कर पाएंगे।"

उर्वा ने उत्साह से कहा, "मुझे उसी दिन की प्रतीक्षा है, देव। सबसे पहले मैं बाहरी समाज के किसी मनुष्य के किरदार में प्रवेश करूंगा। मैं जानना चाहता हूँ कि वे जन अज्ञान के अंधकार में क्यों रहते हैं? मैं लालच, अहंकार और अज्ञानता के उस उच्च स्तर का अनुभव करना चाहता हूँ जिसमें बाहरी समाज डूबा हुआ है।"

उर्मी ने उर्वा की ओर एक अप्रिय दृष्टि डाली और तत्पश्चात चिरंजीवी गुरु को संबोधित करते हुए बोली, "देव, मैं अन्य किरदारों में प्रवेश करने को लेकर आशंकित हूँ। यदि मेरी आत्मा किसी अज्ञानी किरदार में फँस गई तो क्या होगा? मुझे उस किरदार से मुक्त होने के लिए गुरु खोजने और परम ज्ञान प्राप्त करने की लंबी प्रक्रिया को पुनः दोहराना होगा।"

उर्मी की आशंका ने उर्वा के उत्साह पर पानी फेर दिया। वह हताशा के स्वर में बोला, "देव, उर्मी की यह आशंका उचित है। मेरी आत्मा को किसी दूसरे किरदार में प्रवेश करने के लिए 'उर्वा' नामक किरदार द्वारा अर्जित स्मृतियाँ और ज्ञान तो उर्वा के पास ही छोड़ना पड़ेगा। जैसे ही मैं एक लालची और अज्ञानी किरदार में प्रवेश करुंगा, मैं विभिन्न किरदारों में प्रवेश करने का ज्ञान भी खो दूंगा। क्योंकि वह ज्ञान तो 'उर्वा' के पास है, लालची किरदार के पास नहीं। मैं लालची किरदार से बाहर नहीं आ पाऊँगा।"

हनुमान जी एक पल मौन रहे। जब किसी अन्य मातंग ने इस आशंका की पुष्टि या खंडन नहीं किया तो उन्होंने पूछा, "मैंने बताया कि इस समय आपकी आत्मा आपके किरदार की अनुकृति कर रही है। इसका अर्थ है कि जो ज्ञान मैं आपके किरदार को दे रहा

हूँ उसकी अनुकृति भी आत्मा कर रही है। आपके किरदार में यह ज्ञान स्मृति के रूप में संग्रहीत होता है तो आपकी आत्मा में यह ज्ञान किस रूप में संग्रहीत होता है? आपकी ज्ञान प्राप्ति और मानसिक चतुर्काया को दृश्यमान करने की प्रक्रिया में आपकी आत्मा पर क्या प्रभाव पड़ता है?"

उर्मी ने अनुमानित उत्तर दिया, "संभवतः आत्मा की लिंग कुंजी में परिवर्तन आता है, देव।"

उर्वा ने अपना उत्तर दिया, "आत्मा जागृत हो जाती है, देव।"

हनुमान जी ने पूछा, "जागृत आत्मा से आपका क्या तात्पर्य है?"

"एक जागृत आत्मा स्वयं को किसी भी दृश्य से बाहर निकाल सकती है, देव।" उर्वा ने उत्तर दिया, "एक जागृत आत्मा अपने किरदार से दूरी बना सकती है।"

हनुमान जी ने बताया, "जागृत और सुप्त आत्माओं की लिंग कुंजियों में अंतर होता है। आत्मा की लिंग कुंजी के मूल में कर्म और इच्छा की एक ऐसी व्यवस्था होती है जो आत्मा की जागृति निर्धारित करती है। उस व्यवस्था को 'जागृति विन्यास' कहा जाता है।

"आपकी लिंग कुंजी यह निर्धारित करती है कि आप किस दृश्य का अनुभव करते हैं; और उस लिंग कुंजी का जागृति विन्यास यह निर्धारित करता है कि आप उस दृश्य को कितने समीप से अनुभव करते हैं।

"इसे 'विन्यास' कहा जाता है क्योंकि यह एक चर है जिसकी राशि शून्य से सौ तक की न्यूनतम और अधिकतम सीमा के बीच होती है। सुप्त आत्मा का जागृति विन्यास शून्य होता है। आपकी आत्मा का जागृति विन्यास शून्य से अधिक है। इन वार्ताओं के माध्यम से वह बढ़ता भी जा रहा है।"

"देव, बढ़कर क्या इसकी राशि 100 हो जाती है?" उर्वा ने उत्साह से पूछा।

"नहीं।" हनुमान जी ने उत्तर दिया, "जागृति विन्यास 100 हो जाने पर तो आप दृश्य जी ही नहीं पाएंगे। आत्मा की जागृति आपको दृश्य से दूर ले जाती है। कल्पना कीजिए कि आपका किरदार कुछ स्वादिष्ट वस्तु खा रहा है और खाने के समय आपको बोध है कि आप आत्मा हैं, किरदार नहीं। आप स्वादिष्ट वस्तु खाने के अनुभव का सुख नहीं ले पाएंगे। जब आपकी आत्मा की जागृति शून्य होती है तब आप दृश्य के नकारात्मक अथवा सकारात्मक रस का पान पूर्ण रूप से करते हैं।"

"परंतु आत्मा की जागृति शून्य होने पर आत्मा अपनी स्वेच्छा खो देती है, देव। रस का पान बहुत महंगा पड़ता है। आत्मा किरदार में अटक जाती है।" उर्मी बोली।

"अर्थात जागृति शून्य से सौ के बीच होनी चाहिए, न तो सौ होनी चाहिए और न ही शून्य।" उर्वा ने निष्कर्ष निकाला।

चिरंजीवी महायोगी ने अपने अनुभव से बताया, "जब आपकी जागृति 50 से अधिक होती है तो आपको लगता है जैसे दृश्य एक मंच पर चल रहा है और आप मात्र एक दर्शक हैं। जब यह 50 से नीचे चली जाती है तो आप स्वयं को किरदार मानने लगते हैं; आपको ऐसा लगता है जैसे आप दृश्य के एक किरदार हैं, आत्मा नहीं।"

"मुझे लगता है कि मेरी जागृति अभी 10 से 20 के बीच है, देव।" उर्वा ने पूछा, "क्या इन वार्ताओं के अंत तक मेरी जागृति 99 तक पहुँच जाएगी?"

हनुमान जी ने कहा, "एक योगी की आत्मा स्वेच्छा से अपने जागृति विन्यास को 1 से 99 के बीच बदल सकती है। जागृति विन्यास को बदलना एक कुंभकार द्वारा चाक चलाने जैसा है। 99 से शून्य तक जाना भयंकर रूप से सरल है। मैं चाहता हूँ कि आप अपने जागृति विन्यास पर इतनी महारत प्राप्त करें कि दृश्य को जीते समय त्रुटि से भी आपकी जागृति शून्य न हो। यह एक चुनौतीपूर्ण कार्य है क्योंकि आप दृश्य के रसों का पूरी तरह पान करना चाहते हैं जो जागृति के शून्य होने पर ही संभव है। मैं आपको जो ज्ञान दे रहा हूँ वह आपके मन में संग्रहीत करने के लिए नहीं है। यह ज्ञान मानसिक कुश्ती लड़ने के लिए नहीं है। जब आप किरदार बदलना शुरू कर देंगे तो इन वार्ताओं का एक वाक्य भी आपके साथ नहीं होगा। सब कुछ यही रह जाएगा। केवल जागृति विन्यास को बदलने में आपकी महारत आपके साथ रहेगी।"

यह सुनकर युवा मातंगों को ऐसा लगा जैसे उनसे कोई कीमती वस्तु लूट ली गई हो। परंतु क्या? संभवतः चिरंजीवी गुरु से परम ज्ञान प्राप्त करने का उनका अभिमान!

धनुष्क ने उन सभी मातंगों की भावनाओं को व्यक्त करते हुए कहा, "आपके आगमन की प्रतीक्षा में बीते दशक... इस ज्ञान को प्राप्त करने की तैयारी में बीते वर्ष ... इन वार्ताओं को सुनने में बीते घंटे... देव, क्या यह सब हमारी आत्माओं की लिंग कुंजियों में एक छोटा-सा विन्यास बदलने के लिए था?"

"हाँ।" हनुमान जी ने कहा, "जागृति विन्यास को बदलने में महारत प्राप्त करने के पश्चात आप ब्रह्मांड के किसी भी दृश्य को जी सकते हैं। एक बेहतर जीवन में स्थानांतरित होने के लिए तो आपको उसकी भी आवश्यकता नहीं है। देवताओं की सहायता से बेहतर

जीवन पाने के लिए थोड़ी बहुत जागृति पर्याप्त है। अनीता की आत्मा के साथ थोड़ी देर में यही होने जा रहा है - मैं उसे दरिद्रता से भरी दृश्य श्रृंखला से निकालकर समृद्धि से भरी दृश्य श्रृंखला में स्थानांतरित होने में सहायता करने वाला हूँ।"

"परंतु उसे तो परम ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई है, देव। उसकी मानसिक चतुर्काया दृश्यमान नहीं हुई हैं। उसकी आत्मा अचानक जागृत कैसे हो सकती है?" उर्मी ने पूछा।

हनुमान जी ने कहा, "मानसिक चतुर्काया को दृश्यमान बनाने के लिए मुख्य रूप से दो मार्ग हैं। एक ज्ञान का मार्ग है जिस पर आप प्रगति कर रहे हैं। दूसरा भक्ति का मार्ग है जिस पर जाने अनजाने कई किरदार प्रगति कर रहे हैं। अनीता भी उन्ही किरदारों में से एक है। जिन जनों के पास एक शक्तिशाली चित्त काया होती है उन्हें ज्ञान के मार्ग पर चलने का सुझाव दिया जाता है जबकि भक्ति का मार्ग उन जनों के लिए उपयुक्त है जिनके पास एक शक्तिशाली संस्कार काया है।"

“ऐसा क्यों, देव?”

"जो जन सामान्यता के स्तर को छोड़ने से नहीं डरते, जो अनिश्चितता से नहीं डरते, जो अज्ञात के अंधकार में प्रवेश करने का साहस रखते हैं, जो प्रश्न करने वाले अपने मन पर भी प्रश्न कर सकते हैं, वे जन ज्ञान के मार्ग के लिए सही पात्र हैं। एक शक्तिशाली चित्त काया आपको उस परम ज्ञान की प्राप्ति का पात्र बनाती है जो मैं इन वार्ताओं के माध्यम से आपको प्रदान कर रहा हूँ। आप सभी अच्छे ज्ञान-साधक हैं। अधिकतर साधकों की यात्रा शुरू होने से पहले ही समाप्त हो जाती है। वे 'विशेषज्ञ बाधा' को पार करने में विफल रहते हैं। आप उस बाधा को पहले ही पार कर चुके हैं।" चिरंजीवी गुरु बोले।

उर्मी ने पूछा, "देव, ये 'विशेषज्ञ बाधा' क्या है जिसे हमने अनजाने में ही पार कर लिया है?"

उर्वा ने कहा, "मुझे लगता है कि मैं इसके बारे में जानता हूँ। हमारा तन-मन एक उपकरण है जिसके माध्यम से हम इस संसार का अनुभव कर रहे हैं। विभिन्न उपकरण एक ही बात को अलग ढंग से दिखा सकते हैं। हम मनुष्य अहंकार या अज्ञानता के कारण यह मानते हैं कि हम जो देखते हैं वही एक वास्तविकता है। यह मान्यता ज्ञान के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। इस बाधा के कारण हम अपने उपकरण को जानने की बजाय उन चीजों को जानने का निरर्थक प्रयास करते हैं जो हमें इस उपकरण द्वारा अनुभव होती हैं। इस बाधा को पार किया जाना चाहिए।"

"परंतु इसे 'विशेषज्ञ बाधा' नाम क्यों दिया गया है?" उर्मी ने प्रश्न किया।

"कदाचित इसलिए कि हम मनुष्यों को हर चीज का विशेषज्ञ होने का भ्रम होता है।" उर्वा ने अनुमान लगाया और हनुमान जी की ओर आग्रह भरी दृष्टि से देखा।

हनुमान जी ने बताया, "आप किसी भी एक वस्तु का अच्छी तरह से अध्ययन करके पूरे ब्रह्मांड के रहस्यों को जान सकते हैं। मान लीजिए कि आपने अपनी पूरी जिज्ञासा शक्ति एक धातु के टुकड़े पर केन्द्रित की। आपको किसी और वस्तु का अध्ययन करने की आवश्यकता नहीं है। बस धातु का एक टुकड़ा आपको पूर्ण सत्य तक पहुँचा सकता है यदि उसका अच्छी तरह से अध्ययन किया जाए। अध्ययन में आई सभी बाधाओं को यदि आप पार करते जाएँ तो आप अध्ययन की सीमा पार कर जाएंगे और उस परम सत्य के साथ एक हो जाएंगे जिसका अध्ययन नहीं किया जा सकता। बाधा तब आती है जब आपको ये लगने लगता है कि आप धातुओं के विज्ञान में एक विशेषज्ञ बन गए है, आपको ये लगने लगता है कि धातुओं के बारे में जो कुछ भी जानने योग्य है उसको आप जान चुके हैं। विशेष रूप से मुख्यधारा में रहने वाले साधकों के लिए इस बाधा को पार करना लगभग असंभव है। कल्पना कीजिए कि आप मुख्यधारा के समाज में रहते हैं और धातुओं के विज्ञान में विशेषज्ञ बन गए हैं। आपका अगला लक्ष्य क्या होगा?"

"धातुओं के विज्ञान में बेहतर से भी बेहतर होते जाना?" उर्वा ने अनुमान लगाया।

"इससे भी बदतर।" हनुमान जी ने मंद स्वर में कहा, "आप अपने ज्ञान का उपयोग अपने और अपने परिवार के भविष्य को सुरक्षित करने, रिश्ते बनाने, समाज में एक छवि बनाने और बनाए रखने के लिए करने लगते हैं। जब आप किसी विषय में विशेषज्ञ बन जाते हैं तो आपकी बुद्धि, विवेक और संस्कार संतुष्टि का रस लेने लगते हैं। वे इस धारणा में बंध जाते हैं कि 'विशेषज्ञ बाधा' के भीतर रहकर ही पूर्णता और परम सुख की प्राप्ति हो सकती है। यदि आपकी चित्त काया की शक्ति अन्य तीन मानसिक कायाओं की संयुक्त शक्ति की तुलना में अधिक है तो आप 'विशेषज्ञ बाधा' पार कर सकते हैं। आप अपने विशेषज्ञता के क्षेत्र की गहराइयों में उतरेंगे तो दर्शन और अध्यात्म को प्राप्त हो जाएँगे। उससे भी अधिक गहराई में उतरेंगे तो आप परम सत्य को प्राप्त हो जाएंगे। एक शक्तिशाली चित्त होने के कारण आप सामान्यता के स्तर को छोड़ पाएंगे, अपने विश्राम क्षेत्र से बाहर निकल पाएंगे, मानवता के सर्वशक्तिमान होने की धारणा से बाहर निकल पाएंगे, जो मन ज्ञान प्राप्त करने के लिए आपको इधर-उधर भटकाता है उस मन को जान पाएंगे, जो मन अन्य वस्तुओं का अवलोकन करता है उसके ऊपर भी अवलोकन का प्रकाश डाल पाएंगे, अपनी अदृश्य मानसिक कायाओं को दृश्यमान कर पाएंगे।"

"देव, चूंकि अंततः लक्ष्य मानसिक चतुर्काया को दृश्यमान करना है, धातुओं और अन्य वस्तुओं के अध्ययन में समय नष्ट क्यों करना? क्यों नहीं सीधे ही मन का अध्ययन

किया जाए?" उर्मी ने प्रश्न किया।

"इससे भी बेहतर, क्यों नहीं सीधे ही आत्मा का अध्ययन किया जाए?" जानकीरूपा ने उर्मी के प्रश्न को बड़ा किया।

हनुमान जी ने कहा, "मन विशेषज्ञ या आत्मा विशेषज्ञ भी सत्य से उतने ही दूर हैं जितने दूर धातु विशेषज्ञ हैं। इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि आपने किस क्षेत्र में ज्ञान बीना है, यदि आपकी बुद्धि, विवेक और संस्कार उस ज्ञान से संतुष्ट अनुभव कर रहे हैं तो आपने 'विशेषज्ञ बाधा' को पार नहीं किया है। ज्ञान के मार्ग पर आपकी यात्रा वास्तव में तभी शुरू होती है जब आप इस महत्त्वपूर्ण बाधा को पार कर लेते हैं।"

उर्मी ने कहा, "देव, अनीता के जीवन के जो दृश्य हमने देखे हैं उनसे प्रतीत होता है कि वह ज्ञान के मार्ग का अनुसरण नहीं कर रही हैं। इसलिए वह तो 'विशेषज्ञ बाधा' में फँस नहीं सकती। वह भक्ति के मार्ग पर चल रही है। क्या भक्ति के मार्ग पर भी साधक को मानसिक चतुर्काया दृश्यमान करके जागृति विन्यास में महारत प्राप्त करनी होती है?"

हनुमान जी ने उत्तर दिया, "भक्ति मार्ग पर भक्त अपनी मूल मानसिक चतुर्काया का त्याग कर देते हैं और नई मानसिक चतुर्काया धारण कर लेते हैं जो सरल होती हैं और पहले से ही दृश्यमान होती हैं।"

"मानसिक चतुर्काया का त्याग? परंतु कैसे, देव? मैं अपनी मानसिक चतुर्काया का त्याग कैसे कर सकती हूँ?"

हनुमान जी ने उत्तर दिया, "सबसे पहले आपको परम श्रद्धा से किसी गुरु या इष्टदेव को समर्पित होना होगा। आपके गुरु अथवा इष्टदेव आपको एक नई बुद्धि काया, नई विवेक काया, नई संस्कार काया और नई चित्त काया प्रदान करेंगे। आपके गुरु अथवा इष्टदेव आपको जीवन जीने के लिए एक नया दृष्टिकोण प्रदान करेंगे, एक सरल मान्यता प्रणाली प्रदान करेंगे। कैसे? चलिए जानते हैं?

"आपकी मूल बुद्धि काया बहुत जटिल है। वह नए-नए भविष्य के लक्ष्यों को निर्धारित करती रहती है और निर्धारित लक्ष्यों में परिवर्तन करती रहती है। आपके गुरु उसको हटाकर आपको एक नई बुद्धि काया देते हैं जिसका एक सरल और अपरिवर्तनीय लक्ष्य होता है। उदाहरण के लिए, स्वर्ग नामक किसी स्थान के योग्य बनने का लक्ष्य-"

"स्वर्ग?" उर्वा ने आश्चर्य प्रकट किया।

"भविष्य का कोई भी लक्ष्य जिसमें आप पूरी तरह से विश्वास करते हैं। वह कुछ भी हो सकता है। अलग-अलग गुरु अलग-अलग लक्ष्य देते हैं।" उर्वा का संदेह मिटाने के पश्चात हनुमान जी ने आगे कहा, "आपकी मूल विवेक काया व्यक्तियों को परिवार, मित्र, समीप के रिश्तेदार, दूर के रिश्तेदार आदि दर्जनों विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत करती है। आपके गुरु आपकी मूल विवेक काया को हटाकर आपको एक नई और सीधी-सादी विवेक काया प्रदान करते हैं जो व्यक्तियों को केवल दो श्रेणियों में वर्गीकृत करती है - वे जन जो आपकी मान्यता प्रणाली को मानते हैं और जो नहीं मानते।

"आपकी मूल संस्कार काया आपकी बहुत सारी छवियाँ बनाती है और बनाए रखना चाहती है। आपके गुरु आपकी मूल संस्कार काया को हटाकर आपको एक नई संस्कार काया देते हैं जो केवल एक छवि बनाए रखना चाहती है - एक अच्छे भक्त की छवि।

"आपकी मूल चित्त काया आपके जीवन में कई तरह से अराजकता लाना चाहती है। आपके गुरु आपको एक ऐसी साधारण चित्त काया देते हैं जिसका अराजकता का विचार केवल एक ही होता है - अपने मन की भी मत सुनो; केवल अपने गुरु की सुनो।

"इस तरह आपके गुरु आपको नई मानसिक चतुर्काया प्रदान करते हैं। क्या आपको अब समझ में आया कि अधिकांश मनुष्य भक्ति मार्ग पर क्यों चलते हैं?"

उर्वा ने उत्तर दिया, "हाँ, देव। नई मानसिक चतुर्काया धारण करने के पश्चात सब कुछ सरल हो जाता है। यदि संसार एक जटिल बहुआयामी रचना है तो नई मानसिक चतुर्काया उसको एक साधारण चित्र में बदल देती हैं।"

हनुमान जी ने कहा, "श्रद्धा आपके संसार को एक श्वेत पटल की तरह बना देती है जिस पर वही दिखाई देता है जो आप देखना चाहते हैं। यह आत्मा को जगाने के लिए एक सरल रास्ता है। सफल या असफल रूप से अधिकतर मनुष्य इस मार्ग पर चल रहे हैं। आपके गुरु कोई भी हो सकते हैं, दृश्य अथवा अदृश्य, सजीव अथवा निर्जीव। कला का कोई क्षेत्र भी आपका गुरु हो सकता है। उदाहरणतः संगीतकार संगीत के भक्त हैं। उनके लिए संगीत एक ऐसा गुरु है जो उनकी मूल जटिल मानसिक चतुर्काया को लुप्त करके उन्हे एक सरल चतुर्काया प्रदान करता है।"

"नई मानसिक चतुर्काया प्राप्त करना एक नए किरदार को प्राप्त करने जैसा है। है ना, देव? क्या सभी भक्तों की आत्माएँ दो किरदारों से जुड़ी होती हैं - एक मूल किरदार और दूसरा गुरु अथवा इष्टदेव द्वारा दिया हुआ किरदार?" उर्वा ने पूछा।

हनुमान जी ने कहा, "हाँ। जैसा कि मैंने पहले समझाया था, जब एक आत्मा समय के सात तारों पर सवार होती है तो वह एक मानव किरदार से जुड़ जाती है। जब आप अपने गुरु को समर्पित होते हैं तो उन समय के तारों में बढ़ोतरी होने लगती है। भक्तों की आत्माओं का समय के 7 से अधिक और 14 या 14 से कम तारों पर स्वामित्व होता है।"

"देव, क्या एक भक्त अपने मूल किरदार से पूर्णतः अलग हो जाता है? क्या भक्त जन अपनी-अपनी मूल मानसिक चतुर्काया पूरी तरह से त्याग देते हैं?"

हनुमान जी ने कहा, "यह आवश्यक नहीं है। कुछ भक्त अपनी मूल मानसिक चतुर्काया को पूरी तरह त्याग देते हैं और कुछ नहीं त्याग पाते। इस आधार पर भक्ति का मार्ग भी दो उपमार्गों में विभाजित हो जाता है - 'अनुरागशील भक्ति' और 'अनुशासनशील भक्ति'।

"अनुरागशील भक्ति के मार्ग पर भक्त अपनी मूल मानसिक चतुर्काया से पूरी तरह अलग नहीं हो सकते। यद्यपि वे हर समय दत्तक चतुर्काया से जुड़े रहने का प्रयास करते हैं परंतु कभी-कभी कमजोरी के ऐसे क्षण आते हैं जब वे अपनी मूल चतुर्काया द्वारा उत्पन्न इच्छाओं की पकड़ में आ जाते हैं। ऐसा होने पर वे अपराधबोध अनुभव नहीं करते क्योंकि वे अपने देवता या गुरु से अत्यधिक प्रेम करते हैं। उनका मानना है कि उन्हें कभी-कभी भटकने की छूट है। वे मानते हैं कि स्वयं के प्रति कठोरता से अधिक महत्त्वपूर्ण है प्रेम और सत्यता।"

"परंतु यदि वे अपने गुरु अथवा देव का अच्छे से अनुसरण नहीं करते तो वे भक्त कहाँ हुए? यदि वे अपने गुरु अथवा देव द्वारा प्रदत्त मानसिक चतुर्काया से स्वयं को पूर्णतः नहीं जोड़ पाते तो उनकी आत्मा जागृत कैसे होती है, देव?" उर्मी ने पूछा।

"मूल मानसिक चतुर्काया और प्रदत्त मानसिक चतुर्काया के बीच कोई आत्मा इधर से उधर होती रहती है तो उसमें जागृति आने लगती है। उसे बोध आ जाता है कि वह न यह है, न वह है। उसे बोध हो जाता है कि वह मन से अलग है। उसे अपनी स्वेच्छा शक्ति का बोध हो जाता है जिसका प्रयोग करके वह विभिन्न किरदारों से जुड़ सकती है।" चिरंजीवी गुरु ने उत्तर दिया।

उर्मी ने कहा, "देव, इसका अर्थ है कि जो भक्त भक्ति मार्ग पर असफल हो जाते हैं उनकी आत्मा भी जागृत हो सकती है!"

हनुमान जी ने कहा, "नहीं, आपने इसे ठीक से नहीं समझा। सबसे पहले भक्त को अपने गुरु द्वारा प्रदत्त मानसिक चतुर्काया को सफलतापूर्वक अपनाना होता है। उसके

पश्चात ही अपनी मूल मानसिक चतुर्काया को त्यागने का प्रश्न आता है। अनुशासनशील भक्ति के मार्ग पर चलकर आप मूल चतुर्काया का पूर्णतः त्याग कर पाते हैं। वहीं अनुरागशील भक्ति के मार्ग पर आप अधिकतम समय प्रदत्त चतुर्काया में रहते हैं और कभी-कभी मूल चतुर्काया में चले जाते हैं।

"यदि आप अनुरागशील भक्ति के मार्ग का पालन कर रहे हैं तो आपको एक बात ध्यान रखनी चाहिए। एक अपराधबोध से ग्रस्त भक्त होने से अच्छा है भक्त न होना। कभी-कभी आप यदि अपनी मूल मानसिक चतुर्काया की इच्छाओं की जकड़ में आ जाएँ तो आपके हृदय में सच्चाई होनी चाहिए, न कि अपराधबोध। अपराधबोध को छिपाने के प्रयास में आप एक ऐसा ढोंगी और कट्टरपंथी बन सकते हैं जो दूसरों को उपदेश देने में सुख पाता है किंतु स्वयं उन उपदेशों का पालन करने में विफल रहता है।

"अनुशासनशील भक्ति के मार्ग पर चलने वाले भक्त हर नियम का पालन कठोरता से करते हैं। वे अपने जीवन में इतने अनुशासित होते हैं कि वे स्वयं को अपनी मूल मानसिक चतुर्काया से अलग कर लेते हैं। वे अपनी दत्तक मानसिक चतुर्काया को पूरी तरह से अपना लेते हैं। उनके जीवन का हर पहलू सरल होता है, फिर चाहे वह उनके भविष्य की योजनाएँ हों, उनके रिश्ते हों, उनकी नियमितता की धारणा हो अथवा उनकी अराजकता की धारणा।"

उर्वा ने कहा, "किंतु देव, इसका अर्थ यह भी है कि वे खुलकर नहीं सोच सकते। उनकी बुद्धि और विवेक को न्यूनतम कर दिया गया है। उनकी मान्यता प्रणाली बहुत कठोर है। उनकी सोच संकीर्ण है। आत्मा की जागृति के लिए सोच का विस्तार होना चाहिए, संकीर्ण मन से कैसे आत्मा की जागृति हो सकती है?"

"उनके मन को संकीर्ण कहना उचित नहीं हैं। हाँ, यह कह सकते हो कि उनका मन न्यून है। संकीर्ण मन एक छोटे गंदे कमरे की तरह होता है वहीं न्यून मन एक छोटी-सी प्राकृतिक गुफा की तरह होता है।" हनुमान जी बोले।

उर्वा ने कहा, "देव, यदि हम किसी मनुष्य को लंबे समय तक एक छोटी प्राकृतिक गुफा के भीतर बंद कर दें तो वह गुफा भी एक गंदे कमरे की तरह हो जाएगी।"

चिरंजीवी गुरु ने कहा, "मैं आपकी बात समझता हूँ। हाँ, अनुशासनशील भक्ति के मार्ग पर एक संकट है - आप प्रदत्त मानसिक कायाओं के ठीक उस तरह आदी हो सकते हैं जैसे एक मेंढक छोटे जलकुंड में रहने का आदी हो जाता है। आत्मा को मूल मानसिक कायाओं से निकालकर प्रदत्त मानसिक कायाओं में स्थानांतरित करना किसी बंदी को बड़े

कारागार से छोटे कारागार में स्थानांतरित करने जैसा है। आत्मा तब जागृत होती है जब गुरु सही समय आने पर प्रदत्त चतुर्काया को भी नष्ट कर देते हैं।

"गुरु द्वारा दी गई मान्यता प्रणाली एक कारागार की कोठरी की तरह होती है। गुरु पहले आपको एक छोटी-सी कोठरी में प्रवेश कराते हैं और तत्पश्चात सही समय पर उस कोठरी को तोड़ देते हैं। ऐसा केवल आपके गुरु ही कर सकते हैं, कोई और नहीं। क्योंकि यदि आपके गुरु के अलावा किसी और ने आपकी मान्यता प्रणाली पर प्रहार करने की चेष्टा की तो आपका मन उस चेष्टा को किसी भी मूल्य पर सफल नहीं होने देगा। इसलिए यदि आपने बिना गुरु के किसी मान्यता प्रणाली में प्रवेश किया है तो मृत्यु भी आपकी आत्मा को मन से मुक्त नहीं कर सकती।"

"क्या अनीता के कोई गुरु हैं, देव? मुझे तो ऐसा प्रतीत हुआ कि उसके कोई गुरु नहीं हैं।" उर्मी ने अनीता के प्रति करुणा व्यक्त की।

हनुमान जी ने बताया, "अनीता गुरुहीन नहीं है। उसका जीवन ही उसका गुरु है। उसके जीवन ने उसे अनुशासनशील भक्ति के मार्ग पर चलाया है। जीवन की परिस्थितियों ने उसे उसकी मूल मानसिक चतुर्काया से अलग कर दिया है। जीवन में चुनौतीपूर्ण स्थितियों से निपटने के लिए उसे एक सरल और न्यूनतम मानसिक चतुर्काया को अपनाना पड़ा।

"बुरा समय आने से पहले उसकी बुद्धि काया के पास भी भविष्य की बहुत सारी योजनाएँ थी। अब उसकी योजना केवल अगले भोजन का प्रबंध करने तक सीमित है। इसी तरह उसकी विवेक काया भी न्यून हो गई है। सभी मित्रों और रिश्तेदारों ने उससे मुख मोड़ लिया है; उसके पति और उसके बच्चे के अलावा उसके जीवन में कोई रिश्ता नहीं बचा है। और उसकी संस्कार काया की बात करें तो वह केवल एक छवि बचाने का प्रयास कर रही है - एक साधारण मध्यमवर्गीय व्यक्ति होने की छवि। इस अशांत समय में उसके जीवन में कुछ भी नियमित और सुसंगत नहीं है। उसकी चित्त काया भी न्यून हो गई है। अब उसकी चित्त काया के पास एक ही इच्छा है - आत्महत्या की इच्छा।

"उसके अदृश्य गुरु अर्थात उसके जीवन ने उसको सफलतापूर्वक एक न्यून मानसिक चतुर्काया में बंद कर दिया है। जागृति की चिंगारी प्रज्वलित करने के लिए और उसकी आत्मा को दु:खी जीवन से सुखी जीवन में स्थानांतरित करने के लिए अब केवल उस न्यून मानसिक चतुर्काया पर प्रहार की आवश्यकता है। उसके द्वारा अपनाई गई न्यून मानसिक चतुर्काया में से कम से कम एक को चकनाचूर करना होगा। ऐसा केवल उसके अदृश्य गुरु ही कर सकते हैं। मैं तो केवल एक हल्का-सा प्रभाव डालकर ऐसा करने में

सहायक बनूँगा। वह अब एक आधुनिक विक्रय केंद्र में प्रवेश कर रही है। मैं आपको वहाँ ले चलता हूँ..."

सभी मातंगों ने अपनी आँखें बंद कर लीं। जिज्ञासा की एक चिंगारी ने उर्वा को अपनी आँखें पुनः खोलने पर विवश कर दिया। उसने पूछा, "देव, उसकी आत्मा जागृत होते ही एक बेहतर जीवन में प्रवेश करेगी। परंतु सहस्र जीवनों में से कौन-सा जीवन उसके लिए बेहतर है, यह चुनाव कौन करेगा? या फिर बिना चुनाव किए ही वह किसी भी अन्य जीवन में प्रवेश कर जाएगी? या वह उस विशेष जीवन में स्थानांतरित होगी जिसमें उसके किरदार को गुप्त सोने से भरा एक सन्दूक मिला है?"

हनुमान जी ने शांत स्वर में कहा, "सन्दूक वाले जीवन में नहीं। और ऐसा भी नहीं है कि उसकी आत्मा सहस्र जीवनों में से किसी में भी स्थानांतरित हो जाएगी। वह स्वयं किसी जीवन का चयन करेगी और उसके द्वारा चयन किया हुआ जीवन वर्तमान जीवन से तो बेहतर ही होगा।"

सहस्त्र मील दूर मुख्यधारा के समाज में अनीता नामक महिला ने एक व्यस्त आधुनिक विक्रय केंद्र में प्रवेश किया। वह एक सामान्य महिला लग रही थी। भीड़ में एक गुमनाम महिला। उसके लिए यह अच्छी बात थी कि इस नगर के निवासी अनजान व्यक्तियों को समीप से देखने का झंझट नहीं उठाते थे। लगभग हर किसी के हाथ में पिंगल यंत्र थे। मानव मन की जिज्ञासा को इन यंत्रों ने अवशोषित कर लिया था। अब किसी को कोई अंतर नहीं पड़ता था कि उनके आस-पास क्या हो रहा था। अनीता ने जो घिसे-पिटे विवर्ण कपड़े पहन रखे थे उन पर किसी का ध्यान नहीं जा रहा था। जब तक वह भीड़ का एक गुमनाम भाग थी तब तक कोई उसकी फटी एड़ियों और घिसी पिटी चप्पलों को भी नहीं देखने वाला था।

उसके स्वयं के मन के अलावा इस बारे में कोई तनाव नहीं उठा रहा था कि वह कैसी दिखाई दे रही थी। वह एक सामान्य मध्यमवर्गीय महिला की छवि बनाए रखने के लिए कड़ी मेहनत कर रही थी। एक साधारण गृहिणी की छवि जो एक साधारण दोपहरी में सामान खरीदने निकली थी! उसे इस बात का तनिक भी भान नहीं था कि हनुमान जी उसके भले के लिए उसकी छवि का नाश करने वाले थे।

जब विक्रय केंद्र के सुरक्षाकर्मी ने उसके लिए द्वार खोला तो वह आश्वस्त हुई कि उसकी छवि सुरक्षित थी। केवल वह स्वयं जानती थी कि मार्ग के उस पार भीख मांग रहे भिखारी के पास कदाचित उससे अधिक धन था।

विक्रय केंद्र में प्रवेश करते ही सबसे पहले उसे एक सूचना पत्र दिखाई दिया जिसमें लिखा था कि 500 रुपए का सामान खरीदने पर एक किलोग्राम गेहूँ का आटा या चीनी निःशुल्क थी। चीनी तो उसके लिए एक विशिष्ट पदार्थ था। गेहूँ का आटा आवश्यकता की वस्तु थी इसलिए उसने 500 रुपए का सामान खरीदकर एक किलोग्राम गेंहू का आटा निःशुल्क प्राप्त करने का निर्णय लिया।

उसे आधुनिक विक्रय केंद्र से वे वस्तुएँ चुनने में अधिक समय नहीं लगा जिनको वह खरीदना चाहती थी। उसे पूरी तरह से यह स्पष्ट था कि उसे क्या खरीदना था। विक्रय केंद्र के विभिन्न खानों में रखी विभिन्न वस्तुओं को देखना भी उसे पाप लग रहा था क्योंकि उसके पास उन्हे खरीदने के लिए पैसे नहीं थी। जब उसने लगभग 450 रुपए का सामान चुन लिया तब वह उस खाने के पास पहुँची जहाँ पर विभिन्न प्रकार की दालें रखी थी।

यहाँ आकर उसकी स्पष्टता भंग हो गई। वह असमंजस में थी क्योंकि उसे सामान के कुल मूल्य को 500 के आंकड़ें तक पहुँचाना था और 500 से अधिक भी नहीं करना था। आंकड़े का 500 रुपए से 10 रुपए अधिक होना भी उसके सामर्थ्य से बाहर था। यदि वह एक प्रकार की दाल चुनती तो आंकड़ा 500 से कम बैठ रहा था और दूसरे प्रकार की दाल चुनती तो आंकड़ा 500 से अधिक जा रहा था।

जब वह दालों की विभिन्न पोटलियों पर मूल्य देखने में व्यस्त थी तब उसे पास वाले खाने पर किसी की उपस्थिति अनुभव हुई। उसका तन जड़वत हो गया। उसे अपने पास में खरीददारी कर रहे ग्राहक को देखने के लिए अपनी गर्दन उठाने का भी साहस नहीं हुआ। एक सामान्य मध्यमवर्गीय गृहिणी की उसकी छवि को संकट अनुभव हुआ। यदि कोई उसको इतनी सारी दाल की पोटलियों को पलट-पलटकर मूल्य देखते हुए देखता तो क्या सोचता? उसने प्रार्थना और आशा की कि उसके पार्श्व वाला ग्राहक उससे दूर चला जाए ताकि वह शांति से दाल की पोटली का चुनाव कर सके।

सुदूर जंगल में ध्यान मुद्रा में बैठे मातंग इस दृश्य को विक्रय केंद्र में स्थित किसी मकड़ी अथवा मक्खी के माध्यम से देख रहे थे। उन्होंने देखा कि अनीता के पास कोई नहीं खड़ा था। उसे अपने पास किसी के उपस्थित होने का भ्रम हो रहा था। यह सब उसका मन गढ़ रहा था - किसी के उपस्थित होने की अनुभूति, तनाव, लज्जा, हीन भावना, घबराहट और विभिन्न भावनाओं का भयानक मिश्रण। कदाचित हनुमान जी इस भ्रम की रचना का निमित्त बन रहे थे। या फिर वे वास्तव में वहाँ पर किसी रूप में उपस्थित थे?

अनीता अब और अधिक तनाव सहन नहीं कर सकती थी। उसने अपनी गर्दन उठाकर उस अनजान को देखने का निर्णय लिया जो वहाँ था ही नहीं। अपने अकड़े हुए तन

में तनाव कम करने के लिए उसने जड़वत मुद्रा त्यागी और अपने पैर टटोले।

अचानक वह तन का संतुलन खो बैठी। कई घटनाएँ एक साथ घटित हुईं - अनीता के हाथ लगने के कारण दाल की कुछ पोटलियाँ नीचे गिरकर फट गईं; उसका एक पैर दूसरे पैर पर चढ़ गया और उसकी घिसी-पिटी चप्पल टूट गई; भूमि पर बिखरी दाल पर उसके पैर फिसल गए और वह धड़ाम से नीचे गिर गई; विक्रय केंद्र के कर्मचारी दौड़ते हुए घटनास्थल पर पहुँचे।

वह शर्मिंदा थी। उसकी मध्यमवर्गीय सामान्य गृहिणी की छवि भंग हो गई थी। उसके हाथ में टूटी चप्पल थी और आँखों में आँसू। उसके साथ ऐसा क्यों हो रहा था? उसने जीवन में ऐसा क्या अनुचित किया था कि उसके दु:ख समाप्त होने का नाम नहीं ले रहे थे? कुछ भी उसके नियंत्रण में क्यों नहीं था? देवता उसके प्रति इतने क्रूर क्यों थे? क्या उसे एक सामान्य जीवन जीने का अधिकार नहीं था? बहुत सारे बुरे जन कितना सुख समृद्धि का जीवन जीते हैं। तो फिर एक भली महिला को किस बात का दंड मिल रहा था? उसका अपराध क्या था?

आँसू उसकी गाल से होते हुए नीचे गिरने लगे। उसने आँसू रोकने या पोंछने का प्रयास भी नहीं किया। विक्रय केंद्र के कर्मचारियों को भी कुछ नहीं सूझ रहा था कि वे क्या करें। वे बस खड़े-खड़े यह विचित्र दृश्य देख रहे थे। अनीता में अब इतनी ऊर्जा नहीं बची थी कि वह अपनी छवि को बचाने की चिंता करे। उसने जैसे जीवन से हार मान ली थी।

और तत्पश्चात वह क्षण आया जिसकी प्रतीक्षा बड़े-बड़े तपस्वी वर्षों तक करते हैं। उसकी आत्मा उसके मन से अलग हो गई। उसे लगा जैसे भूमि पर बैठकर रो रही महिला से उसका कोई लेना-देना नहीं था। लज्जा, दु:ख, पीड़ित होने की भावना ... कुछ भी तो उसका नहीं था। वह मात्र एक दर्शक थी। वह केवल एक साक्षी थी जिसके पास इस सारे नाटक से बाहर निकलने का विकल्प था।

"उसको अच्छे से देखो।" हनुमान जी की वाणी में उनके मातंग शिष्यों को निर्देश मिला, "उसकी आत्मा अब किरदार बदलने जा रही है। उसके वर्तमान किरदार को 'अनीता-728' नाम दे देते हैं। उसकी आत्मा 'अनीता-849' किरदार में प्रवेश करने वाली है। आपको वे दोनों किरदार दिखाई देंगे। आप दोनों किरदारों के बीच का अंतर भी देख पाएंगे। सबसे रोचक बात यह है कि अनीता के ये दोनों किरदार आत्मा के स्थानांतरण से पूरी तरह अनभिज्ञ रहेंगे।"

दृश्य क्षणिक अंधेरे में गुम हो गया और उस अंधेरे से एक नया दृश्य उभरा - जिस जगह पर दाल बिखरी थी और टूटी चप्पल के साथ एक महिला रो रही थी, वह जगह पूरी

तरह साफ-सुथरी थी। वहाँ पर किसी प्रकार की दुर्घटना होने का कोई संकेत भी नहीं था।

यह दृश्य भी अचानक समाप्त हो गया और वहाँ से कुछ दूर उसी समय का एक अन्य दृश्य दिखाई दिया - अनीता विक्रय केंद्र से बाहर निकल रही थी। उसके एक हाथ में दो थैले थे। एक थैले में किराने का सामान था जो उसने अभी-अभी खरीदा था और एक अन्य छोटा सुंदर झोला था जो आधुनिक महिलाएँ प्रायः रखती हैं। उस छोटे झोले से उसने वह पिंगल यंत्र निकाला जिसकी घंटी बज रही थी।

उधर हनुमान जी की दिव्य वाणी में मातंगों को निर्देश मिला, "इस महिला के कपड़े, पैर और माथे पर ध्यान दीजिए।"

इस दृश्य में उपस्थित अनीता नामक महिला उस अनीता नामक महिला जैसी ही थी जो अन्य दृश्य में गिर पड़ी थी। अंतर केवल इतना था कि इस अनीता ने अलग कपड़े पहने हुए थे, इसके पैरों में घिसी-पिटी चप्पल नहीं थी, यह अनीता नंगे पाँव थी, इसके माथे पर लाल तिलक सुशोभित था।

हनुमान जी ने कहा, "जिस महिला को आप देख रहे हैं वह अनीता-849 है, अनीता-728 नहीं। वह घर से नंगे पांव आई थी क्योंकि वह विक्रय केंद्र में जाने से पहले एक मंदिर में जाना चाहती थी। उसके माथे पर लाल तिलक उस मंदिर के पुजारी ने लगाया है। विक्रय केंद्र के भीतर गिर पड़ने की दुर्घटना उसके साथ घटित नहीं हुई; वह अनीता-728 के साथ घटित हुई थी। उसकी अनीता-728 से भिन्न स्मृतियाँ हैं, भिन्न जीवन है, भिन्न अतीत है। ये दो किरदार, अनीता-728 और अंकिता-849, दो समानांतर मार्गों की तरह हैं। इन किरदारों के मध्य स्मृति आदि की कोई अदला-बदली नहीं हुई है। ये दोनों किरदार एक दूसरे से पूरी तरह स्वतंत्र हैं। केवल अनीता की आत्मा ने एक किरदार से दूसरे किरदार में प्रवेश किया है। दोनों किरदार दरिद्रता से जूझ रहे थे। दोनों दुःख के मारे थे। जिस किरदार को आप देख रहे हैं, अनीता-849, उसको अभी एक शुभ समाचार मिलने वाला है। उसका जीवन दरिद्रता से बाहर निकलने वाला है..."

मातंगों ने अनुमान लगाया कि अनीता को वह शुभ समाचार उसी पिंगल यंत्र के द्वारा मिलने वाला था जो उसने अपने झोले से निकालकर अपने कान से लगाया था। उनका अनुमान सही था।

वह पिंगल यंत्र के द्वारा अपने आनंदित पति से बात कर रही थी। नहीं, समाचार यह नहीं था कि उनके घर में गुप्त स्वर्ण मिला था। समाचार इससे भी अच्छा था - उसके पति का एक पैतृक भूमि पर अधिकार था जिससे वह अभी तक अनजान था। उसके चाचा का परिवार लंबे समय से उस भुला दी गई पैतृक संपत्ति पर अधिकार पाने के लिए न्यायिक

लड़ाई लड़ रहा था। उसी भूमि का एक भाग अनीता के पति के नाम आ गया था। उस भाग का मूल्य उसके पूरे ऋण से कहीं अधिक था।

एक पल के लिए तो उसे विश्वास ही नहीं हुआ। दुःख भरे लंबे वर्षों के पश्चात इस तरह का शुभ समाचार असत्य जान पड़ा। समाचार सुनते ही पहले उसके मुख से कुछ अस्पष्ट बोल निकले और तत्पश्चात आनंद की एक चीख और तत्पश्चात निकले उसकी आँखों से अश्रु। वह तुरंत घूमी और वापिस मंदिर की ओर चल पड़ी। उसे अपने देवता का आभार जो व्यक्त करना था। उसे कहाँ पता था कि उसके देवता हनुमान जी वहीं पर उपस्थित थे जहाँ पर वह थी। वह सपने में भी नहीं सोच सकती थी कि हनुमान जी और उनके शिष्य इस दृश्य को देख रहे थे।

दृश्य समाप्त हो गया। मातंगों ने अपनी आँखें खोल लीं। उर्मी ने पूछा, "किंतु देव, पहले वाले किरदार का क्या हुआ? मेरा अर्थ अनीता-728 से है जिसको अनीता की आत्मा ने त्यागा है?"

"वह किरदार अभी भी विक्रय केंद्र में चप्पल हाथ में लिए रो रही है। क्या आप उसे देखना चाहेंगे?" हनुमान जी बोले।

"परंतु अब उस किरदार में आत्मा नहीं है, देव। अनीता की आत्मा तो अब अनीता-849 किरदार में है।" उर्मी ने भ्रमित स्वर में कहा।

"आत्माओं की कमी नहीं है। अभिशप्त आत्माओं के झुंड खाली देहों में प्रवेश करने की बाट जोहते रहते हैं।" हनुमान जी ने कहा।

उर्मी धक से रह गई और उसका मुख खुला का खुला रह गया। उसके मन में भयानक विचार आया, "असुर? क्या अनीता-728 के किरदार में असुर प्रवेश कर गए हैं? हे भगवान! उसका क्या होगा?"

हनुमान जी ने शांत स्वर में उर्मी के मन में उठे प्रश्नों का उत्तर दिया, "वह किरदार अपनी पटकथा के अनुसार जीवन जीता रहेगा।"

"और वह पटकथा उसे कहाँ ले जाएगी, देव? उस किरदार का हश्र क्या होगा? मैं जानने के लिए उत्सुक हूँ, देव।" उर्मी से पूछा। यद्यपि उत्तर कहीं न कहीं उसके मस्तिष्क में तैर रहा था। उत्तर इतना भयानक था कि वह उसे मानना नहीं चाहती थी।

"मैं आपको भविष्य में ले जाकर अनीता-728 किरदार के जीवन का अंतिम दृश्य भी दिखा सकता हूँ। किंतु आप यह सुखद दृश्य देखने के पश्चात उस दुःखद दृश्य को

देखकर अपना मन दुःखी क्यों करना चाहते हैं?"

"नहीं, देव। मुझे नहीं देखना वह दृश्य। मैं अपने संदेहों की पुष्टि नहीं करना चाहती। काल-आकाश के इस क्रूर रंगमंच पर पता नहीं क्या-क्या पीड़ाजनक घटित हो रहा है।" उर्मी बोली।

"पीड़ाजनक दृश्य एक साधारण आत्मा के लिए पीड़ाजनक है। असुर तो पीड़ा में आनंद प्राप्त करते हैं। अनीता की आत्मा ने सफलतापूर्वक एक बेहतर जीवन में प्रवेश कर लिया है।" हनुमान जी ने संतोषपूर्ण स्वर में कहा।

"देव, अनीता की आत्मा को तो आपने दुःख से निकाल दिया। अन्य आत्माओं का क्या जो पीड़ा के गहरे कीचड़ में फँसती चली जा रही हैं। मन के कारागार से बाहर निकलना हर किसी के लिए संभव नहीं है।" उर्मी ने करुणा भरे ये शब्द कहे।

हनुमान जी ने कहा, "स्थिति इतनी भी निराशाजनक नहीं है, उर्मी। आत्माएँ देवताओं की सहायता अथवा बिना सहायता के प्रायः किरदार बदलती हैं। हाँ, किरदार बदलने की घटना का स्मृति में बद्ध होना दुर्लभ है। अनीता का ही उदाहरण ले लीजिए। उसे पता ही नहीं है कि उसकी आत्मा ने अभी-अभी किरदार बदला है।"

"परंतु जागृति के बिना एक आत्मा किरदार कैसे बदल सकती है, देव?" उर्वा ने जिज्ञासा प्रकट की।

"किरदार बदलने के लिए किसी आत्मा को अपने पूरे जागृति विन्यास पर महारत प्राप्त करना आवश्यक नहीं है। थोड़ी बहुत और कभी-कभी होने वाली आत्मा की जागृति में भी देवता आपको एक बेहतर किरदार और बेहतर जीवन में प्रवेश करने में सहायता कर सकते हैं।" हनुमान जी ने कहा।

"परंतु उस थोड़ी-सी जागृति को प्राप्त करना सरल नहीं है, देव। उसके लिए बड़े पैमाने पर प्रयास करने पड़ते हैं।"

हनुमान जी ने कहा, "यदि भक्तों को थोड़ी बहुत और कभी-कभी होने वाली जागृति न होती तो देवताओं के लिए इस संसार में काम करना और भक्तों की सहायता करना असंभव हो जाता। कभी-कभी होने वाली जागृति प्राप्त करना कठिन नहीं है। जागृति प्राप्त करने के लिए जागृति का अध्ययन आवश्यक नहीं है। जिन जनों ने अपने जीवनकाल में एक पुस्तक भी नहीं पढ़ी उनकी आत्मा भी जागृत हो सकती है। जैसा कि मैंने कहा, भक्ति का मार्ग कोई अनजाने में भी चल सकता है। यहाँ तक कि बुरे जन भी जागृत हो सकते हैं यदि उनके जीवन में किसी न किसी रूप में समर्पण का भाव हो। उनकी

आत्मा भी कभी-कभी होने वाली जागृति के कारण बेहतर जीवन में स्थानांतरित हो सकती है।"

"देव, हमारा लक्ष्य ईश्वरीय सहायता के बिना विभिन्न किरदारों में प्रवेश करने की क्षमता प्राप्त करना है। तो भी मुझे कभी-कभी होने वाली जागृति के बारे में जानने की जिज्ञासा है। कृपा इसके बारे में विस्तार से बताएँ।" उर्वा बोला।

हनुमान जी ने कहा, "इसको समझने के लिए परीक्षा दे रहे छात्र का सादृश्य उत्तम है। कल्पना कीजिए कि आप एक ऐसे विषय की परीक्षा दे रहे हैं जिसमें आप क्षीण हैं। आप अपने से अगले छात्र की अनुकृति कर रहे हैं। वह छात्र अपने आसपास बैठे छात्रों की अनुकृति कर रहा है। इस सादृश्य में आप आत्मा हैं। जिस छात्र से आप अनुकृति कर रहे हैं वह आपका किरदार है। अन्य छात्र अन्य आत्माएँ हैं जो उसी दृश्य में उपस्थित हैं।

"और अनुकृति किस चीज की हो रही है? कर्म और इच्छा की। एक परीक्षा में उत्तरों की अनुकृति करना उतीर्ण अथवा अनुतीर्ण होने से जुड़ा है। परंतु कर्म और इच्छा की अनुकृति करना जीवन के सुख-दुःख से जुड़ा है। यदि आपकी आत्मा थोड़ी बहुत भी जागृत है तो आप कर्म-इच्छा की अनुकृति शुचिता से करते हैं; आप केवल उसी कर्म और इच्छा की अनुकृति करते हैं जिसकी आपको बेहतर दृश्यों में प्रवेश करने के लिए आवश्यकता है। दूसरी ओर सुप्त आत्मा आँख बंद करके अनुकृति करती है। इसी कारण सुप्त आत्मा उन्ही दृश्यों में प्रवेश करती चली जाती है जिन दृश्यों में वह किरदार प्रवेश करता है जिसकी अनुकृति हो रही है।

"इस स्थिति पर विचार करें - आप एक आत्मा हैं; आपका किरदार राजा के महल में एक कर्मचारी है; एक अधिकारी आप पर चिल्ला रहा है; आपका किरदार क्रोधित, अपमानित और विद्रोही भाव अनुभव करता है; आपकी आत्मा भी वही अनुभव करती है जो किरदार अनुभव करता है। अर्थात आपकी आत्मा किरदार के कर्म और इच्छाओं की अनुकृति करती है।

"वह अधिकारी आपके किरदार को क्रोधित करता है। वह क्रोध आपके किरदार में विद्रोह करने की इच्छा को जन्म देता है। आपकी आत्मा उस इच्छा की अनुकृति करती है। इसका अर्थ है कि अधिकारी के पास आपकी आत्मा पर एक इच्छा थोपने की शक्ति है। आपकी आत्मा इस शक्ति को कैसे निष्प्रभावी कर सकती है? आपकी आत्मा अधिकारी के प्रभाव से कैसे मुक्त हो सकती है?

"यह सरल है। आपकी आत्मा को किरदार से अलग हो जाना चाहिए। यदि आपका किरदार उस अधिकारी पर चिल्लाना चाहता है तो चिल्लाने दें। आप एक आत्मा हो। आप

केवल साक्षी हो। आप केवल देखते रहते तो कि आपके किरदार के साथ क्या हो रहा है। उस अधिकारी द्वारा आपके किरदार पर चिल्लाना और तत्पश्चात आपके किरदार का वापिस उस अधिकारी पर चिल्लाना किरदार की पटकथा का भाग है। आपकी आत्मा के ऊपर उस पटकथा के अनुसार यात्रा करने का प्रतिबंध नहीं है।

"यदि आपकी आत्मा अर्थात आप इस दृश्य में अपने किरदार के साथ जुड़े रहेंगे तो अधिकारी की आत्मा आपको संक्रमित कर देगी। किसी रोग का संक्रमण नहीं अपितु उससे भी बुरा संक्रमण। बुरे कर्मों का संक्रमण! अधिकारी द्वारा चिल्लाए जाने पर यदि आपका किरदार प्रतिक्रिया दे रहा है तो देने दें। उस प्रतिक्रिया से अपनी आत्मा को अलग रखें।

"आपकी विवेक काया अन्य किरदारों के साथ संबंध बनाना चाहती है और उन किरदारों में उनकी आत्माएँ हैं। और कई किरदारों में अभिशप्त आत्माओं अर्थात सुरों और असुरों का आना-जाना भी है। उस अधिकारी की आत्मा की तरह उन सभी किरदारों की आत्माओं के पास आपकी आत्मा पर कर्म और इच्छाओं का संक्रमण करने की शक्ति है। यदि आप उस संक्रमण से बचे रहे तो आप बेहतर से बेहतर जीवन में स्थानांतरित होते रहेंगे। यदि सभी आत्माओं से स्वयं को संक्रमित होने से नहीं बचा सकते तो कम से कम उन आत्माओं से स्वयं को अवश्य बचाएँ जिनके साथ आपका एकपक्षीय रिश्ता है।

"एक अच्छे व्यक्ति और एक बुरे व्यक्ति के बीच कोई भी मिलन भावनात्मक रूप से एकपक्षीय ही होता है। बुरा व्यक्ति उतना भावनात्मक नहीं होता जितना कि एक भला व्यक्ति होता है। बुरे व्यक्ति यांत्रिक रूप से चिल्लाते हैं, बिना किसी भावना के। बुरे व्यक्तियों का प्रेम भी बनावटी और यांत्रिक होता है। भले जन ही वास्तविक भावनाओं में बहते हैं और बुरे जनों के बुरे कर्मों से संक्रमित हो जाते हैं। परिणामस्वरूप भले जन दुःख झेलते हैं और बुरे जन विलासिता का आनंद लेते हैं।

"मैं पुनः स्पष्ट करना चाहता हूँ - अपने किरदार से अलग होने का अर्थ निष्क्रियता या उदासीनता नहीं है। आपका किरदार प्रतिक्रिया देता है या नहीं देता है, वह किरदार का मन निर्धारित करेगा। बस आपकी आत्मा को मन के इस निर्णय से अलग रखें।

"अच्छे से अनुकृति करने का एक और महत्त्वपूर्ण पहलू है - अच्छे से संशोधन करना। पुनः उस छात्र की कल्पना करें जिसकी आप अनुकृति कर रहे हैं। वह अपना उत्तर लिखता है, आप उसकी अनुकृति कर लेते हैं, परंतु फिर वह छात्र अपने उत्तर को संशोधित कर लेता है। पहली बार अनुकृति करना पर्याप्त नहीं है। जब वह अपने उत्तर में संशोधन करता है तो आपको भी संशोधन करना चाहिए। और हम यहाँ बहुत सारे संशोधनों के बारे में बात कर रहे हैं। इच्छाओं की बात करें तो मानव मन बहुत सारे संशोधन करता है क्योंकि

उसकी "पूर्ण" की अवधारणा बदलती रहती है और उसके साथ उसकी इच्छाओं में संशोधन होता रहता है।

"आपके मन के लिए तो इच्छाएँ केवल विचार हैं। उन विचारों को ग्रहण करना और त्यागना श्वास लेने की प्रक्रिया की तरह है; मानव ताजी हवा की श्वास भरते हैं और प्रसंस्कृत हवा की श्वास छोड़ते हैं। यदि इच्छा रूपी विचार मन में गहरे चले गए हैं तो आपका मन उन्हें नींद के दौरान त्याग देता है। परंतु आत्मा उन इच्छाओं की अनुकृति कर लेती है, उसका क्या? मन यदि इच्छाओं में संशोधन करता है तो आत्मा को भी करना चाहिए। मन यदि इच्छाओं का त्याग करता है तो आत्मा को भी करना चाहिए। जब मन सो जाता है तो आत्मा स्वप्नलोक में उन इच्छाओं को त्यागने के लिए जाती है जिन्हें मन पहले ही त्याग चुका है। एक आत्मा के लिए यह उतना सरल नहीं है जितना कि मन के लिए है। आत्मा के लिए इच्छाएँ केवल विचार नहीं हैं। आत्मा को स्वप्नलोक में उपस्थित किरदारों के साथ जुड़कर उन इच्छाओं को जीना पड़ता है।

"ऐसा करने के लिए आत्मा का जागृत होना आवश्यक नहीं है। ऐसा हर मानव की आत्मा प्रत्येक रात्रि करती है। क्यों? किरदार के प्रति अपने जुड़ाव के कारण। एक साधारण मनुष्य की आत्मा एक ही किरदार के साथ जुड़े रहना चाहती है। यदि वह उस किरदार द्वारा त्यागी जा चुकी इच्छाओं का त्याग न करे तो उसके लिए उस किरदार के साथ जुड़े रहना असंभव हो जाएगा।

"तो जहाँ तक इच्छाओं की बात है, आपकी आत्मा मन की अनुकृति भी कर लेती है और अनुकृत इच्छाओं का संशोधन भी। परंतु कर्मों का क्या?

"यदि आपके किरदार ने किसी को हानि पहुँचाई है तो आवश्यक नहीं है कि उसे भी हानि पहुँचे। आपके किरदार द्वारा किए गए कार्यों का कई कारणों से परिणाम नहीं मिलता। परंतु आपकी आत्मा उन कार्यों की अनुकृति करते हुए अपने ऊपर कर्म की प्रकाश पोटलियाँ लाद लेती है, उनका क्या? किरदार के कार्य निष्फल रहते हैं तो आत्मा को भी वे कर्म त्यागने पड़ते हैं। परंतु कैसे?

"कल्पना कीजिए कि आपके किरदार ने कुछ किया जिसका परिणाम मृत्यु है। मान लीजिए कि कुछ बाहरी कारकों ने इस परिणाम को रद्द कर दिया और आपके किरदार की रक्षा कर दी। परंतु आत्मा ने तो उस कार्य की अनुकृति करके अपने ऊपर कर्म लाद लिए हैं। उन कर्मों के परिणामस्वरूप आपकी आत्मा को तो मृत्यु के अनुभव से गुजरना होगा। चूंकि वर्तमान किरदार मृत्यु से बच चुका है, आपकी आत्मा को एक बदतर किरदार में

स्थानांतरित होकर मृत्यु का अनुभव करना होगा। इस स्थानांतरण से बचने के लिए यह आवश्यक है कि आत्मा उस कर्म का त्याग करे।

"अवांछित इच्छाओं से छुटकारा स्वप्नलोक में मिल सकता है परंतु कर्मों से नहीं। तो फिर आत्मा ऐसे कर्मों से छुटकारा पाने की चेष्टा कैसे करती है?

"सुप्त और अज्ञानी आत्माएँ ऐसे कर्मों को उन आत्माओं पर लादने की चेष्टा करती हैं जिनसे वे जुड़ी हुई हैं। एकपक्षीय लगाव, जैसा कि मैंने पहले भी कहा, ऐसे कर्मों को अन्य आत्माओं पर लादने का साधन बन जाता है।

"यह सिद्धांत काले जादू जैसे दुष्ट विज्ञान का आधार भी है - 'यदि आप किसी को हानि पहुँचाना चाहते हैं तो उनके मन में आपके प्रति लगाव पैदा करें परंतु आपके मन में उनके प्रति लगाव पैदा न होने दें। इस तरह आपकी आत्मा पर लदे बुरे कर्म उनकी ओर बहने लगेंगे।' परंतु इस तरह दूसरों पर अपने बुरे कर्म उड़ेलने के दीर्घकालिक परिणाम घातक होते हैं। अपने जितने भी बुरे कर्म आपने दूसरों पर उड़ेले हैं वे सारे कर्म एक साथ कभी भी वापिस आपके ऊपर लद सकते हैं। फिर जो पीड़ा होती है उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

"जागृत आत्माओं को अपने बुरे कर्म से छुटकारा पाने के लिए ऐसे बुरे साधनों का सहारा नहीं लेना पड़ता। वे अपने बुरे कर्मों का निस्तारण बड़ी शुचिता से कर सकती हैं। मान लीजिए कि आपको किसी ऐसे बुरे कर्म से छुटकारा पाना है जिसका परिणाम मृत्यु का अनुभव है। आप अपने वर्तमान किरदार को छोड़कर अस्थायी रूप से किसी ऐसे किरदार में प्रवेश कर सकते हैं जो प्राकृतिक रूप से मृत्यु को प्राप्त हो रहा हो।

"ऐसा करने के लिए आपको पूरे जागृति विन्यास पर महारत प्राप्त करना आवश्यक नहीं है। कभी-कभी होने वाली थोड़ी बहुत जागृति में भी आप ऐसा कर सकते हैं और देवता ऐसा करने में आपकी सहायता कर सकते हैं।

"अब जबकि मैंने आपको तकनीकी ज्ञान दे दिया है, अब इस ज्ञान का अभ्यास करने की बारी है। परंतु उससे पहले मैं आपको अंतिम ज्ञान देने के लिए कुछ दृश्यों में ले जाना चाहूँगा।

"दो महत्त्वपूर्ण बातें और।

"पहली बात, ज्ञान प्राप्ति किरदार की इच्छा होती है। यह बात और है कि यह इच्छा आत्मा की जागृति में सहायक होती है। परंतु बहुत सारे साधक ज्ञान के कारण भी किरदार में अटके रह जाते हैं। वे ज्ञान प्राप्ति द्वारा किरदार को पूर्ण बनाने के प्रयास में एक के

पश्चात एक जन्म लेते रहते हैं। किरदार कभी पूर्ण नहीं हो सकता। किरदार को सदा ऐसा लगेगा कि ज्ञान में कुछ कमी रह गई है। क्योंकि किरदार के लिए ज्ञान केवल जानकारी है और जानकारी का कोई अंत नहीं है। मेरा उद्देश्य आपको जानकारी का भंडार उपलब्ध कराना नहीं है। मेरा उद्देश्य है आपकी आत्मा को जागृत करना और उसके लिए आवश्यक है ज्ञान का अभ्यास करके मानसिक चतुर्काया को दृश्यमान करना।

“दूसरी बात, मन जब आत्मा को समझने का प्रयास करता है तो वह और भी भ्रमित हो जाता है। मन को आत्मा के बारे में इसलिए बताया जाता है ताकि आपकी आत्मा यह बोध कर सके कि वह मन नहीं हैं। किंतु बहुत सारे साधक अध्यात्म के नाम पर मन के व्यायाम करते रहते हैं। मन चाहे आत्मा के ऊपर सहस्त्र पुस्तकें पढ़ या लिख ले, मन मन ही रहेगा। मन स्वयं अपूर्ण है इसलिए वह किसी भी विषय को पूर्णता से नहीं समझ सकता। आत्मा को समझने का मन का प्रयास व्यर्थ है। यह प्रयास मन को ऐसी माया में ले जाता है जिसमें वह स्वयं को आत्मा मान बैठता है। आत्मा भी ऐसी वैसी नहीं, अपितु ज्ञानी आत्मा! ऐसे ज्ञान से अज्ञानी होना उत्तम है। यह बात स्पष्टता से समझ लें। मन काल-आकाश के भीतर अस्तित्व में है और भीतर ही रहेगा। केवल आत्मा मुक्त हो सकती है, मन नहीं।

अध्याय 12

निरंतरता

थोड़े अंतराल के पश्चात मातंग पुनः पवित्र गोलार्द्ध में एकत्रित हुए। हनुमान जी ने उन्हें सुलोचना नामक कन्या की कथा सुनाई -

प्रिय मातंगो, यह घटना सुलोचना नामक कन्या के जीवन में कुछ वर्ष पहले घटित हुई थी। जब वह अपनी किशोरावस्था के मध्य में थी, उसको एक ऐसे बुरे व्यक्ति से लगाव हो गया जो उससे एक दशक से भी अधिक बड़ा था। उस लगाव के परिणामस्वरूप उस पर एक क्रूर हमला हुआ; उस क्रूर व्यक्ति और उसके साथियों ने उसका शीलभंग किया।

जब मैं 'बुरा व्यक्ति' कहता हूँ तो किसी बड़े सींग वाले राक्षस की कल्पना न करें। यदि बुरे जनों की पहचान करना इतना ही सरल होता तो संसार में कोई भी उनसे पीड़ित न होता। उनके चेहरे अथवा वाणी से उनके कलुषित मन का भान नहीं होता।

वह व्यक्ति उस विद्यालय में न्यून वेतन का कोई कार्य करता था जिस विद्यालय में सुलोचना पढ़ती थी। उन दोनों के जीवन में कुछ भी तो मेल नहीं खाता था। वह एक संभ्रांत परिवार की कन्या थी और वह एक दरिद्र परिवार का पुरुष। सुलोचना का एक छोटा-सा परिवार था और उस व्यक्ति के परिवार में कई भाई-बहन थे। सुलोचना एक वयस्क भी नहीं थी जबकि वह एक विवाहित व्यक्ति था और उसके तीन बच्चे भी थे। वे अलग-अलग समुदायों से संबंध रखते थे। उनकी मान्यता प्रणालियाँ भिन्न थीं।

फिर सुलोचना का लगाव उस व्यति से कैसे हो गया?

चलिए, इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए एक सामान्य किशोर की पाँच कायाओं के मध्य शक्ति संतुलन की जांच करते हैं।

जैसा कि मैंने पहले बताया, निस्वार्थ सम्बन्धों में बुद्धि काया की कोई भूमिका नहीं होती। बुद्धि की इच्छाएँ भविष्य की सुरक्षा और अतीत के संशोधन से जुड़ी होती हैं। सुलोचना की बुद्धि संभवतः चिल्ला चिल्लाकर उसे उस मार्ग के संकटों से अवगत करा रही थी। किंतु अन्य कायाओं ने उसकी एक न चलने दी।

विवेक काया को जो आकर्षक लगता है, वह लगता है। उसकी इच्छाओं में कोई तार्किकता नहीं होती।

संस्कार काया की बात करें तो किशोरों को एक छवि की रक्षा करनी होती है - प्रगतिशील और आधुनिक होने की छवि।

उनकी चित्त काया अराजकता चाहती है, विद्रोह को बढ़ावा देती है और मूर्खतापूर्ण साहस को जन्म देती है।

जहाँ तक भौतिक काया का प्रश्न है, यौवन जीवन में एक नया आयाम खोलता है; भौतिक काया अपने जैसे रूप की अन्य कायाओं को जन्म देने में सक्षम हो जाती है।

कुल मिलाकर बात यह है कि किशोरों की बुद्धि काया एक ओर होती है और अन्य चार कायाएँ दूसरी ओर। इसके कारण वे कई बार मूर्खतापूर्ण और लापरवाही से भरा व्यवहार करने लगते हैं।

उनकी पाँच कायाओं के मध्य शक्ति संतुलन बिगड़ा हुआ होता है तो भी वे पाँचों मिलकर प्राणघातक और विनाशकारी इच्छाओं को जन्म नहीं देतीं। आखिरकार सभी कायाओं का इरादा नेक ही होता है; वे तो केवल किरदार को पूर्ण करना चाहती हैं। हानि तब शुरू होती है जब उन पर सुरों और असुरों का शासन होने लगता है।

यदि सुर और असुर नहीं होते तो काल-आकाश के भ्रम से अवगत होना सरल होता। एक बार जब आप अपनी पांच कायाओं की प्रकृति को समझ लेते हैं तो सब कुछ यांत्रिक और पूर्वानुमानित प्रतीत होता है। परंतु सुर और असुर पुनः सब कुछ अनिश्चित और अपूर्वानुमेय बना देते हैं। इसलिए अपनी पांच कायाओं को ही समझना पर्याप्त नहीं है। आपको उन सुरों और असुरों को भी दृष्टिगोचर करना होगा जो आपको इस भ्रम में भटकाए रखते हैं।

जैसा कि आप जानते हैं, सुरों और असुरों के पास अपना कोई तन नहीं होता। उनका मन भी न्यून होता है क्योंकि उनकी केवल एक ही इच्छा होती है - सुर जीवन के सकारात्मक रसों का पान करना चाहते हैं और असुर नकारात्मक रसों का। अपनी इच्छाओं को पूरा करने के लिए वे मानव मन में विचार रोपित करके उन पर शासन करने लगते हैं।

आपकी भौतिक काया को मीठे पकवान पसंद हो सकते हैं किंतु यदि आप उनके आदी हैं तो निश्चित ही आपके ऊपर सुरों का शासन है। जब लत आपको हानि पहुँचाने लगती है तो पीड़ा आदि नकारात्मक रस पैदा होते हैं जिनका पान करने के लिए असुर भी चले आते हैं। एक ओर सकारात्मक रस और दूसरी ओर नकारात्मक रस, एक ओर आनंद तो दूसरी ओर पीड़ा, एक ओर लत तो दूसरी ओर स्वयं को हानि पहुँचाना - ये सब सुरों और

असुरों के संक्रमण के स्पष्ट संकेत हैं। सुर और असुर मिलकर एक पाश बना लेते हैं जिसमें आप फँसते चले जाते हैं।

भविष्य की चिंता करना आपकी बुद्धि काया की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। परंतु तब क्या होता है जब सुर और असुर आपकी बुद्धि काया पर शासन करने लगते हैं? जो होता है वह इस बात पर निर्भर करता है कि सुरों और असुरों में से कौन पहले बुद्धि काया को अपने अधीन करता है। यदि पहले सुर ऐसा करते हैं तो वे आपकी चिंता को भंग करके आपको भविष्य के प्रति बेपरवाह बना देते हैं; जब आप अपने भविष्य की सुरक्षा पर ध्यान केंद्रित करने में अक्षम हो जाते हैं तो हताशा जन्म लेती है जिसके रस का पान करने के लिए असुर भी आपकी बुद्धि काया पर शासन करने लगते हैं। यदि पहले असुर ऐसा करते हैं तो वे आपकी भविष्य की चिंता को अतिचिंता और व्यग्रता में बदल देते हैं; और तत्पश्चात अतिचिंता से राहत पाने के लिए आप अल्पकालिक सुख में डूब जाते हैं जिसके कारण सुर भी आपकी बुद्धि काया पर नियंत्रण स्थापित कर लेते हैं।

किसी घटना के बारे में अपराधबोध अनुभव करना और उसका निवारण करने का प्रयास करना भी आपकी बुद्धि काया की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। परंतु सुर अति कर देते हैं। वे आपके अपराधबोध का निवारण करने के इच्छुक नहीं हैं; वे आपसे धर्म-कर्म के कार्य करवाकर आपके अपराधबोध पर आवरण डालते हैं और तत्पश्चात जब चाहे उस आवरण को हटाकर आपको चक्र में बाँधे रखते हैं।

अब आते हैं विवेक काया पर। राग द्वेष सामान्य बात है परंतु यदि आप कुछ जनों के प्रति जुनून के स्तर पर प्रेमासक्त हैं और दूसरों के प्रति कटु घृणा करते हैं तो निश्चय ही आपकी विवेक काया सुरों और असुरों के अधीन है। सुलोचना की विवेक काया भी अधीन थी - वह नए जनों से मित्रता करती थी और उनसे जुनून और भ्रम के स्तर पर प्रेमासक्त हो गई थी। और वह अपने परिवार के सदस्यों से घृणा करने लगी थी।

जीवन में नियमितता लाने का प्रयास करना और एक छवि बनाए रखने का प्रयास करना संस्कार काया का स्वभाव है। परंतु किसी छवि को बनाए रखना बहुत चुनौतीपूर्ण है, विशेषकर तब जब छवि बनाए रखने के लिए कठोर जीवन जीने की आवश्यकता हो। ऐसी छवि को बनाए रखने के लिए बहुत अधिक आत्म-अनुशासन और बलिदान की आवश्यकता होती है। कई बार यह दुविधा भी पैदा हो जाती है कि छवि को बचाया जाए या जीवन सरल बनाया जाए। तब सुर और असुर चुपके से आते हैं और आपको एक समाधान सुझाते हैं - केवल दूसरों को दिखाने के लिए छवि के अनुसार व्यवहार करो अन्यथा नहीं। उदाहरण के लिए यदि आपकी छवि एक अत्यंत धार्मिक व्यक्ति की है तो आप दूसरों को दिखाने के लिए धार्मिक बने रहें; जब दूसरे न देख रहे हों तो जैसा चाहे व्यवहार करें। यह दोहरा जीवन एक

ऐसा पाश बन जाता है जिसका आधा भाग आनंद है और आधा भाग पीड़ा। दूसरों के सामने दिखावा करने से आपको जो सम्मान और प्रसन्नता का रस मिलता है उसका पान सुर करते हैं और दोहरेपन का जीवन जीने से उत्पन्न हुई आत्म-घृणा का कड़वा रस असुर पीते हैं।

कभी-कभी असुर और सुर आपको एक ऐसी छवि से चिपका देते हैं जो आपके सच्चे स्वभाव के बिल्कुल विपरीत है। उदाहरण के लिए, बचपन में सुलोचना को देवी-देवताओं की कहानियाँ सुनना पसंद था। किंतु किशोरावस्था में उसने एक उदारपंथी और आधुनिक व्यक्ति की छवि को अपने ऊपर थोंप लिया। यह उसकी मूल छवि नहीं थी। जिन व्यक्तियों का मूल स्वभाव उदारपंथी होता है वे अपनी छवि को लेकर असुरक्षित अनुभव नहीं करते। सुलोचना अपनी उधार की छवि को लेकर असुरक्षित थी। इसलिए वह सदा अनुष्ठानों और परंपराओं की खिल्ली उड़ाकर अपनी छवि को शक्तिशाली करने का प्रयास करती थी। यदि आपने अपने मूल स्वभाव के विपरीत किसी छवि को पकड़ कर रखा है तो ये आपके संस्कार काया के सुरों और असुरों के अधीन होने का संकेत है।

चित्त काया की बात करें तो जीवन में कुछ हटकर करने की इच्छा स्वाभाविक है। जब आपको लगता है कि आप एक लीक पर ही चलते जा रहे हैं तब आपकी चित्त काया आपको आपके विश्राम क्षेत्र से बाहर निकालती है और लीक से हटकर राह दिखाती है। इससे जीवन में अनिश्चितता और अराजकता तो आती है किंतु यह आपके भौतिक जीवन के लिए भी अच्छा है और आध्यात्मिक यात्रा के लिए भी।

स्वयं को अनिश्चितता और अराजकता में धकेल देना सरल नहीं है। सुर और असुर आपको एक सरल विकल्प सुझाते हैं जिससे आप स्वयं को संकट में डाले बिना अराजकता के सुख का आनंद ले सकते हैं - क्यों न आप अन्य जनों के जीवन में अराजकता पैदा करें? आप छल-कपट के खेल खेलना शुरू करते हैं। आप व्यक्तियों को वस्तु समझकर उनका उपयोग करना शुरू कर देते हैं। आप अपने आसपास के व्यक्तियों के बीच असम्मति पैदा करने लगते हैं। असुर आपकी चित्त काया के माध्यम से निर्दयता और विकृति का रसपान करने लगते हैं। आप पहले अन्य व्यक्तियों के जीवन में आग लगाते हैं और तत्पश्चात बुझाने का नाटक करते हैं। जब वे आपको भला व्यक्ति समझते हैं तो उसमें एक अलग ही रस आता है जिसका पान सुर करते हैं।

सुलोचना की चित्त काया सुरों और असुरों के अधीन नहीं थी। उसके चित्त ने उसे विद्रोही और निर्भीक बनाया जो एक सीमा तक अहानिकर प्रवृत्तियाँ हैं। परंतु उसकी अन्य कायाएँ अर्थात भौतिक काया, बुद्धि काया, विवेक काया और संस्कार काया सुरों और असुरों से दूषित थीं।

उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन जब उसने कक्षाएँ समाप्त होने के पश्चात उस दुष्ट के साथ जाने का निर्णय किया तब उसके भले और बुरे के सहज-ज्ञान को कौन धूमिल कर रहा था? सुरों और असुरों का झुंड।

सुरों और असुरों द्वारा ऐसी भयावह स्थिति को उत्पन्न करना भी एक दुर्लभ घटना है। वे किरदार को इस तरह मृत्यु के कगार पर नहीं लाना चाहते। वे चाहते हैं कि किरदार दीर्घकालीन समय तक सकारात्मक और नकारात्मक भावनाओं के रस का स्रोत बना रहे।

बस थोड़ी बहुत जागृति आवश्यक थी देवताओं द्वारा हस्तक्षेप करने और उसकी आत्मा को इस भयानक अनुभव से बचाने के लिए। इस घटना से एक दिन पहले मैंने एक पल के लिए उसकी माँ की आत्मा में हल्की-सी जागृति देखी। उस पल में मैंने उसके मन में एक विचार रोपित किया जिससे उसे इस घटना का हल्का-सा पूर्वाभास हुआ। परंतु पूर्वाभास की वह लहर इतनी शक्तिशाली नहीं थी कि एक साधारण गृहिणी के मन में हर समय उठने वाले विचारों के अंधड़ से लड़ पाती। वह लहर उसके अन्य विचारों में खोकर रह गई। उसका मन विश्वास नहीं करना चाहता था कि उसकी बेटी ऐसे रास्ते पर भी जा सकती थी। परिणाम यह हुआ कि वह इस पूर्वाभास पर कार्यवाही करने में विफल रही। यदि उसने कार्यवाही की होती तो वह उस दिन स्वयं अपनी बेटी को विद्यालय से लेने जाती और सुलोचना उस राक्षसी व्यक्ति के साथ ना जाती।

उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन भी सुलोचना से जुड़ी सभी आत्माएँ मेरी दृष्टि में थीं। किसी भी आत्मा में जागृति की मंद झिलमिलाहट भी सहायक सिद्ध हो सकती थी। उसके एक शिक्षक की आत्मा में झिलमिलाहट हुई तो मैंने एक विचार रोपित किया। शिक्षक को विचार आया कि कक्षाएँ समाप्त होने के पश्चात जो सांस्कृतिक कार्यक्रम का प्राभ्यास होना था उसके लिए सुलोचना भी रुके। किंतु सुलोचना ने बहाना बनाकर स्वयं को इस प्रस्ताव से मुक्त कर लिया और उस राक्षसी व्यक्ति के साथ चल दी।

हर भयानक घटना से पहले देवता भिन्न-भिन्न प्रकार से आत्माओं को चेतावनी देने का प्रयास करते हैं। उनमें से अधिकतर चेतावनियाँ व्यर्थ जाती हैं। आत्मा की जागृति महत्त्वपूर्ण है; यदि आपकी आत्मा में नहीं तो आपसे जुड़ी किसी अन्य आत्मा में। जहाँ तक आपकी सहायता की बात है, देवता अपनी शक्तियों का उतना ही अधिक प्रयोग कर पाते हैं जितनी अधिक आपकी आत्मा अथवा आपसे जुड़ी अन्य आत्माओं में जागृति होती है। यह देवताओं और बुरी शक्तियों के बीच निरंतर चलने वाला युद्ध है और आत्मा की सुप्तता अथवा जागृति यह निर्धारित करती है कि विजयी कौन होगा।

मैं जो शब्द बोल रहा हूँ वे भी एक देवता के रूप में भक्तों को मेरी एक सहायता है। किंतु क्या ये शब्द उन आत्माओं तक पहुँच पाएंगे जिनको इनकी आवश्यकता है? भक्तों को कैसे पता चलेगा कि यह सहायता उपलब्ध है? इसके अस्तित्व में होने का आभास भी भक्तों को तभी हो सकता है जब उनकी आत्मा में थोड़ी बहुत जागृति हो अथवा वे उन आत्माओं से जुड़े हों जिन्हे इसके बारे में पहले से ही पता है।

दुर्भाग्य से आत्माओं में जागृति आती भी है तो तब जब वे ऐसे भयानक अनुभवों से गुजर चुकी होती हैं और बुरी शक्तियाँ अपने मंतव्य में सफल हो चुकी होती हैं। उसके पश्चात देवता केवल आपके घावों का उपचार करके आपको पुनः सुखी एवं स्वस्थ कर सकते हैं।

सुलोचना पर बुरी शक्तियों का आक्रमण हुआ जिसके पश्चात वह अतिमूर्च्छा में चली गई।

उसकी आत्मा और उसके किरदार के बीच एक विचित्र लगाव विकसित हो गया। उसकी आत्मा न तो किरदार को छोड़ना चाहती थी और न ही उसे जीना चाहती थी। ये समझो कि उसकी आत्मा को उसके किरदार से घिन्न आने लगी थी। सामान्यतः दो ऐसे शत्रुओं के बीच ऐसा लगाव देखने को मिलता है जो न तो एक दूसरे के साथ रह सकते हैं और न ही एक दूसरे के बिना। आत्मा द्वारा स्वयं द्वारा चुने गए किरदार के साथ ही शत्रुता कर बैठना एक दुर्लभ घटना है। आत्मा अपने किरदार को धीरे-धीरे तड़प कर मरते देखना चाहे, ऐसी स्थिति बहुत कम पैदा होती है।

यदि कोई अन्य आत्मा आकर उसके किरदार को जीने लग जाती तो संभवतः उसकी आत्मा उस विकृत जुड़ाव से मुक्त हो सकती थी। ऐसी कई जागृत आत्माएँ हैं जो बुरी शक्तियों के साथ संघर्ष में देवताओं का साथ देती हैं। जब आप अपने जागृति विन्यास पर महारत प्राप्त कर लेते हैं तो आप अपनी इच्छानुसार किरदार बदलने के योग्य हो जाते हैं और देवताओं के सहायक बन जाते हैं। दीर्घा ऐसी ही एक सहायक आत्मा थी।

दीर्घा जब सुलोचना के उपचार के कार्य पर लगने वाली थी तब मैंने उसे चेतावनी दी, "हे दीर्घा! आप एक ऐसे किरदार से जुड़ने जा रही हैं जो भावनाओं की तीव्र ज्वाला में जल रही है। आप एक ऐसे किरदार को जीने जा रही हैं जो अभी-अभी मानव जीवन के सबसे भयानक अनुभव में से होकर गुजरी है। इसलिए हो सकता है कि आप उससे जुडते ही अपनी जागृति खो बैठें। एक बार जब आपका जागृति विन्यास शून्य पर आ जाएगा तो आप भूल जाएँगीं कि आप दीर्घा हैं; आप भूल जाएँगीं कि आप एक ऐसी आत्मा हैं जिसने केवल उपचार के उद्देश्य से सुलोचना के किरदार में प्रवेश किया है; आप स्वयं को सुलोचना मानने

लगेंगी; हम इस समय जो बाते कर रहे हैं उसकी स्मृति भी आपको नहीं रहेगी; सुलोचना की स्मृतियाँ ही आपकी स्मृतियाँ बन जाएंगी।"

उसने उत्तर दिया, "चिंता न करें, देव। मैंने गहन प्रशिक्षण से अपने जागृति विन्यास पर महारत प्राप्त की है। मैं एक साधारण आत्मा नहीं हूँ। मुझे देवताओं के सहायक के रूप में चुना गया है तो मुझमे कुछ तो बात होगी। मैं काल-आकाश के भ्रमजाल में नहीं फसूंगी।"

मैंने उससे कहा, "अहंकार की इसी अंतिम परत को न खोल पाने के कारण ही आप देवताओं के सहायक होने के स्तर पर अटक गई हैं। यदि आप अपनी लिंग कुंजी की यह अंतिम परत भी खोल लेतीं तो या तो आप मोक्ष प्राप्त कर लेतीं या देवत्व को प्राप्त हो जातीं। सुलोचना के उपचार का कार्य प्रारम्भ करने से पहले आपको अपने जागृति विन्यास को ऊपर-नीचे करने का अभ्यास कर लेना चाहिए। मेरा सुझाव है कि आप अभ्यास के तौर पर स्वप्नलोक और मानवलोक के कुछ दृश्यों में प्रवेश करें। यदि आप सुलोचना के किरदार में फँस गईं तो मैं आपको जागृत करने के लिए स्वप्नलोक के दृश्यों का उपयोग करूंगा। और हाँ, कार्य शुरू करने से पहले श्री विष्णु का आशीर्वाद लेना न भूलना।"

सभी सावधानियाँ बरतने और आशीर्वाद लेने के पश्चात दीर्घा ने सुलोचना की पहचान धारण कर ली। एक विशेष दैवीय व्यवस्था के तहत उसने सुलोचना का उपचार प्रारम्भ किया। एक सप्ताह के भीतर सुलोचना को चेत आ गया और कुछ ही महीनों के भीतर वह मानसिक रूप से भी स्वस्थ हो गई। जब उस भयानक घटना की स्मृतियाँ सुलोचना के मन से धूमिल हो गईं, दीर्घा का कार्य समाप्त हो गया। सुलोचना की आत्मा की अपने किरदार के प्रति घिन्न भी समाप्त हो गई थी। इसलिए वह वापिस अपने किरदार को धारण करना चाहती थी।

परंतु दीर्घा सुलोचना का किरदार छोड़ने को तैयार नहीं थी। वह अपने जागृति विन्यास पर पकड़ खो बैठी थी। उसकी जागृति शून्य हो चुकी थी। काल-आकाश के भ्रम में फँसकर उसने स्वयं को सुलोचना मानना शुरू कर दिया था।

जब दो आत्माएँ एक ही किरदार से जुड़ने के लिए लड़ती हैं तो अकल्पनीय पीड़ा होती है। दोनों आत्माओं को अलग-अलग पटकथाओं के अनुसार चलने की इच्छा होती है। आपको ऐसा लगता है जैसे आपको कोई भीतर से चीर-फाड़ रहा है। ऐसा लगता है कि आपके भीतर कोई विस्फोट होने वाला है। चिल्लाने से भी कोई राहत नहीं मिलती। आपका एक भाग दु:ख में रोना चाहता है तो दूसरा भाग पागलों की तरह हँसना चाहता है। चाहे आप सो रहे हैं या जाग रहे हैं, आप स्वयं को सहस्त्रों राक्षसों के भयानक साए में अनुभव करते हैं। कल्पना कीजिए कि आप एक ही साथ भोजन कर भी रहे हैं और नहीं भी कर रहे; ऐसा

लगता है जैसे कोई बलपूर्वक आपके गले में भोजन ठूंस रहा है। कल्पना कीजिए कि आप एक ही समय में चल भी रहे हैं और स्थिर भी हैं; आप अपने तन के भीतर एक भारी चट्टान को अनुभव करते हैं जिसको आप हर जगह घसीटते रहते हैं। कल्पना कीजिए कि आप एक ही समय में श्वास भी ले रहे हैं और आपका दम भी घुट रहा है; ऐसा लगता है जैसे आपकी श्वास नली में वायु नहीं अपितु छोटे-छोटे पत्थर के कण प्रवेश कर रहे हैं। अपनी पलकों को हिलाना भी महाभारत लगता है। शांति का एक पल नहीं! विश्राम का एक क्षण नहीं!

इस भयानक स्थिति से राहत पाने के लिए सुलोचना अपनी मृत्यु की कामना करती थी, ऐसी पीड़ादायक मृत्यु कि उसकी अन्य सभी पीड़ाएँ बौनी हो जाएँ। वह कल्पना करती थी कि उसे उबलते तेल की कढ़ाई में डाल दिया गया है और उस एक असहाय पीड़ा ने उसको अन्य सभी पीड़ाओं से मुक्त कर दिया है। वह कल्पना करती थी कि एक तेजधार चाकू से उसके तन के सहस्र टुकड़े किए जा रहे हैं और उस पीड़ा ने उसे अन्य सभी पीड़ाओं से मुक्त कर दिया है। आप अनुमान लगा सकते हैं कि इतनी भयानक कल्पनाओं का सहारा ले रहा कोई व्यक्ति कितनी अधिक पीड़ा में होगा।

आप उन प्रियजनों की पीड़ा का तो अनुमान भी नहीं लगा सकते जो अपने प्रियजन को तिल-तिलकर मरते देखते हैं और कोई सहायता नहीं कर पाते। कोई भी चिकित्सक इस अवस्था को ठीक नहीं कर सकता क्योंकि समस्या आत्मा में है, भौतिक अथवा मानसिक कायाओं में नहीं। सुलोचना के माता-पिता ने सब कुछ करके देख लिया। वे उसे हर उस जगह पर ले गए जहाँ उपचार की आशा थी। कुछ जन कहते थे कि सुलोचना भूतों के वश में थी; कुछ उसकी पीड़ा को मृत पूर्वजों का प्रकोप मानते थे। कोई यह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि सुलोचना की अपनी आत्मा अपने तन में पुनः प्रवेश करने के प्रयास में समस्याएँ पैदा कर रही थी।

चूंकि उनमें से कोई भी मूल समस्या नहीं जानता था, उनके सुझाए गए समाधान केवल स्थिति को बदतर बनाते जा रहे थे। समाधान था दीर्घा की आत्मा को पुनः जागृत करना ताकि वह सुलोचना के किरदार से अलग हो सके। उसकी जागृति शून्य पर पहुँच गई थी। परंतु वह साधारण आत्मा नहीं थी। उसको यह बोध कराने के लिए कि वह कौन है, जागृति की मात्र एक छोटी-सी चिंगारी की आवश्यकता थी।

उसे जागृत करने के मेरे अन्य प्रयास असफल हुए तो मैंने एक भिक्षुक के किरदार में सुलोचना के घर जाने का निर्णय लिया। मैंने द्वार नहीं खटखटाया। मैं बस जाकर उसके घर के बाहर बैठ गया। डेढ़ घंटे पश्चात सुलोचना की माँ ने द्वार खोला और मुझे देखा। मैंने बिना एक शब्द बोले उसको बता दिया कि मैं भूखा हूँ। उसने मुझे भीतर बुलाया और मुझे भोजन परोसा।

वह भिक्षुक किरदार अर्थात मैं वास्तव में भूख से मरा जा रहा था। मैंने एक लंबे समय से पका हुआ भोजन नहीं किया था। जब भोजन का पहला निवाला मेरे खाली पेट में पहुँचा तो मेरी आंखों में आँसू आ गए और होठों पर आशीर्वाद।

मैंने सुलोचना की माँ को स्वास्थ्य, सुख और समृद्धि का आशीर्वाद दिया। उसने अनुरोध किया कि मैं उसे नहीं अपितु उसकी बेटी अर्थात सुलोचना को आशीर्वाद दूँ। रुँध गले से उसने सुलोचना के साथ हुई घटना का वर्णन किया।

आत्म-हानि तथा दूसरों को हानि पहुँचाने से रोकने के लिए सुलोचना को उसके परिवार वालों ने एक कक्ष में बंद कर रखा था। द्वार को भीतर से पीटे जाने की दबी हुई ध्वनि मेरे कानों तक पहुँच रही थी। सुलोचना द्वार पीट-पीटकर और अपनी माँ से द्वार खोलने की भीख मांग-मांगकर थक गई थी।

अपना भोजन समाप्त करने के पश्चात मैंने तब तक बाहर ही प्रतीक्षा की जब तक कि द्वार पीटे जाने की ध्वनि आना बंद नहीं हो गई। फिर सुलोचना की माँ और मैं उस कक्ष में गए जो कारागार की तरह लग रहा था क्योंकि उसमें से सारी वस्तुएँ हटा दी गईं थी।

सुलोचना भूमि पर ही सोई हुई थी और विचित्र सपने देख रही थी। सुलोचना और दीर्घा दोनों की आत्माएँ स्वप्नलोक में थीं।

मैंने सुलोचना की मूल आत्मा को स्वप्नलोक में व्यस्त रखने के लिए आकाश के देव इंद्र और समय के देव काल की सहायता ली। कुछ ही समय पश्चात सुलोचना का किरदार नींद से जागा तो उसमें केवल एक आत्मा थी - दीर्घा की आत्मा।

दीर्घा मुझे जानती थी। मैंने दीर्घा की आत्मा से संपर्क साधने के लिए सुलोचना की आंखों में देखा। इससे पहले कि संपर्क स्थापित हो पाता, उसके मन में विचारों का शोर-गुल शुरू हो गया। एक पल के लिए उसने मुझे शांति से देखा और दूसरे ही पल वह चौंककर उठ बैठी।

उसने एक दृष्टि अपनी माता की ओर डाली। उसने समझा कि मैं कोई झाड़-फूँक करने वाला प्राणी था। उसने अपने हाथ जोड़े और सिर झुका लिया। पता नहीं वह प्रणाम कर रही थी अथवा यह जता रही थी कि वह झाड़-फूँक करने वालों से तंग आ चुकी थी।

"आप कौन हो, बालिका?" मैंने रहस्यमय स्वर में पूछा।

"सुलोचना।" उसने तुरंत उत्तर दिया और अपनी माँ की ओर असमंजस भरी दृष्टि डाली।

मैंने उसकी माँ से पानी लाने का अनुरोध किया।

जब वह पानी लाने कक्ष से बाहर चली गई तो मैंने पुनः रहस्य भरे स्वर में कहा, "आप सुलोचना नहीं हो। आप दीर्घा हो।"

उसके हृदय की गति बढ़ गई। आतंक और भ्रम के मिश्रण से उसका चेहरा पीला पड़ गया। उसने अपेक्षा की कि मैं आगे कुछ बोलूँ और अपने वक्तव्य को वापिस लूँ। मैंने मौन रहकर अपने वक्तव्य को और भी शक्ति दे दी। उसका अपनी पहचान पर संदेह हो गया परंतु फिर शीघ्र ही उसके मन ने उस संदेह को मिटाने के लिए तर्क करने शुरू कर दिए। मैं उसे इस अवस्था में ही छोड़कर कक्ष से बाहर आ गया।

मैं बरामदे में उसकी माँ से मिला जो पानी लेकर आ रही थी। उसके प्रश्नात्मक भावों के उत्तर में मैं बोला, "पानी - हाँ, पानी सुलोचना को दे दो। मैं कल सुबह फिर आऊंगा।"

इस बीच सुलोचना की मूल आत्मा अभी भी स्वप्नलोक में थी। इंद्र देव और काल ने मुझे सूचित किया कि वे उसे अधिक समय तक वहाँ नहीं रोक सकते थे। मैंने उनके साथ चर्चा की और उन्हे सुलोचना की आत्मा को एक दिन और एक रात के लिए स्वप्नलोक में व्यस्त रखने के रास्ते सुझाए। मैं सुलोचना और दीर्घा की आत्मा में हो रहे द्वंद्व कम से कम अस्थायी विराम लगाना चाहता था ताकि सुलोचना को शांति प्राप्त हो सके और उसे अपनी पहचान के बारे में आत्म-मंथन का शांतिपूर्ण समय मिल सके।

सुलोचना एक लंबे समय के पश्चात आज शांत अनुभव कर रही थी। राक्षसी हिंसा और पागलपन से अचानक उसे मुक्ति मिल गई थी। उसकी माँ सुखद आश्चर्य में थी। उसे अब अपनी बेटी को कक्ष में बंद रखने की आवश्यकता नहीं थी।

सुलोचना ने शांति से अपने ही घर का दौरा ऐसे किया जैसे कि वह उस घर में मात्र एक अतिथि थी। उसकी माँ ने थोड़ी देर उसके ऊपर दृष्टि रखी और तत्पश्चात उसे अकेला छोड़ दिया।

मेरे वक्तव्य का प्रभाव लंबे समय तक नहीं चलने वाला था; वह लंबे समय के लिए अपने ही घर में अतिथि की तरह अनुभव नहीं करने वाली थी। वह उस घर में पली बढ़ी थी। वह उस घर के हर कोने से परिचित थी। वह छत पर गई जहाँ उसके वस्त्र सूख रहे थे। वस्त्र कैसे झूठ बोल सकते थे? वे सुलोचना के वस्त्र थे और वह सुलोचना ही थी।

वह नीचे आई और घर के बाहर गली में टहलने लगी। उस गली से उसकी बचपन की अनेक स्मृतियाँ जुड़ीं थी। वह ठीक उस स्थान को पहचान सकती थी जहाँ पर गिरकर उसे

तब चोट लगी थी जब वह मात्र आठ वर्ष की थी। उस चोट का चिन्ह अभी भी उसके पैर पर था।

इतने लंबे समय तक घर में सीमित रहने के पश्चात गली में घूमना उसे अच्छा भी लग रहा था और विचित्र भी। जब वह अपने पड़ोसी के घर के पास से गुजरी तो उसने अनुभव किया कि कोई उस घर की खिड़की से उसे देख रहा था। वह उसकी सखी थी। उसकी सखियाँ उसके रोग के बारे में चाहे जो कुछ भी सोचती थीं, इस बात की पुष्टि तो वे भी कर सकती थीं कि वह सुलोचना ही थी।

मनुष्य क्रूर और स्वार्थी हो सकते हैं। परंतु वर्षों से मुख्य मार्ग पर खड़ा वह लंबा वृक्ष तो इस बात का साक्षी था कि वह सुलोचना ही थी, दीर्घा नहीं। उस वृक्ष ने उसे इन्हीं गलियों में बड़े होते देखा था।

बाहर कुछ समय बिताने के पश्चात वह पुनः अपने घर आ गई। मेरी रहस्यपूर्ण ध्वनि अभी भी उसके मन में गूंज रही थी, "आप सुलोचना नहीं हो, बालिका। आप दीर्घा हो।"

उसने शाम तक आत्म-मंथन जारी रखा। उसका परिवार प्रसन्न था कि वह चमत्कारिक रूप से शांत और अहिंसक हो गई थी। वे नहीं जानते थे कि उसकी शांति अस्थायी थी क्योंकि उसकी मूल आत्मा केवल अस्थाई रूप से स्वप्नलोक में थी। उसकी समस्या का स्थायी समाधान तभी निकल सकता था जब वह मेरी दी गई पहेली को हल कर लेती।

उसने जागृति की ओर प्रगति नहीं की थी। रात्रि भोजन के पश्चात जब वह अपनी माँ के साथ अपने कक्ष में अकेली थी तब वह सुबक-सुबक कर रोने लगी। बहाने के लिए उसकी आँखों में अश्रु नहीं बचे थे। उसका गला भी शुष्क था। वह बोली, "मां, मैं थक गई हूँ इन चिकित्सकों और झाड़-फूँक करने वालों से। उनमें से कोई भी मेरी पीड़ा को नहीं समझ सकता। वे मेरी समस्या के बारे में कुछ नहीं जानते। आज जो भिक्षुक आया था वह तो सबसे अधिक मूर्ख था। वह बोला कि मैं सुलोचना नहीं हूँ। यह कैसे संभव है? आपने मुझे जन्म दिया। क्या आपको भी लगता है कि मैं कोई और हूँ, सुलोचना नहीं? कोई ऐसा पीड़ाजनक वक्तव्य कैसे दे सकता है? वह भी एक भगवा वस्त्रधारी! इन व्यक्तियों को किसी के मन के साथ खिलवाड़ करके क्या मिलता है? ... क्या आपको स्मरण नहीं है कि मैं इसी घर में पली-बढ़ी हूँ? मैं पहले से ही पीड़ा में हूँ। कृपया मुझे इन व्यक्तियों के माध्यम से और न सताएँ। मैं आपके आगे हाथ जोड़ती हूँ।"

उसकी माँ भी रो पड़ी। उसकी आँखों में पर्याप्त अश्रु थे। उसने दोनों के भाग के अश्रु बहाए। मां-बेटी ने एक-दूसरे को गले लगाया। उस भावनात्मक क्षण में उन्होने एक दूसरे को

क्षमा कर दिया। बेटी अपनी हिंसा के लिए क्षमाप्रार्थी थी तो माँ उसको कक्ष में पशुओं की तरह बंद रखने के लिए।

मां ने वचन दिया, "हम अब किसी वैद्य या झाड़-फूँक करने वाले की सहायता नहीं लेंगे। हम मात्र प्रार्थना करेंगे। सर्वशक्तिमान परमेश्वर ने आपको मृत्यु के मुख से वापिस खींचा। जब आप अतिमूर्छा में थीं तब मैंने सारी आशाएँ खो दी थीं। ईश्वर ने आपको नया जीवन दिया। मुझे विश्वास है कि ईश्वर ही आपको इस पीड़ा से बाहर निकालेंगे..."

उसकी पुत्री शांत थी इसलिए उसने सोचा कि वह ठीक हो गई थी। उसने प्रार्थना की कि जो भी आत्मा उसकी पुत्री को पीड़ा दे रही थी वह कभी वापिस ना लौटे। उसे पता नहीं था कि उसकी पुत्री की आत्मा ही अपने किरदार में आने का प्रयास कर रही थी और उसका लौटना आवश्यक था। प्रार्थना विस्तृत हो तो हम अनजाने में अपने लिए दुःख की प्रार्थना कर बैठते हैं। इसलिए बेहतर है कि प्रार्थना को संक्षिप्त और सामान्य रखा जाए। जैसे कि यह प्रार्थना सामान्य है - 'हे ब्रह्मांड के देवताओं, आपको सब कुछ ज्ञात है। आप जानते हैं कि मेरे परिवार और मेरे लिए क्या भला है और क्या बुरा। कृपया सहायता करें।'

अगले दिन प्रातः मैं उस परिवार की सहायता करने उनके घर पहुँचा। मैं उसी भिक्षुक के किरदार में था। मैंने सोचा था कि इतने लंबे समय के पश्चात उस घर में शांति लाने के लिए वे मेरा आभार व्यक्त करेंगे और आदर-सत्कार करेंगे। किंतु सुलोचना की माँ ने मुझे प्रणाम तक नहीं किया। जो चाय उसने मुझे दी वह भी ठंडी थी।

मैंने पूछा, "सुलोचना अब कैसी है?"

"वह यहाँ नहीं है, संत जी।" उसने मुझे टरकाने के लिए उत्तर दिया, "मैंने उसे एक रिश्तेदार के यहाँ भेज दिया है।"

"वो सब तो ठीक है। परंतु... वह कैसी है?" मैंने अपना प्रश्न दोहराया और उसकी असत्य बोलने की चेष्टा पर मुस्कुराया।

"मैं आपकी बहुत आभारी हूँ, संत जी।" उसने कहा, "मैं वास्तव में बहुत आभारी हूँ। परंतु ..."

"उसे कल रात्रि शांति से निद्रा आई, है ना? मैं उसकी समस्या का मूल कारण समझता हूँ। मुझे उसको स्थायी रूप से ठीक करने की अनुमति दें। मुझे केवल अल्प समय के लिए उससे बात करने की आवश्यकता है।" मैंने अनुरोध किया।

उसने सिर हिलाया और उस कक्ष की ओर संकेत किया जहाँ सुलोचना अभी भी सो रही थी। अर्थात सुलोचना और दीर्घा दोनों की आत्माएँ स्वप्नलोक में थीं।

मैं यह जानता था कि दीर्घा की आत्मा स्वप्नलोक में कौन-कौन से दृश्य जी रही थी। मैंने कुछ देर प्रतीक्षा की। मैं जानता था कि स्वप्नलोक का कौन-सा दृश्य जीने के पश्चात स्वप्न टूटने वाला था। वह दृश्य आ गया - वह एक वृक्ष पर स्थापित रस्सी का झूला झूल रही थी। वह वृक्ष वैसा ही था जो सुलोचना के पड़ोस में था। फिर अचानक उसे लगा कि वह वृक्ष उसका पिता है और वह झूला उसके पिता की बाँहें। और तत्पश्चात रस्सी टूट गई। उन सुरक्षात्मक बाँहों ने उसे अचानक ऐसे फेंक दिया जैसे वह रद्दी सामान की एक बोरी थी।

उसे अपने मानवलोक के तन में भी झटका अनुभव हुआ और वह जाग गई। उसने जैसे ही आँखें खोलीं, सामने मुझे पाया।

"अच्छा हुआ कि वह एक सपना ही था।" मैंने कहा, "आप सुरक्षित हो। यहाँ कोई टूटा झूला नहीं है। यहाँ पर सुरक्षात्मक हाथों ने आपको अज्ञात के अंधकार में नहीं धकेला है।"

"आपको कैसे पता चला?" वह आँख मलते हुए उठकर बैठ गई और मंद स्वर में बोली।

"आप अब स्वप्न में नहीं हो, दीर्घा।" मैंने शांत स्वर कहा।

यह जानकर कि मैं उसके स्वप्न के बारे में जानता था, वह थोड़ा हैरान हुई और थोड़ा डर गई। किंतु उस डर से उत्पन्न हुई मेरे प्रति श्रद्धा और विश्वास। अब उसे मेरे हुनर पर कोई संदेह नहीं था। वह जानती थी कि मैं अन्य सभी चिकित्सकों आदि से भिन्न था।

"आप क्या सपना देख रही थी?" मैंने पूछा।

"परंतु... परंतु आप तो पहले से ही जानते हो, संत जी।" वह बोली।

मैंने कहा, "आपको जो भी स्मरण है उसका स्वयं वर्णन करो। यह आपके उपचार के लिए महत्त्वपूर्ण है।"

"एक के पश्चात एक बेतुका दृश्य, संत जी। वर्णन करना कठिन है ..."

और तत्पश्चात उसे झूले के दृश्य से पहले के दृश्य स्मरण हो आए। उसकी आँखों में भय नाचने लगा।

"दृश्य का वर्णन करो।" मैंने उससे आग्रह किया।

"मैं एक ऊंटगाड़ी में थी, संत जी।" उसने कहा, "गर्म रेगिस्तान के मध्य मैं ऊँटगाड़ी की सवारी कर रही थी। मैं एक रेतीले अंधड़ से दूर जाने का प्रयास कर रही थी। मैं अपने पिता के साथ थी और हम अपने खेत में जा रहे थे ... यह सब तर्कहीन है। इसका कोई अर्थ नहीं है।"

"दृश्य का तर्कशील होना आवश्यक नहीं है। मुझे बताओ कि आगे क्या हुआ।"

उसने अस्थिर स्वर में कहा, "फिर मैंने देखा कि मेरे पास बैठा व्यक्ति कोई और था, मेरे पिता नहीं। कोई अनजान था वह। क्या वे आप थे? उन्होने अपना चेहरा कंबल से ढक रखा था। परंतु वे गर्म रेगिस्तान में कंबल क्यों ओढ़े हुए थे? यह सब बेतुका है..."

"उस अनजान ने आपसे क्या कहा?" मैंने पूछा।

"उसने मेरे कान में कुछ फुसफुसाया। वह कह रहा था, 'आप शर्मिला नहीं हो, बालिका। आप सुलोचना हो।' यह तो सत्य है कि मैं शर्मिला नहीं हूँ। परंतु सपने में मैं यह सिद्ध करने का प्रयास कर रही थी कि मैं शर्मिला हूँ।"

"अब ये शर्मिला कौन है?" मैंने पूछा।

"मैं शर्मिला हूँ। मेरा अर्थ है कि मैं शर्मिला थी... सपने में। हाँ, सपने में मेरा नाम शर्मिला था।" सुलोचना बोली।

"परंतु वह अनजान व्यक्ति आपको कह रहा था कि आप शर्मिला नहीं, सुलोचना हो, है ना?"

"हाँ, संत जी। वह अनजान मुझे कह रहा था कि मैं सुलोचना हूँ। मैं उसका खंडन कर रही थी। मैं यह सिद्ध करने का प्रयास कर रही थी कि मैं शर्मिला हूँ।" सुलोचना की साँस तेज होती जा रही थी और स्वर ऊंचा।

"क्यों? आप स्वयं को शर्मिला सिद्ध करने का प्रयास क्यों कर रही थीं? आप तो सुलोचना हो ना?" मैंने उसकी आंखों में अपनी दृष्टि का प्रकाश डालते हुए कहा। मैं उस किरदार के पीछे जुड़ी दीर्घा की आत्मा से संपर्क साधने का प्रयास कर रहा था।

"हाँ, यहाँ पर मैं सुलोचना हूँ। किंतु सपनों में मैं शर्मिला थी। मैं उस अनजान व्यक्ति पर चिल्लाई। मैंने उससे कहा कि मैं शर्मिला हूँ, सुलोचना नहीं।"

"परंतु क्यों, दीर्घा? आपने ऐसा क्यों कहा?"

वह चिल्लाई, "मैं सुलोचना हूँ, दीर्घा नहीं।"

"चिल्लाने से वास्तविकता बदल नहीं जाएगी, दीर्घा।" मैंने शांत स्वर में कहा, "आत्म मंथन करो कि आप कौन हो।"

उसने हताश स्वर में कहा, "मुझे नहीं पता। सपने में मेरा नाम शर्मिला था और मैं पूर्ण विश्वास के साथ स्वयं को शर्मिला समझ रही थी।"

"और यहाँ पर आप पूर्ण विश्वास के साथ स्वयं को सुलोचना समझ रही हो। वास्तविकता क्या है? आप कौन हो? सुलोचना ... शर्मिला... या दीर्घा ... आपका वास्तविक नाम और पहचान क्या है?"

"मैं सुलोचना हूँ, संत जी। मेरी माँ से पूछ लीजिए। मेरी सहेलियों से पूछ लीजिए। पड़ोस में लगे पेड़ों से पूछ लीजिए।" उसने धैर्यपूर्वक कहा, "इस ब्रह्मांड का हर कण इस बात का साक्षी है कि मैं सुलोचना हूँ।"

मैंने कक्ष में मौन छाने दिया और मैं सुलोचना की आंखों के माध्यम से दीर्घा तक पहुँचने का प्रयास करता रहा।

कुछ पलों के पश्चात उसने मंद स्वर में कहा, "क्या यह भी एक सपना है, संत जी? मैं आपको यह सिद्ध करने का प्रयास क्यों कर रही हूँ कि मैं सुलोचना हूँ? यदि आप कहते हैं कि मैं दीर्घा हूँ, तो हो सकता हैं कि मैं दीर्घा ही हूँ। क्या कोई और लोक है जहाँ मेरा नाम दीर्घा है?"

मैंने उससे कहा, "यह मात्र नाम की बात नहीं है। क्या आपको स्मरण है कि सपने में आपका चेहरा कैसा था? क्या आपको स्मरण है कि आपके साथ ऊंटगाड़ी में बैठा व्यक्ति आपके पिता जैसा दिखता था या नहीं? क्या आपको चेहरे स्मरण हैं?"

"स्वप्न में कोई दर्पण तो था नहीं, संत जी। मुझे कैसे पता चलता कि मेरा चेहरा कैसा था?" उसने तर्क दिया।

"चेहरा नहीं सही। क्या आपने अपने हाथ देखे? या अपना समग्र व्यक्तित्व? क्या आपका स्वप्न का व्यक्तित्व वैसा ही था जैसा यहाँ पर है?" मैंने पूछा।

"अब जब मैं इस बारे में विचार कर रही हूँ तो ध्यान आ रहा है कि सपने में जो मेरे पिता थे मेरे पिता जैसे नहीं थे। किंतु मैं वहाँ पर आश्वस्त थी कि वे मेरे पिता ही थे। मुझे इसमें कुछ भी विचित्र नहीं लगा। ऐसा क्यों?" उसने पूछा।

"भले ही स्वप्न में आपने शर्मिला नाम की बकरी का किरदार धारण किया हो, आप वहाँ पर पूर्ण आश्वस्त रहोगी कि बकरी की माँ आपकी माँ हैं और बकरी के पिता आपके

पिता हैं। बकरी के जीवन में आपको तब तक कुछ भी विचित्र नहीं लगेगा जब तक कि आप बकरी के किरदार में हैं।" मैंने उसे समझाया।

"तो क्या स्वप्न का मेरा किरदार पूरी तरह से भिन्न था, संत जी?" उसने आश्चर्य से पूछा।

"बिल्कुल।" मैंने कहा, "एक किरदार नहीं अपितु कई किरदार। जब आत्मा स्वप्नलोक में होती है तो बड़ी तेजी से अपने किरदार बदलती है। एक दृश्य में आप अपने पिता के साथ थीं तो अगले ही दृश्य में किसी अनजान के साथ। इस तरह आप एक दृश्य से दूसरे दृश्य और एक किरदार से दूसरे किरदार में प्रवेश कर रही थीं।"

"मुझे बहुत भय लग रहा है, संत जी। क्या मैं अभी भी सपने में हूँ? क्या कोई और लोक है जहाँ मेरा नाम दीर्घा है, सुलोचना नहीं? मैं कौन हूँ? मेरी वास्तविक पहचान क्या है?" उसने पूछा। वह भय से कंपकपाने लगी थी।

"आप शीघ्र ही यह जान जाओगी।" मैंने उसको आश्वस्त किया, "मुझे बताओ कि सपने में आगे क्या हुआ?"

उसने कहा, "फिर मैंने ऊंटगाड़ी चलाना शुरू कर दिया। यह सब बेतुका है। मैं तो यह भी नहीं जानती कि नकेल कैसे पकड़ते हैं। किंतु सपने में मैं बहुत अच्छे से ऊँटगाड़ी चला रही थी। मेरे पिता अब वहाँ नहीं थे। वह अनजान भी चला गया था। अब गाड़ी में कई बच्चे थे। वे सभी प्रसन्न थे। मैं उन्हें एक वार्षिक मेले में ले जा रही थी।"

"आपके पिता अचानक कहाँ लुप्त हो गए? और वह अनजान कहाँ चला गया? और ऊंटगाड़ी में बच्चे कहाँ से आ गए? ऊंटगाड़ी के यात्री अचानक कैसे बदल गए?" मैंने पूछा।

"मैं नहीं जानती, संत जी।" उसने उत्तर दिया, "यह एक सपना था। सपनों में निरंतरता नहीं होती है। यही कारण है कि उन्हे सपना कहा जाता है। यहाँ मानवलोक में निरंतरता है। मानवलोक की पहचान ही मेरी वास्तविक पहचान है। मैं सुलोचना हूँ। मुझे बस उस शर्मिला-सुलोचना के भ्रम को भुला देना चाहिए। वह भ्रम एक विचित्र सपने का भाग मात्र था।"

मैंने कहा, "किंतु जब आप सपना देख रही थीं तो सपने में भी तो सब कुछ वास्तविक लग रहा था। आप यदि किसी अन्य लोक में पहुँच जाओगी तो मानवलोक को भी सपना मानोगी।"

"इस लोक में निरंतरता है, संत जी। इस लोक को भला मैं सपना क्यों मानूँगी? यह लोक भला बेतुका क्यों प्रतीत होगा?"

प्रिय शिष्यों, मुझे सुलोचना को यह सब समझाने में कुछ समय लगा किंतु आप इसे शीघ्र ही समझ जाएंगे। आपको मैं ये सब इस तरह समझाऊंगा - तीन मार्गों की कल्पना कीजिए जो एक दूसरे के समानांतर हैं। उनके बीच कोई संधि नहीं है। वे कहीं से भी एक दूसरे से नहीं जुड़े हुए। मान लीजिए कि पहले मार्ग पर एक बिंदु म1 है। जब आप म1 पर खड़े हैं तो आपको वह पहला मार्ग निरंतरता में दिखाई देता है अर्थात आपके पीछे से वह मार्ग चला आ रहा प्रतीत होता है और आगे जा रहा प्रतीत होता है। कुछ भी टूटा हुआ या बेतुका प्रतीत नहीं होता।

अब मान लीजिए कि आप उड़कर दूसरे मार्ग पर आ जाते हैं - आपको उड़कर ही आना होगा क्योंकि पहले और दूसरे मार्ग को कोई रास्ता नहीं जोड़ता। मान लीजिए कि आप दूसरे मार्ग के एक म2 नामक बिन्दु पर आ गए हैं। जब आप म2 पर खड़े हैं तब आपको दूसरा मार्ग भी निरंतरता में दिखाई देता है। अर्थात वह मार्ग आपके पीछे से चला आ रहा है और आगे जा रहा है। कुछ भी टूटा हुआ या बेतुका प्रतीत नहीं होता है।

अब आप उड़ान भरकर तीसरे मार्ग के एक बिंदु म3 पर आ जाते हैं। जब आप म3 पर खड़े हो तो आपको तीसरा मार्ग भी निरंतरता में दिखाई देता है। कुछ भी टूटा हुआ या बेतुका नहीं लगता। किंतु यदि आप इन तीन बिंदुओं अर्थात म1, म2 और म3 को एक साथ देखते हैं तो वे एक दूसरे के साथ जुड़े हुए दिखाई नहीं देते। आपको यह बेतुका लगता है क्योंकि म1, म2 और म3 को जोड़ने वाला कोई रास्ता अस्तित्व में नहीं है। सपनों के संसार में आप एक दृश्य से दूसरे दृश्य में कूद रहे होते हैं तब यहीं होता है।

आप चाहे जो भी दृश्य जी रहे हैं, उस दृश्य के पीछे एक अतीत संलग्न है और आगे एक भविष्य। यही कारण है कि जब आप उस दृश्य में होते हैं तो आपको कुछ भी विचित्र नहीं लगता। आप उस दृश्य को उसकी निरंतरता में देखते हैं। और जब आप किसी ऐसे दृश्य में पहुँचते हैं जो इस दृश्य से नहीं जुड़ा है, तब इस दृश्य का अतीत और भविष्य यहीं यह जाता है। नए दृश्य का अपना एक अतीत और भविष्य होता है जिसके कारण आप उसे भी उसकी निरंतरता में देखते हैं। कुछ भी विचित्र या टूटा हुआ नहीं लगता है।

मैंने सुलोचना से कहा, "हर दृश्य की अपनी निरंतरता होती है। जब आप उस दृश्य में होते हैं तो आप उसे उसकी निरंतरता में देखते हैं, अलग-थलग नहीं। निरंतरता स्मृतियों और कल्पनाओं द्वारा बुना गया एक भ्रम है। इस दृश्य की स्मृतियाँ और कल्पनाएँ यहीं इसी दृश्य में हैं। वे न तो अतीत में हैं और न ही भविष्य में। स्मृतियाँ और कल्पनाएँ एक दर्पण की तरह

वस्तुएँ हैं जो इसी दृश्य में अस्तित्व में हैं किंतु उनमें अतीत और भविष्य के दृश्यों की झलक दिखाई देती है। इसी से निरंतरता का भ्रम पैदा होता है।

मैंने उसका ब्रह्मांड को देखने का दृष्टिकोण भी बदला। मैंने उसे ब्रह्मांड को वस्तुओं के समूह नहीं अपितु दृश्यों के समूह के रूप में देखना सिखाया। मैंने उससे कहा, "अपने वर्तमान दृश्य में आप अपने कक्ष में हो। एक अलग समय बिंदु पर अन्य दृश्य है जिसमें आप अपनी रसोई में हो। यदि मैं आपकी आत्मा को उस दृश्य में भेज दूँ तो आपको कुछ भी बेतुका नहीं लगेगा। आपको नहीं लगेगा कि आप बिना चले अपने कक्ष से अपनी रसोई में कैसे पहुँच गई हैं। क्योंकि उस दृश्य में यह स्मृति अस्तित्व में है कि आपने सामान्य रूप से रसोई में प्रवेश किया है, मायावी रूप से नहीं।

उसने कहा, "संत जी, हो सकता है कि यह लोक भी सपना ही हो। मेरे लिए तो यह सब पीड़ा से भरा भयानक दुःस्वप्न ही हैं। मैं हर पल पीड़ा के जिस पहाड़ को अपनी पीठ पर ढो रही हूँ उसका वर्णन भी नहीं कर सकती। मुझे आशा है कि आप सही हो। मुझे आशा है कि यह केवल एक सपना है। कृपया मुझे एक बेहतर लोक में जागने में सहायता करें। मैं स्वीकार करती हूँ कि मैं दीर्घा हूँ, सुलोचना नहीं। मुझे दीर्घा के रूप में जागने में मेरी सहायता करें।"

मैंने कहा, "हाँ, आप दीर्घा हो। आप यहाँ एक विशेष उद्देश्य के लिए सुलोचना के किरदार को जीने आई थी। वह उद्देश्य अब पूर्ण हो चुका है। मैं आपको दीर्घा के रूप में जागने में सहायता करूंगा किंतु केवल आशा से काम नहीं चलेगा। आपको बोध होना चाहिए कि आप सुलोचना नहीं हो।"

उसने कहा, "मुझे बोध है, संत जी।"

"नहीं, आपको बोध नहीं है। आप अभी भी सुलोचना के किरदार से आसक्त हो।"

उसने तर्क दिया, "नहीं। मैं सुलोचना के किरदार से नहीं जुड़ी हूँ। इस किरदार में होना कितना पीड़ादायक है ये आप नहीं जानते। मैं भला इस किरदार से आसक्त क्यों रहूँगी?"

"जब आप वास्तव में इस किरदार से अलग हो जाओगी तो इस पीड़ा से भी अलग हो जाओगी। तो आप पीड़ा से दूर नहीं भागोगी। बस आप इस पीड़ा से परे हो जाओगी।" मैंने उसे आसक्ति और नकारात्मक आसक्ति के बीच अंतर समझाया।

उसने उदास स्वर में कहा, "मेरे मन की गहराइयों में मुझे विश्वास है कि मैं सुलोचना ही हूँ। यह पीड़ा ही मेरी वास्तविकता है। मैं इससे बच नहीं सकती। यह कठोर सत्य है। यह

कोई सपना नहीं है ... मुझे दीर्घा के बारे में कुछ भी स्मरण नहीं है। यदि मैं दीर्घा होती तो मुझे कुछ तो स्मरण होता। मैं जो स्वप्न देखती हूँ उनमें से कई स्मरण रहते हैं। मुझे दीर्घा के बारे में कुछ भी स्मरण क्यों नहीं है?"

मैंने उसे समझाया, "सपनों के सभी दृश्य स्मरण नहीं रहते। जागने से ठीक पहले के दृश्य ही स्मरण रहते हैं। अर्थात स्वप्नलोक से बाहर निकलते समय और मानवलोक में प्रवेश करने से पहले जो दृश्य आते हैं, वही स्मरण रहते हैं। स्वप्नलोक और मानवलोक की सीमा के पास जो दृश्य घटित हो रहे हैं, वहीं स्मरण रहते हैं और वह स्मृति की कड़ी भी अत्यंत कमजोर होती है।

“यदि जागने के पश्चात सपनों के बारे में विचार न किया जाए तो वे स्मृतियाँ भी बहुत शीघ्रता से लुप्त हो जाती हैं। आपको दीर्घा के बारे में कुछ भी स्मरण नहीं है क्योंकि दीर्घा के लोक और सुलोचना के लोक के बीच कोई कड़ी नहीं है। वे दोनों लोक पारस्परिक रूप से अनन्य और एक दूसरे से दूर हैं।"

उसने पूछा, "संत जी, स्वप्नलोक में प्रवेश करना तो बहुत सरल है। यहाँ पर सोते ही मैं वहाँ पहुँच जाती हूँ। क्या ऐसा कोई सरल उपाय है जिससे कि मैं सुलोचना के रूप में सो जाऊँ और दीर्घा के रूप में जाग जाऊँ?"

मैंने उत्तर दिया, "सुलोचना की पहचान एक साधारण मनुष्य की है जबकि दीर्घा की पहचान देवताओं के सहायक की है। सुलोचना की आत्मा को ठीक करने के लिए आपको यहाँ भेजा गया था। दीर्घा की सरल एवं न्यून पहचान में पुनः जाने के लिए आपको सुलोचना की पहचान से अलग होना होगा। आपको हर उस वस्तु से स्वयं को परे करना होगा जो सुलोचना से जुड़ी है।"

"फिर इस तन का क्या होगा, संत जी? क्या यह मर जाएगा?" उसने पूछा।

"जैसा कि मैंने कहा, आपको हर उस वस्तु से अलग होना होगा जिसका संबंध सुलोचना से है। सुलोचना के बारे में चिंता भी सुलोचना से संबंधित है। उससे भी अलग होना होगा।" मैंने उत्तर दिया।

"आपका यह वक्तव्य संवेदनहीन है, संत जी। आप एक संत होते हुए भी मुझे अपने वर्तमान किरदार के बारे में चिंता न करने की मंत्रणा कैसे दे सकते हैं?"

"मैंने आपके किरदार के बारे में चिंता बंद करने के लिए नहीं कहा। सुलोचना जो चाहे उसे करने दो। उसको चिंता करनी है करे, नहीं करनी है तो न करे। आप सुलोचना नहीं हो। आप दीर्घा हो।"

उसने पुनः अपना भय प्रकट किया, "परंतु मेरे परिवार का क्या होगा? मैं उन्हें नहीं छोड़ सकती।"

मैंने कठोरता से कहा, "मैं आपको अज्ञानता के गड्ढे से बाहर निकालने में सहायता कर रहा हूँ और आप हो कि बार-बार नीचे गिर रही हो ... यह आपका परिवार नहीं है। यह सुलोचना का परिवार हैं। स्वप्नलोक में आपके पिता यहाँ के पिता से भिन्न थे। आप उन्हे वहीं छोड़कर यहाँ आ गई। हर दृश्य में किरदार के अन्य वस्तुओं और व्यक्तियों के साथ कुछ संबंध होते हैं। जब आत्मा एक दृश्य से दूसरे दृश्य में जाती है तो वे संबंध आत्मा के साथ नहीं जाते। आत्मा के साथ कुछ नहीं जाता। नए दृश्य में नए संबंध होते हैं जिनको आत्मा अपना मान लेती है। सुलोचना से संबंधित हर व्यक्ति या वस्तु यहीं रहेगी। दीर्घा के संबंध कुछ ओर हैं। दीर्घा के लिए उनके इष्टदेव श्री विष्णु ही सब कुछ हैं। उसे और कोई संबंध चाहिए भी नहीं।"

उसने हठपूर्वक कहा, "मैं मात्र आश्वासन चाहती हूँ, संत जी। कृपया मुझे यह विश्वास करा दीजिए कि मेरे अलग होने के पश्चात सुलोचना का किरदार मृत्यु को प्राप्त नहीं होगा और कृपया मुझे ये विश्वास भी करा दीजिए कि मेरे जाने के कारण मेरा वर्तमान परिवार शोक में नहीं डूबेगा।"

मैंने स्पष्ट कहा, "मैं ऐसा कोई आश्वासन नहीं दूँगा।”

एक ठहराव के पश्चात मैंने वे शब्द कहे जिनसे अंततः दीर्घा सुलोचना के किरदार से अलग हो गई। मैंने रहस्यमय स्वर में कहा, “यह एक जाल है, दीर्घा। आश्वासन हो या चिंता, दोनों आपको इस दृश्य और इस लोक से बाँधकर रखते हैं। आपको दोनों से अलग होना होगा। सुलोचना का किरदार आश्वासन मांगता है तो मांगने दो। मेरे आश्वासन देने से मना करने पर सुलोचना का किरदार कोई प्रतिक्रिया करता है तो करने दो। बस आप सुलोचना की अनुकृति करना बंद कर दो। यदि आप सुलोचना के साथ प्रश्न-उत्तर, चिंता-आश्वासन, भय-निर्भयता, सहानुभूति-उदासीनता आदि के चक्र में घूमती रहोगी तो अलग नहीं हो पाओगी। "

अपने जागृति विन्यास पर पुनः पकड़ पाने के लिए दीर्घा को जागृति की बस एक छोटी-सी चिंगारी की आवश्यकता थी। उसने सुलोचना का किरदार छोड़ दिया। ठीक उसी क्षण सुलोचना की अपनी आत्मा उसके किरदार में लौट आई। क्यों? क्योंकि वह नहीं लौटती तो उसके किरदार में सुरों और असुरों का प्रवेश हो जाने का संकट था। जब भी किरदार पर संकट मँडराता है, उस किरदार की आत्मा स्वप्नलोक से वापिस आ जाती है। ऐसी स्थिति में इंद्र देव और काल भी आत्मा को स्वप्नलोक में रोक कर नहीं रख सकते।

अब निरंतरता के बारे में सबसे महत्त्वपूर्ण बात जो बहुत सारे साधक बड़ी कठिनता से समझ पाते हैं - जिस पल दीर्घा की आत्मा सुलोचना के किरदार से अलग हुई और सुलोचना की अपनी आत्मा ने उसके किरदार में प्रवेश किया, उस पल तन में कोई व्यवधान उत्पन्न नहीं हुआ। सब कुछ जैसे चल रहा था वैसे ही निरंतर चलता रहा। मेरे और सुलोचना के किरदार के मध्य वार्ता निरंतर जारी रही। उसने आगे कहा, "संत जी, मैं सुलोचना का किरदार नहीं छोड़ सकती। मैं अपने माता-पिता को तब तक नहीं छोड़ सकती जब तक आप मुझे यह आश्वासन नहीं देते कि उन्हे मेरे जाने से कोई पीड़ा नहीं होगी।”

क्या आपने वार्ता में कोई विच्छेदन देखा। उसका किरदार अभी भी उसी आश्वासन की मांग कर रहा था। परंतु किरदार के पीछे की आत्मा बदल गई थी। दीर्घा की आत्मा की जगह सुलोचना की अपनी आत्मा आ गई थी।

"आपको सुलोचना का किरदार छोड़ने की आवश्यकता नहीं है। आप सुलोचना ही हो।" मैंने उसके अनुरोध का उत्तर देते हुए कहा।

"परंतु आप ही तो कह रहे थे कि मैं दीर्घा हूँ।" उसने असमंजस के स्वर में कहा।

"अब क्या बताऊँ। बस यूं समझ लो कि जब मैं आपको दीर्घा कह रहा था तब भी मैं सही था और अब जब मैं आपको सुलोचना कहा रहा हूँ तब भी मैं सही हूँ।" मैंने शांत स्वर में कहा।

मैं प्रसन्न था कि मैंने दीर्घा की आत्मा को सफलतापूर्वक मुक्त कर दिया था। मैंने विक्षिप्त हंसी निकाली और कुछ बेतुके बोल कहे ताकि सुलोचना को लगे कि मैं अलौकिक प्राणियों से बात कर सकने वाला सिद्ध पुरुष था। दृश्य को और भी नाटकीय बनाने के लिए मैंने अपने चेहरे को भावरिक्त कर लिया। फिर मैंने नाटकीय रूप से एक भभूत की पुड़िया प्रकट की जिसे मैं अपने साथ लाया था। वह पुड़िया सुलोचना को थमाते हुए मैंने दृढ़ स्वर में कहा, "ये पवित्र भभूत मैंने विशेष रूप से आपके लिए तैयार की है। सोने से पहले इसमें से एक चुटकी भभूत अपने माथे पर मलनी है। अगले सात दिनों के भीतर आपको पीड़ा से स्थाई छुटकारा मिल जाएगा, यह मेरा वचन है। "

कक्ष से बाहर निकलते ही मैं बरामदे में उसकी चिंतित माँ से मिला। मैंने उसे कुछ निर्देश दिए कि अगले सात दिनों तक क्या करना है और क्या नहीं करना है। उसने हाथ जोड़कर आदरपूर्वक उन निर्देशों को सुना।

जैसे ही मैं सुलोचना के घर से बाहर आया, मैंने उस भिक्षुक का किरदार छोड़ दिया।

जब सुलोचना अपने कक्ष से बाहर आई तो उसकी पहली टिप्पणी मेरे बारे में ही थी। वह बोली, "मां, वे संत जी विचित्र थे। पहले तो उन्होने मुझे विश्वास कराया कि मैं दीर्घा हूँ, सुलोचना नहीं और तत्पश्चात वे स्वयं ही इस बात से पलट गए। हाँ, वैसे थे तो वे कोई जानकार। वे यह जानते थे कि मैंने सपने में क्या दृश्य देखे।"

"सचमुच।" उसकी माँ की आँखें नम हो गई थीं। वह बोली, "इस समस्या के समाधान के लिए हम कहाँ-कहाँ नहीं भटके। जब हम सभी आशाएँ खो चुके थे तब सर्वशक्तिमान परमेश्वर ने इन संत जी को हमारे द्वार पर भेज दिया। प्रभु की महिमा अपरंपार है।"

उन्होंने अगले सात दिनों तक मेरे सभी निर्देशों का पालन किया। जैसा कि आप जानते हैं, मेरे द्वारा दी गई भभूत और निर्देशों की सुलोचना की समस्या के समाधान में कोई भूमिका नहीं थी। हाँ, समाधान के दुष्प्रभावों को रोकने में उनकी भूमिका अवश्य थी। सुलोचना को यह विश्वास कराना आवश्यक था कि निर्देशों और भभूत ने उसकी समस्या का समाधान किया। उसके मन से दीर्घा और शर्मिला आदि नाम किसी स्वप्न की स्मृतियों की तरह मिटाना आवश्यक था।